श्री गुरुजी समग्र
खंड
९

श्री गुरुजी समग्र
खंड
९
भेंट वार्ता

स्वत्वाधिकार :

डा. हेडगेवार स्मारक समिति
डा. हेडगेवार भवन,
महाल, नागपुर-४४००३२

प्रकाशक :

सुरुचि प्रकाशन
देशबंधु गुप्ता मार्ग,
नई दिल्ली-११००५५

प्रथम संस्करण :

माघ कृष्ण एकादशी युगाब्द ५१०६
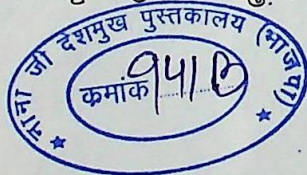
मुद्रक :

गोपसन्स पेपर्स लि.,
नोएडा-२०१३०१

मूल्य प्रति संच :

दो हजार रुपए
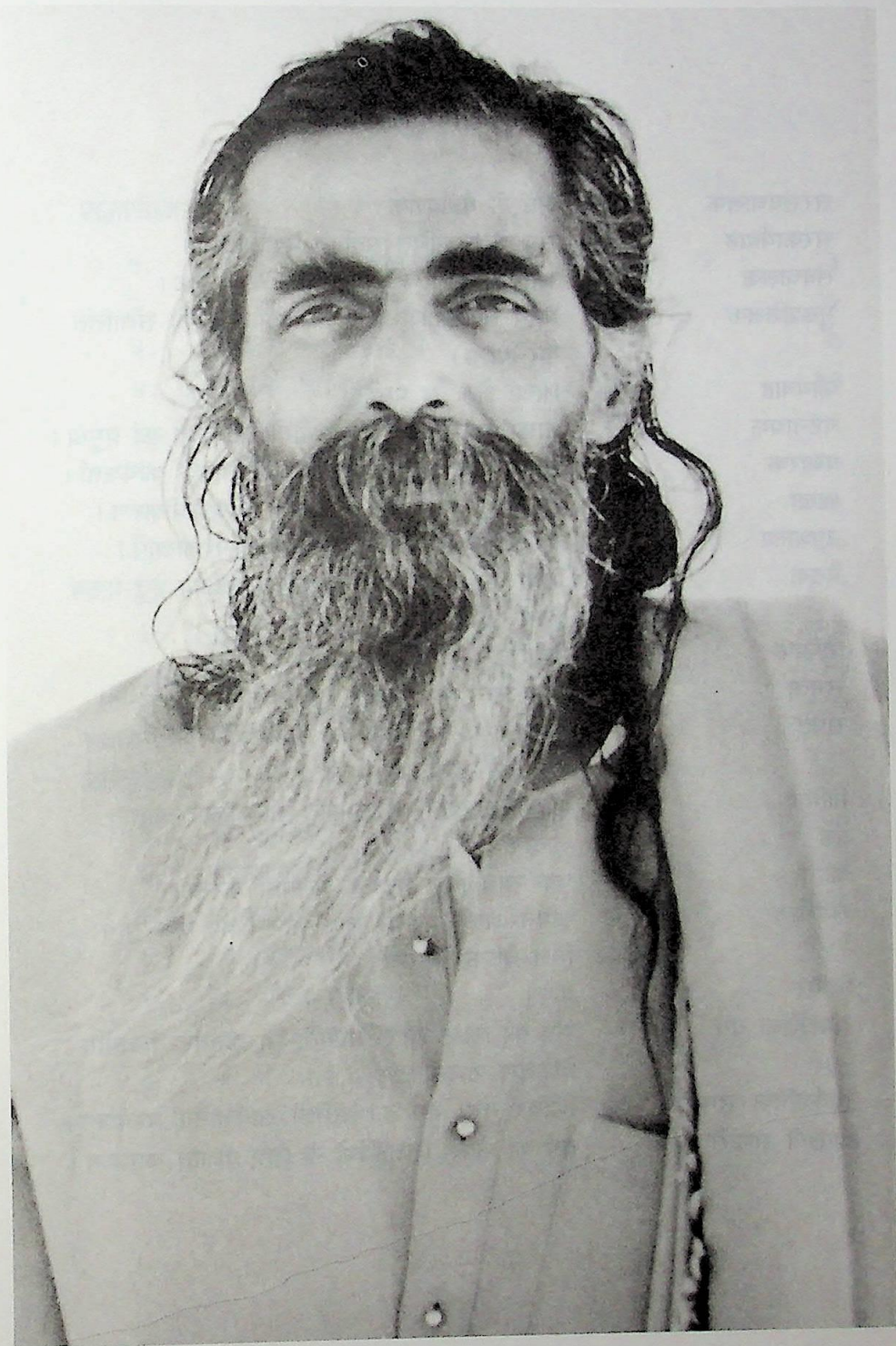
पारिभाषिक शब्द

सरसंघचालक	–	संघ के मार्गदर्शक।
सरकार्यवाह	–	संघ के निर्वाचित सर्वोच्च पदाधिकारी।
संघचालक	–	स्थानीय कार्य व कार्यकर्ताओं के पालक।
मुख्यशिक्षक	–	नित्य चलनेवाली शाखा के कार्यक्रमों को संचालित करनेवाला।
कार्यवाह	–	शाखा क्षेत्र का प्रमुख।
गटनायक	–	शाखा क्षेत्र के एक छोटे भौगोलिक भाग का प्रमुख।
प्रचारक	–	संघकार्य हेतु पूर्णतः समर्पित अवैतनिक कार्यकर्ता।
शाखा	–	संस्कार निर्माण हेतु नित्यप्रति का एकत्रीकरण।
उपशाखा	–	एक स्थान पर चलने वाली विभिन्न शाखाएँ।
बैठक	–	विचार-मंथन व सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया हेतु एकत्र बैठने की प्रक्रिया।
बौद्धिक	–	वैचारिक प्रबोधन का कार्यक्रम, भाषण।
समता	–	अनुशासन के प्रशिक्षण हेतु शारीरिक कार्यक्रम।
संपत्	–	कार्यक्रम प्रारंभ करने हेतु स्वयंसेवकों को निश्चित रचना में खड़ा करने की आज्ञा।
विकिर	–	शाखा-कार्यक्रम की समाप्ति की अंतिम आज्ञा।
दंड	–	लाठी।
चंदन	–	एक साथ मिल-बैठकर जलपान करना।
सहभोज	–	अपने-अपने घर से लाए भोजन को एक साथ मिल-बैठकर करना।
शिविर	–	कैंप।
संघ शिक्षा वर्ग	–	संघ की कार्यपद्धति सिखाने हेतु क्रमबद्ध त्रिवर्षीय प्रशिक्षण योजना।
सार्वजनिक समारोप	–	शिविर तथा वर्ग का अंतिम सार्वजनिक कार्यक्रम।
खासगी समारोप	–	वर्ग का केवल शिक्षार्थियों के लिए दीक्षांत कार्यक्रम।

अनुक्रमणिका

समाधान

वार्तालाप

दृष्टिकोण

सुसंवाद

संवाद

खंड - ६

भेंटवार्ता

विभिन्न अवसरों पर समाज के प्रबुद्धजन, मित्र, पत्रकार, समाचार-पत्रों के संपादक और विशिष्ट जनों से श्री गुरुजी का वार्तालाप होता रहता था। उस समय उनके द्वारा पूछे गए प्रश्नों के यथार्थ उत्तर श्री गुरुजी ने अपनी सटीक शैली में दिए। वे पाठकों के लिए समाधान करनेवाले तथा मार्गदर्शक हो सकते हैं। उन्हें इस खंड के पहले भाग 'समाधान' में प्रश्नोत्तर के रूप में तथा द्वितीय भाग 'वार्तालाप' में विशिष्ट जनों के साथ हुई चर्चा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही पत्रकारों के सम्मुख व्यक्त विचार तीसरे भाग 'दृष्टिकोण' में दिये गए हैं। 'सु-संवाद' में समायोजित किया गया है संतवृंद के साथ हुए वार्तालाप को तथा विभिन्न कार्यकर्ताओं द्वारा भेजे गए अन्यान्य सज्जनों से भेंटों के वृत 'संवाद' नामक भाग में संकलित किए गए हैं।

समाधान

१. संघ व अन्य मतावलंबी

प्रश्न : आपने अपने वक्तव्य में कहा है कि हिंदुओं में विघटनकारी तत्त्व हैं, इसलिए यह संगठन मुख्यतः हिंदुओं तक सीमित है। जब आप देश की एकता में विश्वास करते हैं, तो आप अपने दरवाजे अन्य लोगों, जैसे– सिख, मुसलमान आदि के लिए क्यों खुले नहीं रखते?

उत्तर : हिंदुओं को सिख और गैर-सिख में हम न बाँटें। जहाँ तक अपने हिंदू-विचार का संबंध है, हम मानते हैं कि हमारे देश तथा लोगों में विगत कई शताब्दियों से परमात्मा के प्रति जितने विभिन्न दृष्टिकोण निर्माण हुए हैं, वे सब इस एक बहुसमावेशक शब्द 'हिंदू' में परिवेष्टित हैं। बौद्ध, जैन, सिख, लिंगायत, शैव, वैष्णव आदि सभी। मेरे लिए प्रत्येक व्यक्ति समाज का उतना ही आदरणीय सदस्य है, जितना मैं स्वयं को समझता हूँ। मैं नहीं समझता कि वह किसी भी प्रकार मुझसे भिन्न है। विश्व-भर के लोगों को एकत्रित करने के प्रयास में दौड़ते रहने से कहीं अधिक अच्छा है कि हम पहले अपने घर को सुव्यवस्थित करें। जो अपने घर को सुव्यवस्थित नहीं करते, उनमें शक्ति नहीं रहती, न वे प्रभाव रख पाते हैं और न ही विश्व में एकता निर्माण की क्षमता उनमें होती है। उनके लिए यह सब कर पाना असंभव है। हम अपने ही देश में देखें। हमारे देश के कई उच्चपदस्थ नेता अपने घर को सुव्यवस्थित करने की इस मूलभूत और सर्वप्रथम आवश्यकता की उपेक्षा कर समस्त मानवता की बातें करने के लिए सदैव आतुर रहते हैं। परिणाम यह है कि वे किसी भी प्रकार की एकता निर्माण कर पाने में असफल हैं।

प्रश्न: आपने कहा कि चूंकि आपका मुख्य कार्यालय नागपुर में है, इस कारण वहाँ कोई सांप्रदायिक दंगा नहीं हो पाया?

उत्तर: मैंने केवल इतना ही कहा है कि हमारा केंद्रीय कार्यालय वहाँ है। केवल इसलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दंगे से जोड़ना गलत है।

प्रश्न: क्या आपके पास नागपुर जैसी कोई ऐसी अत्युत्कृष्ट योजना है, जिससे संपूर्ण देश से सांप्रदायिक दंगों का नाम-निशान मिट जाए?

उत्तर: वह उत्कृष्ट योजना यही है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ देशव्यापी और समाजव्यापी संगठन बन जाए। यह आरोप कि हम मुसलमानों के प्रति घृणा फैलाते हैं, नितांत झूठा है। यह केवल हमें गाली देनेवाली बात है।

प्रश्न: आपने अपने वक्तव्य में कहीं इस बात का उल्लेख नहीं किया कि मुसलमान भी इस संगठन में सम्मिलित हो सकते हैं?

उत्तर: मैंने केवल हिंदुओं का उल्लेख किया है, यह सही है। हम पहले अपना घर तो ठीक कर लें।

प्रश्न: आप उन्हें भरती क्यों नहीं करते?

उत्तर: कुछ समय पश्चात् ऐसा भी हो सकेगा। हमें जल्दबाजी नहीं करनी है। ऐसी जल्दबाजी ने ही सब स्थिति बिगाड़ रखी है।

प्रश्न: आप मुसलमानों के भारतीयकरण में विश्वास करते हैं?

उत्तर: मैं समझ नहीं पाया कि इसके पीछे के मनोभाव का अर्थ क्या है। मैं सभी के भारतीयकरण में विश्वास रखता हूँ।

प्रश्न: क्या आप अर्ध-सैनिक मुस्लिम सांप्रदायिक संस्थाओं पर प्रतिबंध लगाने का स्वागत करेंगे?

उत्तर: नहीं। हम उन्हें प्रतिबंधित करना नहीं चाहते। हम उन्हें शिक्षित करना चाहते हैं।

प्रश्न: असली मुद्दा है कि आप उन्हें भारतीय समझते हैं या नहीं?

उत्तर: कठिनाई यह है कि हम भले ही उन्हें समझें, किंतु क्या वे अपने आपको भारतीय समझते हैं? यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है, किंतु कोई भी इस प्रश्न पर ध्यान नहीं देता।

प्रश्न: मेरी समझ में किसी मुसलमान ने यह नहीं कहा कि वह भारतीय नहीं है?

उत्तर: ठीक है। मैं समझता हूँ कि आपने सचमुच बड़ा साहसी वक्तव्य दिया है, संभवतः ऐसा, जो आज की परिस्थितियों की सत्यता से मेल नहीं खाता। इस संदर्भ में अपने राष्ट्रजीवन को भली-भाँति समझने की आवश्यकता है।

प्रश्न: अभिज्ञा से आपका क्या अर्थ है?

उत्तर: मुसलमान अधिक ईश्वरनिरत मुसलमान हों। मैं उन्हें पुण्यात्मा मुसलमान बनने में सहायता करूँगा।

विश्व के विभिन्न हिस्सों से इस देश में लोग आए हैं। उन्होंने यहाँ निवास करना तय किया है। उन्होंने यहाँ के जीवन और दर्शन को ग्रहण कर लिया है। कुछ ने तो इस राष्ट्रजीवन की धारा को पुष्ट करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया है। जो इस धारा से मिल गए, वे भिन्न नहीं रहे। दुर्भाग्य से मुसलमानों ने ऐसा नहीं किया। वे अलग ही बने रहे।

प्रश्न: आज की स्थिति क्या है? क्या वे पृथक हैं?

उत्तर: हम इसके अतिरिक्त क्या कह सकते हैं। अन्यथा ये सांप्रदायिक दंगे न होते, देश का विभाजन न होता, इस देश में मुसलमानों के लिए पृथक क्षेत्र बनाने की माँग न उठती, लालकिले पर मुस्लिम-झंडा फहराने की माँग न की जाती। यह अत्यंत दुःख और लज्जा की बात है कि इन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। दूसरी ओर जो जनता को उत्सर्ग की शिक्षा दे रहे हैं, जो राष्ट्रभक्त हैं, उन्हें असंवैधानिक और सांप्रदायिक कहा जा रहा है। यह भाग्य की कैसी विडंबना है?

प्रश्न: क्या आपको नहीं लगता कि हिंदू और मुसलमानों के बीच मतभेद व्यक्त करने से मुसलमानों को अलग से संगठित होने का प्रोत्साहन मिलेगा?

उत्तर: मुसलमान इस प्रकार पहले ही संगठित हो चुके हैं। वे पृथकतापूर्वक सोचते हैं, पृथकता से काम करते हैं और पृथक रहकर ही योजना बनाते हैं। मुसलमान ही है, जो ऐसा सोचता है कि गैर-मुसलमान नर्क में जाएगा।

प्रश्न: क्या अहिंदुओं के विरुद्ध आपके संगठन में घृणा प्रचारित की जाती है?

उत्तर: यह सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण आरोप है। केवल यह बात कि हम अपनी उज्ज्वल संस्कृति का पुनरुज्जीवन करने जा रहे हैं, जिसमें घृणा का लेशमात्र भी नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पर्याप्त है। हम किसी भी जनसमुदाय से घृणा नहीं करते।

प्रश्न: हमारे ग्राम में संघ की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वहाँ मुसलमान नहीं रहता?

उत्तर: संघ में हम हिंदुओं को संगठित करते हैं, मुसलमानों को नहीं। मैं समझता हूँ कि आप सब हिंदू हैं, इसलिए संघ की आवश्यकता है। वहाँ मुसलमान रहते हैं या नहीं, इससे हमारा क्या संबंध?

प्रश्न: क्या आप मुस्लिमों की कार्रवाई पर रोक लगाने के लिए हिंदुओं को संगठित नहीं करते?

उत्तर: यदि मुहम्मद पैगंबर का जन्म नहीं हुआ होता और इस्लाम का अस्तित्व न भी होता, तब भी हम इस काम को इसी तरह करते रहते।

प्रश्न: क्या आप ऐसा नहीं सोचते हैं कि संघ की नीतियों से हिंदू और मुसलमानों में बड़ी खाई निर्माण हुई है?

उत्तर: हमारा अनुभव ऐसा नहीं है। हमारा अनुभव है कि जिन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है, उनका तुष्टिकरण करने की नीति जब कुछ खास लोग अपनाना चाहते हैं, तो विघटनकारी प्रवृत्ति बढ़ती है। मैं आपको एक व्यक्तिगत अनुभव बताता हूँ। नागपुर के रहने वाले मुस्लिम लीग के एक घोषित कार्यकर्ता के साथ एक बार रेल के एक ही डिब्बे में प्रवास करने का अवसर आया। तृतीय श्रेणी के डिब्बे में जैसे ही प्रवेश करने लगा, उन्होंने मेरा स्वागत किया और मेरे बैठने के लिए स्थान दिया। तब उनके एक मित्र ने कहा— 'नवाब साहब, क्या आप इन्हें पहचानते नहीं?'

नवाब साहब ने अपने मित्र को उत्तर दिया, 'हाँ, मैं इन्हें जानता हूँ। ये संघवाले हैं। ये सच्चे आदमी हैं। ये शूर हैं। इनके साथ हमारी मित्रता चिरस्थायी हो सकती है।' मैंने कहा, 'आप ठीक कहते हैं। मित्र बन सकते हैं। भाई बन सकते हैं। देश के उत्थान में साथी भी बन सकते हैं, किंतु तुष्टिकरण के द्वारा जो आपका मस्तिष्क विकृत कर रहे हैं, वे आपके दुश्मन हैं।'

२. संघ पर आरोप

प्रश्न: गाँधी जी की हत्या करनेवाले गोडसे का क्या संघ से कभी संबंध था? संघ का इस हत्या से क्या किसी भी प्रकार का संबंध था?

उत्तर: गोडसे किसी समय संघ का सदस्य था, किंतु बाद में (१० वर्ष पूर्व) उसने संघ से त्यागपत्र दे दिया था। प्रश्न के उत्तरार्ध के संबंध में यह कहना है कि उस हत्याकांड के प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि संघ का इससे किसी भी प्रकार का संबंध नहीं था।

प्रश्न: गाँधीवादी राजनीति से आपका विरोध क्यों है?

उत्तर: राजनीति में न होने के कारण गाँधी जी तथा मेरे मध्य कोई विरोध नही था। गाँधी जी को मैं महान पुरुष मानता हूँ तथा उनके प्रति मेरे हृदय में आदर है।

प्रश्न: गाँधीवाद प्रेम-भाव पर आधारित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भी यही धारणा है। फिर दोनों में अंतर कैसा है?

उत्तर: एक अंतर है कि हम महात्मा गाँधी जैसे महान नहीं हैं। अतएव हम सबको समाहित करने में असमर्थ हैं। इसलिए हम पहले सारे हिंदुओं को प्रेमसूत्र में पिरोना चाहते हैं।

प्रश्न: कांग्रेसी नेता और संसदीय सचिव श्री गोविंद सहाय जी के पत्र के संबंध में आप क्या कहेंगे?

उत्तर: मुझसे आप किस प्रकार के उत्तर की अपेक्षा करते हैं? संसदीय सचिव शायद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को मुझसे अधिक जानते होंगे। श्री गोविंद सहाय जी कहते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक जर्मनी जाकर आए किंतु मेरी जानकारी के अनुसार डा. हेडगेवार जी भारत के बाहर गए ही नहीं। इतने बड़े विद्वान व्यक्ति के साथ वाग्युद्ध उचित नहीं।

प्रश्न: ऐसा कहा जाता है कि संघ के स्वयंसेवकों ने स्वतंत्रता-संग्राम में भाग नहीं लिया?

उत्तर: यह बात बिल्कुल गलत है। सन् १९४२ में आष्टी एवं चिमूर में स्वतंत्रता-संग्राम में अधिकतर स्वयंसेवक ही थे।

प्रश्न: जनता में ऐसी धारणा बनी है कि संघ का कार्य गुप्त है?

उत्तर: संघ का कार्य तो सदा से प्रकाश्य रूप में होता आया है। इसकी शाखाएँ खुले मैदान में लगती हैं। मैं भी जो कुछ कहता हूँ खुले मैदान में ही। ऐसी स्थिति में अगर कोई इसे गुप्त संस्था कहे, तब मैं क्या कर सकता हूँ।

प्रश्न: संघ कांग्रेस सरकार का विरोधी है और वर्तमान सरकार को 'अराष्ट्रीय' कहता है?

उत्तर: मैंने कभी भी कांग्रेस सरकार का विरोध नहीं किया और न इस सरकार को 'अराष्ट्रीय' ही कहा है।

प्रश्न: आप प्राचीन बातों की पुनर्प्रतिष्ठापना की बातें करते हैं, तब क्या आप प्रतिक्रियावादी नहीं हैं?

उत्तर: 'पुनर्प्रतिष्ठापना करना प्रतिक्रियावाद है' ऐसी मेरी धारणा नहीं है।

प्रश्न: उक्त दोनों ही शब्द पर्यायवाची हैं?

उत्तर: यदि ऐसी बात है तो फिर मुझे इसके लिए शब्दकोष देखना होगा। मेरे मतानुसार प्रतिक्रिया प्रगति की विरोधक होती है, जबकि पुनर्प्रतिष्ठापना किसी मृतप्राय वस्तु में जीवन फूँकना है।

प्रश्न: क्या आप यह नहीं मानते कि संघ गाँधीवाद के समान ही पुनर्प्रतिष्ठापनावादी तथा प्रतिक्रियात्मक है?

उत्तर: ठीक। यदि श्रेष्ठतम मानवीय जीवन के मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठापना का इच्छुक होने के कारण गाँधीवाद प्रतिक्रियात्मक है, तो 'प्रतिक्रियावादी गाँधी जी' की श्रेणी में बैठाए जाने पर हमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

प्रश्न: संघ का कार्य केवल हिंदुओं तक सीमित है; तब फिर सर्वसंग्रही संस्कृति का निर्माण करने के ध्येय से वह कैसे मेल खा सकता है?

उत्तर: जिन घटक संस्कृतियों में से हम एक सर्वसामान्य एवं समान संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, उनका सर्वप्रथम यथासंभव परिपूर्ण होना आवश्यक है। पहले हम अपनी स्वयं की संस्कृति को ही परिपूर्ण बनाएँ। इसके साथ ही हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि संघ सर्वसंग्राहक संस्कृति के न कभी विरुद्ध था और न है। 'समस्त विश्व एक है'– ऐसा हम मानते हैं, किंतु व्यवहारवादी होने के नाते उस ध्येय को व्यवहार में लाया जाना आज तो कठिन ही प्रतीत होता है।

३. संघकार्य के विषय में

प्रश्नः क्या संघ हिंदू-राज्य स्थापित करना नहीं चाहता?

उत्तरः संघ तो विशुद्ध सांस्कृतिक संस्था है। राजनीति से इसका कोई संबंध नहीं। फिर राज्य स्थापित करने का प्रश्न निरर्थक है।

प्रश्नः हरिजन-उद्धार के बारे में संघ के विचार क्या हैं?

उत्तरः हमारे इतिहास पुराण आदि में कहीं भी 'हरिजन' शब्द नहीं आया। यह नई कल्पना है। जिन लोगों के विषय में यह 'हरिजन' शब्द प्रयोग हुआ है, उन्हें संघ समाज का एक अविच्छिन्न और अविच्छेद अंग मानता है और इसी दृष्टि से उन्हें गले लगाता है, न कि अस्पृश्य हरिजन समझकर। जिस विषय पर अधिक जोर दिया जाता है, वह अधिक जटिल बनता जाता है। इसका समाधान तो इसकी क्रमिक उपेक्षा में ही है। स्पृश्य-अस्पृश्य जैसी सामाजिक बुराई अधिक बढ़ावा देने से ही अधिक जटिल बनी है। संघ हिंदू मात्र को एक समझता है। हमारे सामने जात-पात या अस्पृश्यता का कोई प्रश्न ही नहीं है।

प्रश्नः संघ अपने स्वयंसेवकों को सैनिक शिक्षा देता है। क्या इससे यह राजनीतिक संस्था प्रमाणित नहीं होती?

उत्तरः ऐसा विचार भ्रमपूर्ण है। जिसे लोग सैनिक शिक्षा समझते हैं, वह अनुशासन की शिक्षा है। धर्मों के संबंध में भ्रम कैसे उत्पन्न किया जाता है, इसका एक छोटा-सा उदाहरण यथेष्ट होगा। मुंबई में १९४७ के जनवरी में मकर संक्रांति उत्सव बहुत अनुशासित एवं बृहद् रूप से मनाया गया। सभी लोगों के बैठने आदि की व्यवस्था थी। इस कार्यक्रम की रिपोर्ट एक समाचार-पत्र ने इस प्रकार दी कि यह एक सैनिक शिविर था। इसी से समझा जा सकता है।

प्रश्नः संघ अराजनीतिक संस्था है और इसके सदस्य किसी भी राजनीतिक संस्था के सदस्य हो सकते हैं। क्या कम्युनिस्ट भी इसके सदस्य हो सकते हैं?

उत्तरः कम्युनिस्ट एक विशिष्ट विचार-प्रणाली को मानने वाले हैं। यदि वे संघ में आएँगे तो उन्हें उस विचार-प्रणाली को छोड़ना होगा। यदि वे उन विचारों को नहीं छोड़ेंगे तो वे संघ में आएँगे ही नहीं। संघ

का द्वार सबके लिए उन्मुक्त है।

प्रश्न: आपके संगठन का उद्देश्य क्या है?

उत्तर: हिंदुत्व में निहित उन सभी बातों की पुनर्स्थापना जो श्रेष्ठ हैं। उदाहरणार्थ भारतीय सभ्यता के आधार पर–

१. उस सभ्यता से प्रभावित लोगों को स्थायी स्नेह-सूत्र में गुंफित करना।

२. हिंदू समाज में प्रविष्ट समस्त विघटनकारी प्रवृत्तियों को नष्ट कर उसे समान परंपरा के सत्य का ज्ञान कराना।

३. ये सारी ऊपरी विभिन्नताएँ आंतरिक एकता की प्रतिबिंब मात्र हैं– इस बात का अनुभव समाज के समस्त घटकों को कराना।

४. आपस में विश्वास, प्रेम एवं आदर का भाव निर्माण करना।

५. अपनी मातृभूमि –एक इकाई के रूप में संपूर्ण भारतवर्ष– के प्रति अपार श्रद्धा एवं प्रेम का भाव लोगों के हृदय में जागृत करना।

६. समाज के घटकों में विशुद्ध राष्ट्रीय चारित्र्य, निःस्वार्थ समाजसेवा की वृत्ति, एकात्मता का ज्ञान तथा स्थायी कर्तव्य-भावना आदि राष्ट्रीय सद्‌गुणों के बीज बोना।

प्रश्न: 'हिंदुस्थान हिंदुओं का' – यह नारा क्या संघ का नहीं है?

उत्तर: संसार में हिंदुओं के लिए हिंदुस्थान को छोड़कर अन्य कौन सा देश है? क्या यह बात सत्य नहीं? इसलिए 'हिंदुस्थान हिंदुओं का' है, इतना ही हम कहते हैं। 'हिंदुस्थान केवल हिंदुओं का ही है' ऐसा कहनेवाले दूसरे लोग हैं।

प्रश्न: संघ की सदस्यता के लिए किस बात की आवश्यकता है?

उत्तर : यही कि वह पूर्ण अवस्था प्राप्त हिंदू हो।

प्रश्न: क्या संघ के सदस्य किसी राजनीतिक दल के सदस्य बनने की दृष्टि से स्वतंत्र हैं?

उत्तर: अवश्य। उन्हें आज तक किसी ने भी ऐसा करने से रोका नहीं है।

प्रश्न: क्या संघ का संविधान पूर्ण है? उसमें परिवर्तन होने की संभावना है क्या?

उत्तर: कोई भी संविधान पूर्ण नहीं होता। यदि मेरे सहयोगी कार्यकर्ताओं का यह मत हो कि अपने वर्तमान क्षेत्र को छोड़कर संघ को अन्य किसी क्षेत्र में कार्य करना चाहिए तो कार्य के दूसरे क्षेत्र भी वे ढूँढ सकते हैं।

प्रश्न: क्या प्रांतीय अथवा केंद्रीय चुनाव में खड़े होनेवाले किसी सदस्य का संघ समर्थन करेगा अथवा उक्त आशय की एकाध विज्ञप्ति आप प्रकाशित करेंगे?

उत्तर: हाल ही में प्रकाशित हुए संविधान के अनुसार तथा उसके पूर्व भी संघ राजनीति से सर्वथा अलिप्त है। अतएव यह पूर्णतः स्वयं उनका ही प्रयास एवं दायित्व होगा। मैं उसके समर्थन के हेतु किसी भी प्रकार का वक्तव्य नहीं निकालूँगा। और जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं अपने जीवन में किसी चुनाव में कभी भी भाग नहीं लूँगा।

प्रश्न: आप चुनाव नहीं लड़ेंगे, परंतु आपके सर्वाधिक निकट कौन सी राजनैतिक संस्था है, जिसे आपके स्वयंसेवक मत देंगे?

उत्तर: स्वयंसेवक मत देने को स्वतंत्र हैं। मैं किसी को बाध्य नहीं कर सकता।

प्रश्न: राजनीति में उतरे बिना आप अपने विभिन्न कार्यक्रमों को कैसे पूर्ण कर सकेंगे?

उत्तर: किसी भी कार्य को पूर्ण करने के दो मार्ग हैं– पहला सत्ता के द्वारा तथा दूसरा समाज की मनोरचना में परिवर्तन करते हुए। सत्ताधिष्ठित सरकार प्रथम मार्ग का अनुसरण करे। हम मनोवृत्ति-परिवर्तन का दूसरा मार्ग स्वीकार करते हैं।

प्रश्न: आप तो कहते हैं कि राजनीति में नहीं पड़ते, परंतु आपने बताया कि 'जिसमें लाभ का समुचित बँटवारा हो तथा जिसपर राज्य की सूक्ष्म देखरेख हो, ऐसी सहकारी योजना' के पक्ष में आपने अपना मत दिया है।

उत्तर: जिसे हम 'सांस्कृतिक कार्य' कहते हैं, उसमें कहीं कहीं राजनीति से भी संबंध आ ही जाता है। उसके विवादास्पद विषय को छोड़कर शेष क्षेत्र में हम कार्य करते हैं, किंतु मैंने तो यहाँ पर

सर्वसाधारण हितों की ही बातें कही है, यह कोई राजनीति नहीं। साथ ही हमें इस सत्य को भी नहीं भूलना चाहिए कि भूखे पेट संस्कृति का विकास संभव नहीं हुआ करता। अतः यद्यपि हम एक विशुद्ध सांस्कृतिक क्षेत्र में ही कार्य करते हैं, फिर भी हमें यह तो देखना ही पड़ता है कि जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ सांस्कृतिक विकास में बाधक सिद्ध न होकर उसकी सहायक ही हों।

प्रश्न: क्या राजनीति में भाग लिये बिना सांस्कृतिक प्रगति संभव है?

उत्तर: हाँ, हमारा यही मत है।

प्रश्न: यदि देश की राजनैतिक संस्थाएँ आपके कार्य को राजनैतिक समझकर उसका विरोध करें तो?

उत्तर: यह एक अजीब सी ही बात होगी। किंतु यदि वे ऐसा करें ही, तो वे उसके लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं।

प्रश्न: यदि वे विरोध करें तो आप क्या करेंगे?

उत्तर: हम उन्हें विरोध करने देंगे। किंतु साथ ही अपना कार्य भी चालू रखेंगे।

प्रश्न: कार्यकर्ताओं की बैठकों में बाहर के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता, ऐसा क्यों?

उत्तर: प्रत्येक संस्था के कार्यकर्ताओं की बैठकों में बाहरी लोगों, यहाँ तक कि संवाददाताओं तक को आने नहीं दिया जाता। यह शिष्टाचार सर्वमान्य है।

प्रश्न: क्या यह सच है कि संघ एक सैनिक संगठन है?

उत्तर: कदापि नहीं। जिस प्रकार की साधारण सैनिक शिक्षा विद्यालयों में दी जाती है, वैसी ही हम दिया करते हैं। किसी भी संगठन में अनुशासन-निर्माण करने की दृष्टि से उसकी आवश्यकता है, ऐसा मेरा स्पष्ट मत है। जिसे लोग 'सैनिक शिक्षा' समझते हैं, वह वास्तव में अनुशासन के लिए प्रशिक्षण का एक भाग है।

प्रश्न: किंतु आप खड्ग का उपयोग करना भी तो सिखाते हैं?

उत्तर: अवश्य, शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से हमारा राष्ट्र सदैव ही यह कार्य करता आया है।

प्रश्न: संघ के विषय में कोई अधिकृत साहित्य प्रकाशित हुआ है क्या?

उत्तर: संघ ने अपने कार्य का निर्माण लोगों के हृदय पर ही किया है। अब हमें उसे कागज पर भी उतारना पड़ेगा।

प्रश्न: इस सरकार से एकनिष्ठ रहने का आदेश क्या आपने स्वयंसेवकों को दिया है?

उत्तर: यह गुण आज प्रत्येक व्यक्ति में निर्माण होने की आवश्यकता है। संघ का स्वयंसेवक ही इस बात के लिए अपवाद कैसे हो सकता है।

प्रश्न: यदि आपकी सारी कल्पनाएँ सत्य हुईं, तो क्या आपका कार्य मुसलमानों तथा सिखों का विरोधक सिद्ध नहीं होगा? और क्या फिर सरकार की असांप्रदायिक भूमिका से उसका विरोध नहीं आएगा?

उत्तर: पहले तो हम सिख एवं हिंदुओं में भेद करते ही नहीं, दूसरे हमने अपने कार्य को सांस्कृतिक क्षेत्र तक ही सीमित रखा है। इसलिए असांप्रदायिक राज्य को हमारे कार्य से बाधा उत्पन्न होने की तनिक भी संभावना नहीं, क्योंकि सरकार के कामकाज से हमारा यत्किंचित भी संबंध नहीं आता।

प्रश्न: क्या विभाजन के पूर्व हुए झगड़ों में संघ का कोई हाथ था?

उत्तर: नहीं। कोई नहीं।

प्रश्न: ऐसी धारणा है कि संघ केवल शिक्षित वर्ग हेतु कार्यरत है, उपेक्षित व कमजोर वर्ग से उसे कुछ लेना देना नहीं है?

उत्तर: सभी कार्य शिक्षित वर्ग से ही आरंभ होते हैं। उसके बाद ही कार्य नीचे फैलता है। अब हम इस स्थिति में हैं कि समाज के किसी स्तर के उपेक्षित, कमजोर एवं अभागे व्यक्ति तक पहुँच सकें।

प्रश्न: आपकी दृष्टि में कौन सा साधन है, जो एकात्मभाव उत्पन्न कर सके? इस लक्ष्य को पाने के लिए आपके क्या कार्यक्रम हैं?

उत्तर: सारे व्यक्ति एक खुले मैदान, संघस्थान, पर एकत्रित हों। सारे मिलकर शारीरिक अभ्यास करें। सारे एक ही प्रार्थना करें तथा संघ एवं समाज के सामूहिक समान विकास के विषय में विचार-विमर्श करें। प्राकृतिक गति से इस प्रकार कोई भी साधारण-सा दिखनेवाला

कार्य शिक्षाप्रद हो सकता है। सामूहिक कार्यक्रम हमें स्वयं को तौलने तथा समाज के दुःख-सुख में सहानुभूति देता है। अपने स्वकेंद्रित विचारों के बंधन तोड़कर समष्टि का विचार बढ़ाने में दैनंदिन 'संस्कारों' की अत्यंत आवश्यकता है।

ऊपरी सतह पर दिखनेवाली ये छोटी-छोटी बातें एवं सामान्य कार्यक्रम हमें स्वस्थ विचार करने की प्रेरणा देते हैं।

प्रश्न: आप दैनंदिन कार्यक्रम पर विशेष ध्यान क्यों देते हैं?

उत्तर: राष्ट्रीय पुनर्संगठन का अर्थ उन न्यूनताओं को कम करना है, जो राष्ट्रीय चरित्र एवं समन्वय के प्रतिकूल हों। अपने राष्ट्र के प्रति जागरूकता प्रेम, आदर्शों के प्रति श्रद्धा, निष्ठा, मानवता तथा अनुशासन रखने की प्रेरणा देती है। भाव-जागृति तथा चरित्र का निर्माण तभी संभव है, जब सब प्रतिदिन मिलें व नियमित तथा इस प्रकार के पोषक वातावरण में मिलें। इसका एक उदाहरण श्री रामकृष्ण एवं तोतापुरी जी का है। रामकृष्ण जी द्वारा तोतापुरी महाराज से यह पूछने पर कि जो स्वयं जीवनमुक्त है, उसे दैनिक उपासना की क्या आवश्यकता है? तोतापुरी जी ने दूध के कटोरे को दिखाते कहा कि इसे उपयोग में लाने के लिए प्रतिदिन स्वच्छ माँजना पड़ता है। इसी प्रकार मन को स्वच्छ करना पड़ता है।

प्रश्न: क्या राजनीतिक आकांक्षाएँ, एक भाषा, अंतर्जातीय विवाह तथा अस्पृश्यता-निवारण से एकता हो सकती है?

उत्तर: इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं, किंतु प्रत्येक का अलग से निराकरण करना मुख्य सामाजिक परिधि से अलग होगा। यह तो रथ के पीछे घोड़ा बाँधने जैसा होगा।

प्रश्न: आपकी संस्था की विशेषता क्या है?

उत्तर: साधारण से दिखनेवाले शारीरिक संस्कार जैसे प्रारंभिक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदू-समाज का संगठन हमारा ध्येय है। किंतु हमारा संगठन समाज से पृथक नहीं है। हम सुसंगठित समाज के आकांक्षी हैं।

प्रश्न: हिटलर ने भी इसी प्रकार युवाओं को अनुशासन के माध्यम से एक किया था, किंतु बाद में अन्य राजनीतिक पक्षों को दबा दिया। उस 'नाजी' संगठन में और आपमें क्या अंतर है?

उत्तर: हिटलर का आंदोलन राजनीतिक था। हम राजनीति से संलग्न न होते हुए जीवन-रचना निर्माण करना चाहते हैं। राजनीतिक उद्देश्य से बहुत से लोग एकत्र आते हैं परंतु कार्यसिद्धि न होने पर वे अलग हो जाते हैं। तात्कालिक उपलब्धि नहीं, अपितु अक्षुण्ण एकता हमारा ध्येय है। इसी कारण हम राजनीति से अलग हैं।

प्रश्न: यह कैसे संभव हो सकता है?

उत्तर: हम त्यागमय जीवन से यह प्राप्त कर सकते हैं। जब समाज के कतिपय घटक इस विचार से कार्य करते हैं, तब अन्य घटक भी उनका अनुकरण करने लगते हैं।

प्रश्न: क्या आपका ध्येय पूर्णतः सामाजिक है?

उत्तर: हमारा ध्येय जीवन के हर पक्ष को समाहित करता है– सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक इत्यादि।

प्रश्न: संगठन के पश्चात् क्या?

उत्तर: संगठन को सँभालना व बढ़ाना।

प्रश्न: उसके बाद?

उत्तर: क्या यही उसकी पूर्णता नहीं है?

प्रश्न: भारत में स्वयंसेवकों की संख्या कितनी है, क्या आप बता सकेंगे?

उत्तर: यह कार्य कार्यालय का है। मुझे निश्चित संख्या बताना संभव नहीं है।

प्रश्न: क्या प्रतिबंध हटने के पश्चात् आपका कार्य बढ़ा है?

उत्तर: हाँ। संघकार्य का विस्तार विशेष रूप से हो रहा है। बड़ी संख्या में तरुण वर्ग बढ़ रहा है।

प्रश्न: क्या स्वयं का पक्ष (पार्टी) छोड़कर कुछ साम्यवादी (कम्युनिस्ट) संघ मे सम्मिलित हुए हैं? पूर्व में आपने पंडित नेहरू को पत्र लिखा था, उस आधार पर मैं यह प्रश्न पूछ रहा हूँ।

उत्तर: यह तो साम्यवादी ही बता सकते हैं। मेरी ऐसी मान्यता है कि यदि कोई साम्यवादी संघ में प्रवेश करता है, तो प्रारंभ में वह संघ का काम साम्यवादी रहकर करेगा, किंतु कालांतर में वह साम्यवादी नहीं रहेगा।

प्रश्न : आपके शिविरों में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है?

उत्तर : राष्ट्रसेवा के लिए सदैव तत्पर शक्ति-निर्माण का कार्य हम करते हैं। स्वयंसेवकों में अत्युत्तम उत्सर्ग एवं निःस्वार्थ भाव निर्माण हेतु हम शारीरिक तथा बौद्धिक शिक्षा प्रदान करते हैं।

प्रश्न : इस वर्ष कितने स्थानों पर 'शिविर' लगे? २०० स्थानों पर शिविर लगे— ऐसा वृत्त-पत्रों में पढ़ा।

उत्तर : यह कैसे संभव है? प्रत्येक शिविर में यदि मैं एक या दो दिन भी रहूँ तो सब शिविरों को कितने दिन लगेंगे? यह वार्ता गलत है। इस वर्ष १४ स्थानों पर शिविर लगे।

प्रश्न : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अभी तक जो प्रगति की गई है, क्या आप उससे संतुष्ट हैं?

उत्तर : जहाँ तक हमारा संबंध है, मैं निश्चित ही प्रगति से संतुष्ट हूँ। यद्यपि एक कार्यकर्ता के लिए प्रगति का सच्चा संतोष कभी होता ही नहीं।

प्रश्न : क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कोई सामाजिक सेवा का कार्य कर रहा है?

उत्तर : हम अपने कार्यों की प्रसिद्धि नहीं चाहते। स्वयंसेवक प्रत्येक स्थिति में समाज सेवा करते हैं। उदाहरण के लिए देश में अभी जो अकाल की स्थिति है, हम उन क्षेत्रों में सहायतार्थ जुटे हैं। हम केवल उतना ही प्रचार करना चाहते हैं, जितना अपने समाज के अन्य बंधुओं से सहायता का सामान जुटाने के लिए जरूरी हो। इससे अधिक प्रचार हम नहीं करना चाहते। न ही हम कार्य का श्रेय लेना चाहते हैं, क्योंकि हम किसी का वोट लेने नहीं निकले।

प्रश्न : लोगों का आम ख्याल है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ गाँव की जनता को आकर्षित नहीं कर सका?

उत्तर : यह भावना केवल शहरी क्षेत्रों में है, ग्रामीण अंचल में नहीं। ग्रामीण क्षेत्रों में हमारी सैंकड़ों शाखाएँ चल रही हैं। वहाँ इस प्रकार की गलतफहमी कोई भी निर्माण नहीं कर सकता।

प्रश्न : काली टोपी पहनने का क्या कोई खास अर्थ अथवा महत्त्व है?

उत्तर : कोई खास महत्त्व नहीं। जब इसका प्रचलन हुआ, तब वह अधिक प्रचलित थी।

प्रश्न: परंतु क्या काला रंग शोक का प्रतीक नहीं है?

उत्तर: मुझे लगता है कि इस प्रकार सोचना ईसाई कल्पना है। हमारे यहाँ भगवान कृष्ण काले और काली माता भी काली हैं। हमारे यहाँ यह शोक का चिह्न कैसे हो सकता है? हमारे देश में कई लोग काले रंग के हैं। सच तो यह है कि हमारे लिए काला रंग बहुत ही शुभ है। 'कृष्ण' नाम का अर्थ ही काला है। अपने समय की अतीव सुंदर समझी जानेवाली द्रौपदी भी श्याम वर्ण की ही थी।

प्रश्न: परंतु उसे बहुत कष्ट उठाने पड़े?

उत्तर: कई अच्छे लोग कष्ट में फँसे थे। सच तो यह है कि अच्छा होने के लिए ऐसी कीमत चुकानी ही पड़ती है।

प्रश्न: अब गोलवलकर के बाद कौन?

उत्तर: धन्यवाद। आप ही क्यों नहीं?

प्रश्न: गुरुपीठ पर आसीन होना इतना सरल नहीं है?

उत्तर: यदि सरल नहीं है तो आपको मजबूत बनना होगा। हमारे यहाँ तो यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। यह प्रश्न तभी उत्पन्न होता है, जब कोई व्यक्ति संगठन के लिए अपरिहार्य बने। संघ की रचना इस प्रकार से कभी नहीं हुई। इसलिए कोई न कोई व्यक्ति सामने आएगा और उत्तरदायित्व सँभालेगा।

प्रश्न: प्रगति के लिए जिस प्रकार की पद्धतियाँ आप उपयोग में लाते हैं, अन्य देशों में उनका उपयोग नहीं किया जाता। फिर यहाँ ही इसका उपयोग क्यों?

उत्तर: यह तो स्पष्ट है कि समाज की परिस्थिति के अनुसार पद्धतियाँ अलग होंगी। क्या हम यह कह सकते हैं कि हमारे यहाँ के लोगों की और इंग्लैंड के लोगों की परिस्थिति समान है? हर अंग्रेज व्यक्ति देशभक्ति से ओतप्रोत है। एक अबोध बालक भी स्वाभिमान से कहेगा– 'ओ इंग्लैंड! सभी दोषों के बावजूद मैं तुझसे प्रेम करता हूँ।' पर यहाँ हम देखते हैं कि हमारे वरिष्ठ नेता भी निंदापूर्वक हमारे पवित्र हिमालय की ओर संकेत करते हुए कि 'वह तो बंजर स्थान है, जहाँ घास का एक तिनका भी नहीं उगता', हमारी मातृभूमि का अपमान करते हैं।

फिर यहाँ भिन्न प्रकार की सामाजिक स्थिति है। इसलिए एक पद्धति का उपयोग कैसे उपयुक्त होगा? वहाँ राजनीतिक दल और राजनीतिक नेता खिलाड़ी मनोवृत्ति से व्यवहार करते हैं। उदाहरणार्थ सन् १९४५ में जब 'लेबर पार्टी' सत्ता पर आई, तो उन्होंने विरोधी दल के नेता को अमरीका में राजदूत और चीन में उपनेता बनाकर भेजा। यहाँ आप ऐसे व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकते। सत्ता दल का तृतीय श्रेणी का आदमी भी अन्य दलों के व्यक्तियों की अपेक्षा कार्यक्षम माना जाता है। अन्य दलों के व्यक्तियों को हमारी वर्तमान सरकार के ढाँचे में कोई स्थान नहीं है। फिर हम अपने देश की तुलना अन्य देशों के साथ कैसे कर सकते हैं।

अतः अपने लोगों में देशभक्ति, अनुशासन आदि का भाव भरने के लिए संघ को विशेष पद्धति का अवलंबन करना पड़ा है।

प्रश्नः समाचार-पत्र संघ के आलोचक क्यों हैं?

उत्तरः क्योंकि सरकार उनसे ऐसा करने को कहती है। कुछ समय पूर्व केंद्रीय सरकार के तत्कालीन गृहमंत्री ने समाचार-पत्रों में संघ के विरुद्ध प्रकाशित एक समाचार की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया। प्रत्युत्तर में मैंने उक्त मंत्री महोदय को यही कहा कि ऐसे समाचार तो उनके मंत्रालय द्वारा ही समाचार-पत्रों को दिए जा रहे हैं। मंत्री महोदय निरुत्तर हो गए।

कुछ समय पूर्व एक पत्रिका में 'संघ का रहस्य' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ। मुझे आश्चर्य है कि शिक्षित पुरुष भी रहस्यों एवं चमत्कारों की चर्चा करते हैं। कोई भी वस्तु रहस्य उसी समय तक रहती है, जब तक उसे समझने में कोई असफल रहता है।

लगभग तीस वर्ष पूर्व में कुछ स्वयंसेवक बंधुओं के साथ डाक्टर साहब से भेंट करने अकोला स्टेशन पर गया था। जैसे ही गाड़ी प्लेटफार्म पर आई, हम लोगों ने एक ग्रामीण व्यक्ति को बेतहाशा भागते देखा। मैंने जब उससे उसके भागने का कारण पूछा, तब उसने बताया कि वह यह देखना चाहता था कि गाड़ी के इंजन को खींचने के लिए कितने बैल उसमें जोते गए थे। उस अबोध ग्रामीण ने उसके पूर्व रेलगाड़ी नहीं देखी थी, इसलिए वह

घोड़ों की भी कल्पना नहीं कर सकता था। 'रहस्य-चर्चा' करनेवाले इन व्यक्तियों को देखकर मुझे उक्त ग्रामीण का स्मरण हो आता है। लेकिन दोनों में एक अंतर अवश्य है और वह यह है कि 'रहस्य-चर्चा' करनेवाले इन व्यक्तियों में उस ग्रामीण सरीखी अबोधता नहीं है।

प्रश्न: यह वर्ग समय-समय पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगाने की माँग क्यों करता रहता है?

उत्तर: संभवतः उनका प्रयास हमें भयभीत करने का हो। किंतु वे हमें भयभीत नहीं कर सकते, क्योंकि हम उक्त अवस्था से निकल चुके हैं। वस्तुतः वे शेखी बघारनेवाली ऐसी चर्चा अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए ही करते हैं।

मुझे यह अनुभव कर अत्यधिक वेदना होती है कि इस देश में राष्ट्रभक्ति की उपेक्षा हो रही है। दूसरी ओर अपने आपको चीन का हस्तक बतानेवाले चुनावों में भाग ले सकते हैं और चुने भी जा सकते हैं। आज अपने राष्ट्र की ऐसी संकटपूर्ण स्थिति है।

प्रश्न: इस दुःस्थिति का निदान क्या है?

उत्तर: ध्रुवीकरण।

प्रश्न: किनका ध्रुवीकरण?

उत्तर: एक ओर सभी राष्ट्रभक्त शक्तियों का ध्रुवीकरण और दूसरी ओर सभी राष्ट्रविरोधी शक्तियों का। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं।

प्रश्न: आज के इस आणविक प्रक्षेपास्त्रों के युग में लाठी समान पुराने शस्त्र का प्रशिक्षण देने में क्या तुक है?

उत्तर: राष्ट्रीय मामलों में सरकार और जनता की भूमिका क्या हो, इसके प्रति अज्ञान को ही ऐसे प्रश्न प्रकट करते हैं। अण्वास्त्र आदि शस्त्रों का प्रयोग सरकार ही करती है। ऐसे शस्त्रों के प्रयोग का प्रशिक्षण सेना को दिया जाता है। अमरीका या रूस जैसे देश में भी सामान्य व्यक्ति को इन शस्त्रों का प्रयोग नहीं करने दिया जाता। उन देशों में भी जनसाधारण को शारीरिक प्रशिक्षण लाठियों, तीर-कमानों से ही दिया जाता है। ऐसा प्रशिक्षण शरीर

और मस्तिष्क का अनुशासन स्थापित करने के लिए दिया जाता हैं। संघ भी वही कर रहा है।

प्रश्नः बड़े-बूढ़े लोग जब देखते हैं कि रोज का कार्यक्रम मात्र खेलना-कूदना, गीत गाना, प्रार्थना आदि है, तो वे समझते हैं कि वह बच्चों के लिए ही है। उनको लगता है कि उनकी भूमिका मात्र सहानुभूति प्रकट करने की ही है। क्या यह एक न्यूनता नहीं है?

उत्तरः यह एक गलत धारणा है। जब हम कहते हैं कि यह समाज के पुनर्गठन का कार्य है, तो वह वर्तमान समाज के लिए भी लागू होता ही है। वर्तमान समाज का अर्थ है– बड़े, बूढ़े व गृहस्थ। कोई भी छोटे बच्चों को 'आज का समाज' तो नहीं कहेगा। वे तो 'कल की पीढ़ी' कहलाएँगे। अतः समाज को संगठित करने की जिम्मेदारी वर्तमान पीढ़ी पर ही है। अर्थात् बड़े-बूढों को इस दृष्टि से सामाजिक एकत्रीकरण का कार्य सक्रियता के साथ करना चाहिए।

प्रश्नः एक ऐसी भावना है कि बड़े व्यक्ति प्रतिष्ठित होने के कारण हाफ पैंट पहनकर बच्चों के समान शारीरिक कार्यक्रम करें, यह शोभा नहीं देता?

उत्तरः यह ठीक है कि समाज में हमारी प्रतिष्ठा है, पर क्या वह हमारी गुणवत्ता पर है या हमारी बाहरी वेशभूषा पर? यदि वह बाहरी वेशभूषा पर है, तो उसका सारा श्रेय दर्जी या धोबी को ही दिया जाना चाहिए।

एक महत्त्व के मुद्दे को हमें ध्यान में रखना होगा। भगवद् गीता में कहा गया है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः। (गीता, ३/२१)

जैसा व्यवहार बड़े लोग करेंगे, वैसा शेष जनता करेगी। जब प्रतिष्ठित जन अपने व्यवहार से एक श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए चलेंगे तो वे अन्य लोगों की दृष्टि में भी लोकप्रिय रहेंगे और उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ेगी ही। जब महात्मा जी और मालवीय जी गोलमेज परिषद् हेतु इंग्लैंड गए, तब वे स्वदेशी परिधान में थे, पर उनकी प्रतिष्ठा पर कोई आँच नहीं आई। उल्टे उनके प्रति सम्मान की भावना बढ़ी ही।

प्रश्नः क्या आप इसे व्यवहार्य मानते हैं कि करोड़ों लोगों को संघस्थान पर लाया जा सकता है? फिर संघ केवल पुरुषों के लिए ही सीमित है। समाज के आधे भाग को, अर्थात् महिलाओं को उसमें प्रवेश नहीं। ऐसी हालत में संपूर्ण समाज को इस दैनिक कार्यपद्धति से किस प्रकार संगठित किया जा सकेगा?

उत्तरः हमारी एक घंटे की शाखा के बाद स्वयंसेवक समाज के अपने भाइयों से मिलते-जुलते हैं, उनके सुख-दुःख में सहभागी होते हैं। अपने शुद्ध चारित्र्य और सेवाभाव से उनके हृदय में अपने प्रति विश्वास बढ़ाते हैं। इससे स्वयंसेवकों के परिवारजन, उनके हित संबंधी, मित्र आदि संघ की भावना से सराबोर हो जाते हैं। इस भाँति शाखा सामूहिक प्रेम का भाव जगाने में एक साधन बनती हैं। क्रमशः यह भाव जनता के बीच फैलता जाता हैं।

प्रश्नः कितने समय में यह कार्य संपन्न हो सकेगा?

उत्तरः यदि आप सब सहयोग दें तो मैं एक वर्ष में पूर्ण कर सकता हूँ।

प्रश्नः आपके संविधान के अनुसार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं की संख्या, जो नियमित है और मतदान कर सकते हैं, क्या है?

उत्तरः यह संख्या लाख, डेढ़ लाख से अधिक नहीं होगी।

प्रश्नः संगठन के खर्च के लिए धन कौन देता है?

उत्तरः हमारे स्वयंसेवक प्रतिवर्ष धन समर्पण करते हैं। पुष्प की एक पंखुड़ी से लेकर जिसके पास जितना हो। किसी को भी कम या अधिक के लिए बाध्य नहीं किया जाता। धनराशि का उतना महत्त्व नहीं है। महत्त्व है शुद्ध हृदय से समर्पण का।

प्रश्नः ऐसा कहा जाता है कि कुछ बड़े व्यापारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को धन देते हैं?

उत्तरः इस प्रश्न से मुझे एक व्यक्ति का स्मरण हो आया है। कृपाकर आप उसका नाम न पूछें। वे एक बार मुझे मिले और कहने लगे कि उनके पास ऐसा निश्चित समाचार है कि हमें अमरीका से धन मिल रहा है। मैंने उनसे कहा कि वह धन हमारे पास नहीं पहुँचा। आपके कहने के अनुसार आपको उस धन का निश्चित पता है। इसका अर्थ यह हुआ कि धन का गोलमाल आपने ही कहीं किया

है। कृपया आप ही वह धन निकालिए।

प्रश्न: क्या आपके यहाँ हिसाब रखा जाता है?

उत्तर: प्रत्येक पैसे तक का ठीक-ठीक हिसाब रहता है।

प्रश्न: ऑडिट के अद्यतन आँकड़े क्या हैं?

उत्तर: मैं धन के संबंध में कुछ नहीं जानता, किंतु ऑडिट रिपोर्ट है। एक पैसे की भी गड़बड़ नहीं हो सकती। जब प्रतिबंध लगा था, तब हिसाब की सब पुस्तकें सरकार ने जब्त कर ली थीं। आप जाकर पं. मिश्र से, जिन्होंने स्वयं कहा था कि 'इस हिसाब को देखो, कितनी अच्छी तरह नियमित और सावधानीपूर्वक रखा गया है', पूछ सकते हैं।

प्रश्न: संघ एक सांस्कृतिक संगठन है। वह कौन से सांस्कृतिक कार्य करता है?

उत्तर: बहुत सारे सांस्कृतिक कार्य हैं। 'संस्कृति' बहुत व्यापक शब्द है। स्वार्थ-साधना की राजनीति, जिससे झगड़े और मनमुटाव पैदा होते हैं, उसे छोड़कर संस्कृति हमारे जीवन के बहुतांश कार्यों को परिवेष्टित करती है। किंतु हम नाचने और गाने तक संस्कृति को सीमित करनेवाली परिभाषा स्वीकार नहीं करते।

प्रश्न: स्वयंसेवकों को कौन सी सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती है?

उत्तर: सब प्रकार की शिक्षा रहती है। शारीरिक स्वस्थता उन्हें प्रदान की जाती है। उन्हें चुस्ती, सतर्कता, अनुशासन, मस्तिष्क पर नियंत्रण रखने की क्षमता, धारणा-शक्ति, सत्य, स्वार्थ-त्याग, इच्छा-दमन आदि की शिक्षा मिलती है। यह सब संस्कृति है।

प्रश्न: आप सोचते हैं कि संघ पर प्रतिबंध लगा तो वह अधिक शक्तिशाली बनकर उभरेगा।

उत्तर: मैं नहीं जानता। मेरे मत में यह प्रश्न उनके विचार का है, जो प्रतिबंध लगाना चाहते हैं।

प्रश्न: बहुत बार ऐसा कहा जा रहा है कि जहाँ संघ के नेता जाते हैं, वहाँ दंगा होता है?

उत्तर: हम संपूर्ण देश में लगातार प्रवास कर रहे हैं। यदि ऐसा हो तो सब समय देश में दंगे ही होते रहने चाहिए। दिल्ली की ही बात

लीजिये, पिछले दो मास में मैं छह बार आया। तब तो दिल्ली में छह बार दंगे होने थे। महत्त्वपूर्ण कहलानेवाले इन लोगों की इन गैर-जिम्मेदाराना बातों से मैं आश्चर्यचकित हूँ।

प्रश्न: कुछ लोग आप पर हिंसा का आरोप भी लगाते हैं?

उत्तर: ऐसे लोगों का मार्गदर्शन वे कम्युनिस्ट कर रहे हैं, जो हिंसा में विश्वास करते हैं, रात-दिन हिंसात्मक कार्यों में जुटे हैं और संविधान को तोड़ना चाहते हैं। हमें बदनाम करनेवाले ही हिंसाचारी हैं। जरा उनकी उग्र भाषा और तीखी धमकियों की ओर ध्यान देकर देखिए।

प्रश्न: क्या संघ बढ़ रहा है?

उत्तर: अवश्य। जितना वे हमें बदनाम करने का यत्न करेंगे, हम अधिक बढ़ते जाएँगे। अधिकाधिक लोग हमारे समर्थन में एकत्रित हो रहे हैं, क्योंकि वे भली-भाँति समझ चुके हैं कि संघ जितना शक्तिशाली होगा, उतना ही भारत शक्तिशाली होगा।

प्रश्न: क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राजनैतिक संगठन है?

उत्तर: दैनंदिन चुनावी राजनीति में वह हिस्सा नहीं लेता। वह सत्ता की होड़ अथवा उसकी किसी प्रक्रिया में भाग नहीं लेता। इसका ही अर्थ है कि यह राजनैतिक संगठन नहीं है। यह तो एक सांस्कृतिक संगठन है, जो देश व समाज की एकता पर बल देता है। देश की एकात्मता में बाधा उत्पन्न करनेवाली बात होती है, तब हम अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर उसके बारे में लोगों को शिक्षित करने का प्रयास करते हैं।

प्रश्न: देश की समस्याओं को सुलझाने में सरकार की असफलता को देखते हुए सामान्य आदमी चाहता है कि सत्ता पर आसीन दल को हटाने के लिए कोई मजबूत विरोधी दल सामने आए। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि संघ अपने राजनैतिक ब्रह्मचर्य के व्रत के कारण एक प्रकार से सत्ताधारी दल की सहायता कर रहा है?

उत्तर: 'ब्रह्मचर्य' शब्द का उपयोग किया है, इसलिए बताना चाहूँगा कि शताब्दियों से त्यागी पुरुषों ने ही लोगों को एकता के सूत्र में बाँध रखा है। उन्होंने श्रेष्ठतम जीवन प्रदान किया है।

प्रश्न: बिना राजनैतिक सत्ता के आप अपनी नीतियाँ और कार्यक्रम किस प्रकार लागू कर सकेंगे?

उत्तर: राष्ट्रीय कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के दो मार्ग होते हैं। एक है सत्ता के द्वारा और दूसरा है लोगों के विचारों की दिशा बदलकर परिवर्तन लाने का। हमने दूसरा मार्ग चुना है।

प्रश्न: राजनैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार की हिंसा के उपयोग के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: नागरिकों के बीच हिंसा को कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

प्रश्न: सरकार बदलने के लिए हिंसा के प्रयोग को कहाँ तक न्यायोचित ठहराया जा सकता है?

उत्तर: जब शासक निरंकुश दानव बन जाए, उसके अत्याचार सभी सीमा लाँघ जाएं, लोग अत्यधिक कष्ट में हों और शासक बदलने के सारे रास्ते बंद हों, ऐसी अंतिम स्थिति में हिंसा का सहारा लेना न्यायसंगत है।

प्रश्न: यह जानते हुए कि कांग्रेस आपके विचारों से सहमत होने की मानसिकता में नहीं है। इसके लिए आप कोई कदम उठाने का विचार रखते हैं?

उत्तर: ऐसा नहीं है कि मैं जो विचार व्यक्त करता हूँ, कांग्रेस उनसे पूर्णतः असहमत है। मुझे लगता है कि उचित प्रचार और समझाकर अपने विचारों के समीप लाया जा सकता है।

प्रश्न: क्या कांग्रेस में ऐसे लोग हैं, जो आपके विचारों से सहमत हैं?

उत्तर: कई हो सकते हैं।

प्रश्न: आपने निर्णय लिया है कि कभी भी प्रत्यक्ष राजनीति में भाग नहीं लेंगे। केवल अपने विचारों को मान्यता प्रदान कराएँगे। क्या ऐसा लगता है कि कोई राजनैतिक दल आपके विचारों को ठोस रूप में परिणित करने का प्रयत्न करेगा?

उत्तर: इस बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। क्योंकि उनमें से कोई हमारे एक विचार को मानता होगा, तो दूसरा किसी दूसरे विचार को मानता होगा। इसलिए किसी दल विशेष का नाम लेना कठिन है।

प्रश्न: यदि आपका संगठन राजनैतिक नहीं है, तब आप 'राष्ट्रीय' शब्द का प्रयोग क्यों करते हैं?

उत्तर: इस शब्द से केवल राजनैतिक होना ही प्रकट नहीं होता। यह अधिक मौलिक और विस्तृत अर्थवाला शब्द है। समान विरासत, परंपरा, संस्कृति, इतिहास और भावनाओं के सम्मिश्रण से इस

शब्द का अर्थ प्रकट होता है।

प्रश्न : कुछ लोग हिंदू-राष्ट्र के सिद्धांत का जोरदार विरोध करते हैं?

उत्तर : लेकिन वही लोग अकेले में उसका अनुमोदन करते हैं।

प्रश्न : ऐसा कहा जा रहा है कि अब अंग्रेज चले गए हैं, तब हमारी सेना युद्ध जैसे संकट के समय लोगों की रक्षा करेगी। फिर संघ जैसे अलग संगठन की आवश्यकता ही क्या है?

उत्तर : पर सेना बनती तो समाज से है। यदि लोग भ्रष्ट या देशद्रोही रहे तो सेना भी वैसी ही होगी। ऐसे उदाहरण भी हैं जब देशभक्ति की भावना के अभाव के कारण पूरी की पूरी सेना शत्रु के खेमे में चली गई। संघ देशभक्ति निर्माण करने का मूलभूत कार्य कर रहा है।

प्रश्न : संघ जब हिंदू संस्था है, तब 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के स्थान पर आपने इसका नाम 'हिंदू स्वयंसेवक संघ' क्यों नहीं रखा?

उत्तर : हमारे संस्थापक डा. हेडगेवार कहा करते थे, 'संघ के नाम में 'हिंदू' शब्द का प्रयोग करने का अर्थ होगा स्वयं को इस देश के असंख्य समुदायों में से एक हिस्सा मात्र मानना। उससे इस बात की अनुभूति भी नहीं होती कि हिंदुओं ने ही इस देश की संस्कृति, इतिहास और उन प्रमुख तत्त्वों का निर्माण किया है, जो राष्ट्रीय जीवन धारा के लिए आवश्यक हैं।'

प्रश्न : क्या संघ में सिख, बौद्ध, जैनियों को प्रवेश दिया जाता है?

उत्तर : हम हिंदुओं को सिख, बौद्ध, जैन आदि पंथों में विभाजित कर नहीं देखते। हमारा मानना है कि देश में निर्माण हुए ईश्वरप्राप्ति के बौद्ध, जैन, सिख, शैव, वैष्णव, वीर शैव आदि सभी पंथ व्यापक 'हिंदू' शब्द में अंतर्भूत हैं। हमारे लिए प्रत्येक हिंदू, वह किसी भी पंथ का हो, समाज का प्रतिष्ठित सदस्य है। वह शेष लोगों से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है।

प्रश्न : कुछ लोगों का कहना है कि वर्तमान संदर्भ में हिंदू संगठन की कोई उपयोगिता नहीं है। संपूर्ण क्रांति तो पुरानी घिसी-पिटी बातों को छोड़ने पर ही आएगी?

उत्तर : निश्चय ही संसार में क्रांतियाँ हुई हैं, किंतु अधिकतर की प्रकृति निरंतरता बनाए रखनेवाली अथवा क्रांतिकारी विकास करनेवाली थी। जहाँ पारंपरिक संबंध एकाएक तोड़ दिए गए, वहाँ समूचा सामाजिक जीवन नष्टप्रायः हो गया।

प्रश्नः चीन में क्या हुआ?

उत्तरः उन्होंने भूतकाल से अपना संबंध पूर्णतः विच्छेद नहीं किया। कुछ इंतजार करें, उनके सभी पारंपरिक रीति-रिवाज फिर से प्रकट होंगे। स्वतः की शक्ति और प्रभाव फैलाने की वर्तमान योजना उनके पुराने सम्राटों की परंपरा का निर्वाह ही है।

प्रश्नः किंतु बुद्ध धर्म के कारण उनमें कुछ परिवर्तन आना चाहिए था?

उत्तरः चीन की धरती पर बुद्ध धर्म की जड़ें कभी भी गहराई तक नहीं गईं। उन्होंने जीवन-पद्धति के रूप में उसे कभी भी नहीं अपनाया। केवल बाहरी दिखावा किया गया। एक विद्वान ने लिखा है कि चीन अभी भी कन्फ्यूशियस का देश है। किंतु यह अंशतः ही सत्य है। कुछ कन्फ्यूशियस के विचार और कुछ उनके पुराने सम्राटों का प्रभाव ही चीन की मुख्य जीवनधारा में परिलक्षित होता है। साम्यवाद तो एक क्षणिक लहर मात्र है। उनका जीवन इतना भ्रष्ट हो चुका था कि भयानक उग्र शस्त्र क्रांति के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता बचा नहीं था।

प्रश्नः आप कहते हैं कि चरित्र-निर्माण से ही राष्ट्र का पुनर्निर्माण संभव है। संगठन के माध्यम से आप लोगों तक कैसे पहुँच सकते हैं? उस ध्येय की प्राप्ति के लिए आप कौन-सी ठोस पद्धति अपनाएँगे?

उत्तरः लोग इस बात से सहमत हैं कि हमारी पद्धति से उत्तम चरित्र का निर्माण हो सकता है। हम मैदानी खेल, विभिन्न कार्यक्रम, समय-समय पर बौद्धिक एवं नैतिक प्रवचनों की व्यवस्था कर तथा अपने श्रेष्ठ पूर्वजों के उदाहरण देकर शिक्षित करने का प्रयत्न करते हैं। हम स्वयंसेवकों को सिखाते हैं कि लोगों के सामने अपने जीवन का जीवंत आदर्श रखने से प्रभावी साधन दूसरा नहीं है।

प्रश्नः क्या संघ के समान कोई प्रयास पहले भी हो चुका है?

उत्तरः संघ प्रारंभ करते समय इस ओर देखने का प्रयत्न नहीं किया कि क्या पहले भी ऐसा कोई प्रयास हो चुका है अथवा नहीं। हमें लगा कि सही दिशा में प्रयास होना आवश्यक है, इसलिए प्रारंभ कर दिया।

प्रश्नः आप व्यक्तिगत चरित्र पर अधिक बल देते हैं। क्या किसी व्यक्ति का लोकहित में कार्य करना ही पर्याप्त नहीं है? किसी के व्यक्तिगत जीवन में झाँककर देखने की कोई आवश्यकता है क्या?

उत्तर: हमारा विश्वास है कि 'आदर्श की प्राप्ति' और 'समाजहित' के लिए व्यक्तिरूप साधन शुद्ध व पवित्र होना चाहिए।

प्रश्न: यदि उद्देश्य अच्छा हो तो साधन की चिंता क्यों करना?

उत्तर: इसका अर्थ यह हुआ कि 'व्यक्ति' जो समाज परिवर्तन का साधन है, उसी को पीछे ढकेल दिया जाए। यही कारण है कि पूरे संसार में तेजी से व्यक्ति पतनोन्मुख हो रहा है।

सुदूर भविष्य में निकृष्ट साधन कभी भी उत्कृष्ट फल नहीं दे सकते। बुरे साधन थोड़े समय के लिए अच्छे फल देते हुए दिखाई देते हैं, पर वह क्षणिक ही होता है। यह तो ओलों की वर्षा के बीच स्वयं के शरीर को आग से गरमाने जैसा हुआ। इसकी परिणिति हमारे राख बन जाने में ही होगी।

सब लोग जानते हैं कि चुनाव जीतने के लिए विभिन्न लोग और दल कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं। केवल वे ही लोग जिन्होंने अधिक से अधिक निकृष्ट तरीके अपनाए हों, सत्ता व अधिकारी पद तक पहुँचे हैं। साधन की शुद्धता और व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता का सदैव ही महत्त्व रहेगा।

प्रश्न: संघ का सांस्कृतिक कार्यक्रम क्या है?

उत्तर: 'संस्कृति' शब्द का अर्थ काफी विस्तृत है। स्वार्थी राजनीति, उसके द्वारा पोषित झगड़े और ऐसे ही तुच्छ कामों को छोड़कर जीवन के सभी पक्षों को संस्कृति प्रभावित करती है। संस्कृति की विद्यमान व्याख्या, जो नृत्य और संगीत तक ही सीमित है, हम स्वीकार नहीं करते।

प्रश्न: संघ-सदस्यों को किस प्रकार का सांस्कृतिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है?

उत्तर: शारीरिक योग्यता और बुद्धि तथा भावना से जुड़े सभी सद्गुणों के विकास का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह सब संस्कृति ही है।

प्रश्न: सांस्कृतिक कार्य के लिए गणवेश की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए?

उत्तर: हर कोई इस बात को मानेगा कि संस्कृति के एक अंग 'अनुशासन' के निर्माण लिए वह सहायक है।

प्रश्न: आपका स्वयं का वृत्त-पत्र क्यों नहीं है?

उत्तर: हमारा मानना है कि समूचे देश के वृत्त-पत्र हमारे ही हैं। अपने

लिए अलग से वृत्त-पत्र रखना स्वयं को एक पंथ बनने की ओर उद्युक्त करना होगा। आज राष्ट्रीय संगठन की अधिक आवश्यकता है, न कि एक और पंथ की।

प्रश्न: यह ठीक है कि संघ अस्पृश्यता को मान्यता नहीं देता। किंतु क्या आपके पास कोई ऐसा कार्यक्रम है, जिससे समाज से उसका संपूर्ण उन्मूलन हो सके?

उत्तर: महात्मा जी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए कांग्रेस को प्रचार करने का कार्य दिया। अस्पृश्यों के पुराने नाम को बदलकर उन्हें 'हरिजन' कहा। यह सब करने पर भी दूरी कम होने के स्थान पर अधिक बढ़ी ही।

डा. हेडगेवार और मैं एक हरिजन नेता को अच्छी तरह पहचानते थे। वे कहा करते थे कि 'निस्संदेह संघ अच्छा काम कर रहा है, किंतु दूसरे सभी हमारी पृथक पहचान स्वीकार करते हैं, पर संघ में हम अपनी अलग अस्मिता खो देते हैं। वहाँ केवल हिंदू बन कर रह जाते हैं। तब हमारे विशेष अधिकार कैसे सुरक्षित रख सकेंगे।' इसलिए उनके सुधार हेतु प्रचार-कार्यक्रम प्रारंभ करने से पूर्व यह सावधानी बरतनी होगी कि उनके अलगाववाद को प्रोत्साहन न मिले।

प्रश्न: 'अस्पृश्यों' को संघ में लाने के लिए क्या कोई विशेष प्रयास किया जाता है?

उत्तर: हम हर किसी के पास हिंदू के नाते जाते हैं। हम मूलभूत आंतरिक एकता पर ही बल देते हैं।

प्रश्न: संघ की वृद्धि का क्या रहस्य है?

उत्तर: यही रहस्य है कि लोग यह स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि कोई रहस्य नहीं है।

प्रश्न: आप संगठन का साम्यवादी तंत्र क्यों नहीं अपनाते?

उत्तर: सीधा सा कारण है कि उनके काम का आधार घृणा है, जबकि हमारे काम का आधार सभी से प्रेम करना है।

प्रश्न: कुछ लोग संघ की पद्धति का अनुकरण अथवा नकल करना चाहते हैं?

उत्तर: हमारी केवल एक ही पद्धति है। यदि वे हमारी पद्धति से संगठित होना चाहते हैं तो हो सकते हैं, पर उन्हें हमारा अनुसरण करना होगा।

प्रश्नः संघ का दृष्टिकोण अवश्य ही मौलिक है। किंतु इसके साथ तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं पर ध्यान आकर्षित करने के लिए छोटे-छोटे प्रकल्पों की योजना क्यों नहीं चलाई जाती?

उत्तरः क्या गतकाल के अनुभव हमें नहीं बताते कि ऐसे आंदोलन निष्फल सिद्ध हुए हैं। समय-समय पर आंदोलन होते रहे हैं, कई बार उनका स्वरूप राष्ट्रव्यापी भी रहा, किंतु तत्कालीन कारणों के समाप्त होते ही आंदोलन भी धराशायी हो गए और बाद में विनाशकारी प्रवृत्तियाँ भी उभर कर सामने आईं। बुद्ध के बाद से अब तक के सुधारवादी आंदोलन इसी बात के साक्षी हैं। इतिहास से हमने सबक सीखना चाहिए और सकारात्मक ढंग से चिरस्थायी संगठन बनाने का प्रयास करना चाहिए।

प्रश्नः लोगों को कैसे समझाया जाए कि उन्हें विद्यमान स्वार्थी व स्वकेंद्रित जीवन से ऊपर उठना चाहिए?

उत्तरः कर्म के लिए, जीवन जीने के लिए और आवश्यकता के अनुसार मृत्यु स्वीकार करने का आदर्श सामने रखने पर वे अपनी स्वार्थीपन की भावना पर नियंत्रण कर राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में जुट जाएँगे। पर वह आदर्श ऐसा होना चाहिए, जो उनके पास पीढ़ियों से हो। पवित्र हिंदू-राष्ट्र की महानता और श्रेष्ठता की अनुभूति का आदर्श प्रेरणादायक है।

प्रश्नः सफल संगठन किस प्रकार क्रियाशील रहता है?

उत्तर : मोटर कार की तरह। जिस तरह कार के विभिन्न पुर्जों को व्यवस्थित रखकर उनसे काम लिया जाता है, उसी प्रकार लोगों को उचित उत्तरदायित्व निभाने के लिए प्रेरित किया जाए और उनकी सुव्यवस्थित रचना हो। आदर्श के प्रति निष्ठा की भावना पेट्रोल का काम करती है। सदस्यों में परस्पर स्नेह और सहयोग की भावना स्निग्धता का काम करती है।

प्रश्नः किसी संगठन को खड़ा करने के लिए किन मूलभूत गुणों की आवश्यकता हैं?

उत्तरः मनुष्य का शरीर असंख्य कोशिकाओं से शक्ति ग्रहण करता है। जिनका शरीर के साथ तादात्म्य रहता है, उनकी शक्ति शरीर को जीवित रखने में लगी रहती है। उसी प्रकार समाज का हर व्यक्ति उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करे और अल्प ही क्यों न हों पर

अपनी शक्ति समाज को स्वस्थ्य बनाए रखने में लगाए। व्यक्ति का यह तादात्म्य भाव और सर्वस्व समर्पण की मानसिकता ही किसी संगठन का मूल आधार होता है।

प्रश्नः वास्तविक अनुशासन क्या है?

उत्तरः दंड के भय या किसी प्रकार के लाभ पाने की इच्छा से उत्पन्न अनुशासन, अनुशासन नहीं है। किंतु व्यक्तियों के बीच विशुद्ध प्रेम और आदर्श के प्रति समर्पण की भावना से उत्पन्न अनुशासन वास्तविक अनुशासन है।

प्रश्नः राष्ट्रीय चरित्र क्या है?

उत्तरः आचरण में सत्यनिष्ठा ही चरित्र है। हम राष्ट्र के अंगभूत घटक हैं और 'राष्ट्र' के प्रति हमारा कर्तव्य है— इस सत्य की अनुभूति और दैनिक जीवन में उसका प्रभाव ही राष्ट्रीय चरित्र है।

प्रश्नः वास्तविक सामाजिक कार्यकर्ता कौन है?

उत्तरः स्वयं के दोष जो पढ़ सकता है और दूसरों के गुणों की जिसे पहचान हो।

प्रश्नः कार्यकर्ता के मार्ग के अवरोध क्या हैं?

उत्तरः आत्मसंतोष और अहंकार से उसे बचना चाहिए।

प्रश्नः क्या अपने दोषों को हटाया जा सकता है?

उत्तरः प्रामाणिक और दृढ़तापूर्ण प्रयत्नों के द्वारा मनुष्य देवी अवस्था तक पहुँच सकता है, तब दोषों की क्या बात? यदि व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र होकर सामने रखे हुए आदर्श के प्रति निष्ठा से समर्पित हो जाता है, तब दोष स्वयं लुप्त हो जाते हैं।

प्रश्नः सच्ची मित्रता क्या है?

उत्तरः प्रतिकार की अपेक्षा न करना ही मित्रता का सार है। स्वयं को तीसमारखाँ समझना और दूसरे का अपमान करने की वृत्ति के लिए इसमें कोई स्थान नहीं होता।

प्रश्नः लोगों का सच्चा नेता कौन है?

उत्तरः जो अपने आपको नेता न मानते हुए जनता का नम्र सेवक समझे।

प्रश्नः दुश्मन से घृणा करने से क्या अपनी हानि होती है?

उत्तरः घृणा एक नकारात्मक प्रतिक्रिया है। शत्रु और उसके घृणित कार्यों के सतत चिंतन से अपने ही लोगों के और संस्कृति के प्रति सकारात्मक स्नेह का नष्ट हो जाना स्वाभाविक है। देशभक्ति के

नाम पर हमारे यहाँ के कई लोग या तो केवल ब्रिटिश-विरोधी या मुस्लिम- विरोधी, इसी कारण बन कर रह गए।

४. प्रतिबंध-विषयक

प्रश्न: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भविष्य की गतिविधियाँ क्या होंगी?

उत्तर: निश्चित ही हम राजनीति से अलग रहेंगे तथा सांस्कृतिक क्षेत्र पर लक्ष्य केंद्रित करेंगे। किंतु संस्कृति और क्षुधा साथ-साथ नहीं चल सकते। अतएव जनसामान्य के दैनंदिन उत्कर्ष के प्रति उदासीन नहीं रहा जा सकता।

प्रश्न: प्रधानमंत्री से आपकी भेंट का कारण क्या था? (सन् १९४८)

उत्तर: मैं उनसे केवल २० मिनट मिल सका। उनसे फिर मिलने की आशा है। प्रायः इस माह के तृतीय सप्ताह में। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संबंध में यदि कोई गलत धारणाएँ हों, तो उन धारणाओं के समाधान करने हेतु मिलने गया था, ताकि हम सब मिलकर भारत के उत्थान के हेतु परस्पर सहयोग के लिए कटिबद्ध हों।

प्रश्न: समाचार-पत्रों में समाचार है कि आपने जयपुर के कार्यक्रम में गाँधी जी के चित्र पर माल्यार्पण करने से स्पष्ट इनकार किया था?

उत्तर: वस्तुतः मैंने कार्यक्रम के प्रारंभ में ही महात्मा गाँधी के छायाचित्र को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक के छायाचित्र के साथ माल्यार्पण किया था।

प्रश्न: आपके द्वारा सरकार को दिए आश्वासनों की कुछ चर्चा आजकल है। आपके आश्वासन के संबंध में एक सरकारी विज्ञप्ति भी जारी की गई थी। क्या उस समय आपने इसका खंडन किया था।

उत्तर: प्रतिबंध उठाने की घोषणा करते हुए जो सरकारी विज्ञप्ति जारी की गई थी, उसमें मेरे द्वारा कुछ आश्वासन देने की बात का उल्लेख जरूर था। मैंने इसका खंडन उसी समय किया था। नागपुर में श्री ए.डी.मणि की अध्यक्षता में नागपुर के प्रमुख नागरिकों की सभा हुई थी। वहाँ श्री मणि ने इन तथाकथित आश्वासनों की चर्चा बड़े आग्रहपूर्वक की थी। मैंने भी उतनी ही स्पष्टता से उस

सभा में उन्हें कहा था कि कदापि कोई आश्वासन, कोई वचन, कोई शर्त प्रतिबंध हटाने के संबंध में नहीं दी गई।

यह एक बात हुई। उसी प्रकार कुछ दिन पश्चात् मुंबई विधानसभा में कुछ प्रश्न-उत्तर हुए, जिसके दौरान सरकार से यह पूछा गया कि प्रतिबंध हटाने का काम सशर्त हुआ या बिना शर्त के। इन प्रश्नोत्तरों की प्रतियाँ आप लोगों को अलग से यहाँ वितरित की गई हैं। उसमें यह स्पष्टतापूर्वक कहा गया है कि प्रतिबंध बिना शर्त हटाया गया, क्योंकि उसे बनाए रखने की आवश्यकता नहीं थी।

प्रश्न: क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आपने १० जुलाई को श्री मौलिचंद्र शर्मा को कोई पत्र लिखा था? वह पत्र अब प्राप्त हो चुका है?

उत्तर: वह इस पुस्तक जस्टिस ऑन ट्रायल में है, जो आपको वितरित की गई हैं।

प्रश्न: उस पत्र में क्या कोई आश्वासन दिया है?

उत्तर: कोई आश्वासन नहीं।

प्रश्न: श्री मौलिचंद्र शर्मा को यह पत्र लिखने की आवश्यकता ही क्या थी?

उत्तर: वे मेरे पास आए और बोले कि संघ के संविधान के संबंध में कुछ गलतफहमी सरकार के मस्तिष्क में है। मैंने कहा 'कौन-सी गलतफहमी है, मुझे बताएँ', उन्होंने मुझे कुछ बातें बताईं। मैंने उनका स्पष्टीकरण लिख भेजा। उस पत्र में कुछ मुद्दे अधिक स्पष्ट किए थे। इसका पता स्वयं श्री मौलिचंद्र जी शर्मा से लगाया जा सकता है।

प्रश्न: प्रतिबंध किसने लगाया? मुंबई सरकार ने, मध्यप्रदेश सरकार ने या भारत सरकार ने?

उत्तर: प्रतिबंध केंद्रीय सरकार ने लगाया था।

प्रश्न: आपका मुख्य कार्यालय नागपुर में है। प्रतिबंध केंद्रीय सरकार ने लगाया। क्या आप सोचते हैं कि मुंबई सरकार सही उत्तर देने में समर्थ रही होगी?

उत्तर: प्रश्न मुंबई विधानसभा में प्रस्तुत किया गया था और वहाँ उसका उत्तर भी दिया गया। कोई कारण नहीं कि मुंबई सरकार सही

उत्तर न दे सके।

प्रश्नः आपने कहा है कि पहले कांग्रेस में भी ऐसे लोग थे, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य करते रहे। क्या वे वही लोग थे जिन्होंने मुंबई विधानसभा में यह उत्तर दिया?

उत्तरः नहीं महाशय, कदापि नहीं। सत्य यह है कि ये वे लोग थे जिन्होंने सदैव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विरोध किया है।

प्रश्नः यदि केंद्रीय सरकार संघ पर पुनः प्रतिबंध लगाती है तो आपका अगला कदम क्या होगा? क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता भूमिगत हो जाएँगे?

उत्तरः देखिए। हम सब लोग भूमि के ऊपर ही विद्यमान हैं। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि ऐसा कोई कदम स्वयं सरकार की दृष्टि से ही योग्य नहीं होगा। हम अकेले नहीं हैं। सन् १९४८ में महात्मा गाँधी जी की हत्या का आधार लेकर भावनाएँ भड़काकर हमें शेष समाज से काट देना संभव हो सका था। अब वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं। मैं समझता हूँ कि ऐसा कोई कदम उठाना सरकार के हक में बड़ी अनीतिज्ञता की बात होगी।

प्रश्नः आज भी कुछ लोग बार-बार संघ पर गाँधी हत्या का दोष लगाते रहते हैं?

उत्तरः यदि कोई झूठ बोलने का ही हठ ठाने, तो उसके लिए क्या किया जा सकता है?

प्रश्नः आपने कहा कि पहले कुछ अच्छे कांग्रेसी कार्यकर्ता संघ में भी थे। क्या आप उनके नाम बता सकेंगे?

उत्तरः उन दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य मुख्यतः महाराष्ट्र और विदर्भ में ही था। एक थे सोमण जी, जो विदर्भ तालुका कांग्रेस के अध्यक्ष थे। दूसरे श्री देशमुख थे, जो संभवतः कांग्रेस के जिला मंत्री थे और तीसरे श्री आप्पा जी जोशी हैं, जो विदर्भ कांग्रेस की प्रांतीय कमेटी के मंत्री थे। इसी प्रकार और भी कई नाम हैं।

प्रश्नः श्री यशवंतराव चह्वाण के बारे में क्या है?

उत्तरः उस समय वे बहुत छोटे रहे होंगे।

प्रश्नः ऐसा कहा जाता है कि सरदार वल्लभभाई पटेल संघ से सहानुभूति

रखने वालों में से एक थे, इसलिए उन्होंने संघ पर लगे प्रतिबंध को उठा लिया था। किंतु उनके स्थान पर कोई दूसरा ऐसा व्यक्ति मंत्री बनता है, जो संघ के विचारों से सहमत न हो और वह फिर से प्रतिबंध लगा दे, तब संघ की प्रतिक्रिया क्या होगी?

उत्तर: यह प्रश्न कोरे अनुमानों पर आधारित है। पहली बात तो यह है कि मुझे नहीं लगता कि सरदार पटेल का दृष्टिकोण पक्षपाती है। उनके कुछ विचार हमसे मिलते हैं, वहीं कुछ मुद्दों पर मतभेद भी है। हाँ, यदि फिर से संघ पर प्रतिबंध लगाया गया, तो मुझे विश्वास है कि मेरे सहयोगी उसमें से रास्ता निकालने में पूर्णतः सक्षम हैं।

प्रश्न: समाजवादी व साम्यवादी दल सरकार का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि संघ ने सरकार से वामपंथियों का विरोध करने का समझौता किया है। इसी आधार पर संघ से प्रतिबंध हटाया गया है। क्या वास्तव में ऐसा है?

उत्तर: सरकार के मन में क्या है, मुझे नहीं मालूम। जहाँ तक मेरा संबंध है, मेरी जानकारी में ऐसा कोई समझौता नहीं हुआ है और न ही इस प्रकार का कोई प्रस्ताव है।

प्रश्न: संघ संविधान में कुछ परिवर्तन सुझाए गए थे। क्या आपने उन्हें स्वीकार किया था?

उत्तर: नहीं। मैंने उन्हें कह दिया था कि मैं सहमत नहीं हूँ।

प्रश्न: क्या आपने कुछ संशोधन स्वीकार किए थे?

उत्तर: मैंने कुछ नहीं किया।

प्रश्न: संविधान का प्रारूप श्री मौलिचंद्र शर्मा को लिखे स्पष्टीकरण के साथ भेजा गया था और सरकार विश्वास करती है कि ये स्पष्टीकरण उस संविधान में सम्मिलित कर लिए गए हैं, जो अंतिम रूप में प्रकाशित हुआ है?

उत्तर: संविधान का अंतिम रूप तो उस समय विचारार्थ ही था। वह तो केवल प्रारूप था। हमें उसपर विचार करना और अंतिम रूप निर्धारित करना था। फिर उसे अपने सभी कार्यकर्ताओं के पास पहुँचाना था, ताकि दिन-प्रतिदिन की कार्यवाही में उसे लाया जा सके। सत्य तो यह है कि इसके पूर्व भी एक लिखित संविधान था,

जो संघ संस्थापक ने अपने साथी कार्यकर्ताओं की सहमति से तैयार किया था।

प्रश्न: कब?

उत्तर: वह संघ के बहुत प्रारंभिक दिनों, याने सन् १९३३-३४ की बात होगी।

प्रश्न: क्या २० वर्षों तक संघ के पास कोई संविधान नहीं था?

उत्तर: संघ का संविधान था। छपा हुआ नहीं था। संविधान न होने और छपा हुआ संविधान न होने की बात के अंतर को हमें समझना चाहिए। मैं उसे सदैव अपने साथ रखता था। दुर्भाग्य से एक बार प्रवास में मेरा सामान उस झोले सहित चोरी हो गया। जब मैं नागपुर पहुँचा तो मेरे पास पहंनने के लिए धोती भी नहीं थी। उस समय मेरी प्रत्येक वस्तु खो गई। फिर भी उसकी एक प्रतिलिपि थी।

प्रश्न: क्या आपको किसी पर शंका है?

उत्तर: जिस संबंध में हम जानते नहीं, उसके बारे में कैसे कुछ कहना संभव है? किसी पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। मैंने कहा कि उसकी एक प्रतिलिपि थी। उसके आधार पर यह मसौदा तैयार किया गया। इसलिए सारांश यह है कि हमने उसे ही कुछ मामूली सुधार के साथ छपा हुआ रूप दिया।

प्रश्न: संविधान कब छपा?

उत्तर: सन् १९४९ में छापा गया।

प्रश्न: क्या यह द्वितीय आवृत्ति है।

उत्तर: हो सकती है। मुझे विदित नहीं। आखिर यह किसी व्यापारिक कंपनी का आय-व्यय लेखा तो है नहीं, जिसे प्रतिवर्ष प्रकाशित करना जरूरी हो।

प्रश्न: आपने मुंबई विधानसभा के कुछ मंत्रियों के वक्तव्य का उल्लेख किया। नई कांग्रेस कमेटी के सदस्य श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने हाल ही में एक वक्तव्य दिया है। उसमें श्री मिश्र ने कहा कि वे उस समय मध्यप्रदेश और बरार के गृहमंत्री थे और आपने कुछ आश्वासन सरकार को अवश्य दिए थे। क्या मुंबई सरकार की घोषणा का खंडन करने के लिए मिश्र जी ने उस समय वक्तव्य दिया था?

उत्तर: नहीं। कम से कम मेरी जानकारी में नहीं। न ही उन्होंने नागपुर में श्री ए.डी.मणि की अध्यक्षता में दिए गए मेरे वक्तव्य का ही खंडन किया। मेरी श्री मिश्र जी से मित्रता है और मैं उनका बहुत आदर करता हूँ।

प्रश्न: किंतु वे ऐसा कह रहे हैं।

उत्तर: ठीक है। मैं नहीं जानता वे ऐसा क्यों कह रहे हैं। ऐसा न कहने के बारे में उन्हें भलीभाँति समझना चाहिए। यह अच्छा होता कि वे आगे आकर कहते कि सचमुच ऐसा कोई आश्वासन उस समय नहीं हुआ।

प्रश्न: पं. मौलिचंद्र शर्मा को आपका पत्र क्या आश्वासन नहीं था?

उत्तर: नहीं महाशय।

प्रश्न: तथापि इस सब विवाद का सशर्त प्रतिबंध हटने की बात से, यदि अपने कुछ आश्वासन दिए हों, तो औचित्य क्या है?

उत्तर: कोई औचित्य नहीं। आप ठीक कह रहे हैं।

प्रश्न: महात्मा गाँधी की हत्या के अतिरिक्त कौन-से कारण थे, जिनसे प्रतिबंध लगाया गया था?

उत्तर: वे ही बता सकते हैं कि प्रतिबंध क्यों लगाया था।

५. संघ और राजनीति

प्रश्न: क्या संघ हिंदू महासभा में समन्वित हो सकता है?

उत्तर: हमारा किसी राजनीतिक संगठन के साथ जुड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। किंतु संघ का कोई भी स्वयंसेवक अपनी इच्छानुसार राजनीतिक संगठन में प्रवेश के लिए मुक्त है।

प्रश्न: आपकी राय में आपकी संस्था के सदस्य (स्वयंसेवक) को किस संगठन में जाना चाहिए?

उत्तर: इसके चयन का उन्हें पूर्ण अधिकार है। इस विषय में मेरा कोई मार्गदर्शन नहीं है और न ही मेरा अनुशासन उन्हें किससे विवाह करना चाहिए, यह बताता है। कुछ लोग चाहते हैं कि स्वयंसेवको

ने कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहिए। किंतु कांग्रेस उन्हें अपनाना नहीं चाहती।

प्रश्न : हिंदू सभा और संघ में क्या संबंध है?

उत्तर : हिंदू सभा राजनीतिक दल है और संघ सांस्कृतिक संगठन। अतः कोई संबंध नहीं है।

प्रश्न : अभी हाल में एक समाचार छपा है कि उत्तरप्रदेश और बिहार में संयुक्त दलीय सरकारों के गठन पर 'ऑर्गेनाईजर' में एक समाचार छपा, जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की केंद्रीय कार्यकारिणी ने उस संबंध में एक प्रस्ताव पारित किया। यह प्रस्ताव सांस्कृतिक था या राजनीतिक?

उत्तर : मुझे याद नहीं आता ऐसी किसी बात का। अच्छा हो आप 'ऑर्गेनाइजर' वालों से ही पूछें। अभी तक मैं अपने कार्यकारी मंडल की एक भी बैठक में अनुपस्थित नहीं रहा हूँ। मुझे स्मरण नहीं आता कि ऐसा कोई प्रस्ताव पारित हुआ।

जहाँ तक आपके पहले प्रश्न का संबंध है, मुझे कहना है कि श्री ठाकरे नागपुर में किसी विद्यार्थी-फोरम में भाषण देने पधारे थे। इस फोरम में विभिन्न लोगों के चार या पाँच भाषण हुए थे। मैं समझता हूँ कि वे सभी समाचार-पत्रों के संपादक थे। श्री बाल ठाकरे भी एक मराठी साप्ताहिक के संपादक हैं। इसलिए उन्हें भी निमंत्रित किया गया था। तब वे मुझसे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि वे जनता के लिए कार्य कर रहे हैं। उन्होंने मेरे सामने सुझाव रखा कि जनसंघ उनके साथ सहयोग करे। मैंने कहा कि उन्हें जनसंघ के नेताओं से यह बात करनी चाहिए। जहाँ तक मेरी जानकारी है, जनसंघ एक अखिल भारतीय दल है और संभवतः वह सीमित प्रांतीय दृष्टिकोणवाले समुदाय के साथ सहयोग न करे। हालाँकि यह मेरा मत है। बात वहीं समाप्त हो गई। आगे कोई चर्चा नहीं हुई।

बाद में श्री पाटिल नागपुर आए थे। मैं उन्हें तब से जानता हूँ, जब वे कांग्रेस में इतने बड़े नहीं थे। वे मुंबई नगर निगम के सदस्य थे, बाद में महापौर बने। वे एक पुराने मित्र के नाते मुझे मिलने आए थे। उन्होंने देश की राजनीतिक स्थिति के संबंध में

चर्चा की और विभिन्न राजनीतिक दलों की एकता की आवश्यकता बताई। मैंने कहा कि ठीक है, प्रयत्न कीजिए।

प्रश्न: राजनीतिक दलों की या समान राजनीतिक दलों की?

उत्तर: आप समझ सकते हैं कि निश्चित ही वे परस्पर विरोधी दलों की एकता नहीं चाहते। मैंने कहा कि प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं है। आप अवश्य प्रयत्न करें।

प्रश्न: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कुछ सदस्य जनसंघ के भी सदस्य हैं। क्या संघ के स्वयंसेवकों पर अन्य राजनीतिक दलों में प्रवेश लेने पर रोक है?

उत्तर: नहीं। सच तो यह है कि वे अन्य दलों यहाँ तक कि कांग्रेस के भी सदस्य रहे हैं।

प्रश्न: इस संबंध में क्या कुछ नियम हैं? ऐसा क्यों है कि अधिकांश जनसंघ में ही हैं?

उत्तर: कोई नियम नहीं है। संभवतः जनसंघ वाले अन्य लोगों को अपने दल में सम्मलित होने का आग्रह करते हैं। कांग्रेस वाले यहाँ आते हैं तो उन्हें भी कुछ कार्यकर्ता मिल सकते हैं।

प्रश्न: कांग्रेस के लोग चाहते हैं कि जब आपके लोग कांग्रेस में भर्ती हों, तो वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से अपना संबंध तोड़ लें?

उत्तर: यही बात है। मुझे बातचीत के दौरान यह बात अनेक प्रकार से बताई गई। मैंने उन्हें कहा कि मैं इस संगठन को समाप्त करने के लिए इसका प्रमुख नहीं बना हूँ।

प्रश्न: क्या यह सत्य नहीं है कि चुनाव के काल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बहुत सक्रियता से जनसंघ के लिए कार्य करते हैं?

उत्तर: मुझे विदित नहीं। जहाँ तक मुझे विदित है, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के केंद्रस्थान नागपुर में संघ से किसी न किसी प्रकार से संबंधित लोगों की संख्या लगभग २०,००० है, तथापि नागपुर से कोई जनसंघ सदस्य चुनाव में सफल नहीं हुआ।

प्रश्न: आपने अभी कहा कि संघ के कई सदस्य जनसंघ में हैं। इसलिए जनसंघ में उनकी कार्यवाही आपके अनुशासन के अंतर्गत होती होगी। क्या संघ के स्वयंसेवकों का कोई ऐसा उदाहरण है जो

जनसंघ में कार्य करते समय संघ के संविधान या उद्देश्यों से विपरीत हुआ हो?

उत्तर: जनसंघ में काम करनेवाले व्यक्ति को जनसंघ के संविधान के अंतर्गत कार्य करना पड़ता है। हम उसे यह या वह करने के लिए बाध्य नहीं करते। हम जनसंघ के सदस्य के नाते उसकी कार्यवाहियों में कोई हस्तक्षेप नहीं करते।

प्रश्न: यदि उसकी कार्यवाही का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संविधान से विरोध हो, तब क्या होगा?

उत्तर: हम उसे ठीक आचरण करने के लिए समझाएँगे।

प्रश्न: क्या ऐसा कोई उदाहरण सामने आया है?

उत्तर: मेरे स्मरण में कोई नहीं।

प्रश्न: क्या जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आदर्शों में एकरूपता है?

उत्तर: यह बात हो भी सकती है, और नहीं भी हो सकती। हमारे कुछ कार्यकर्ता वहाँ जरूर हैं। पूर्वकाल में जब कांग्रेस तथा कुछ और राजनीतिक दलों ने राजनतिक छुआछूत प्रारंभ नहीं की थी, तब हमारे कार्यकर्ता सभी दलों में रहते थे। इतना ही नहीं, वे महत्त्वपूर्ण पदों पर थे तथा उन्हें ऐसा नहीं लगता था कि संघ और दल का कार्य करने में कोई टकराव है। हम यही स्थिति चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जितनी सीमा तक वे हमें करने देते हैं, हम अवश्य ही अच्छे संबंध बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। इस मामले में हमें कोई कठिनाई नहीं। हमने कभी यह नहीं कहा कि संघ का स्वयंसेवक किसी अन्य राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बन सकता। परंतु मुश्किल तो यह है कि कुछ राजनैतिक पार्टियों ने ही यह रोक लगा रखी है कि उनके सदस्य संघ में नहीं जा सकते। इस प्रकार की तथाकथित छुआछूत उनकी ओर से ही है। वे अपने-आप को अछूत बनाए हुए हैं।

प्रश्न: हमें बताया गया है कि संघ एक सांस्कृतिक संगठन है। फिर भी हम देखते हैं कि किन्हीं कारणों से संघ का नाम जनसंघ जैसे राजनीतिक दल अथवा राजनीतिक व्यक्तियों, जैस– श्री एस.के. पाटिल और श्री बाल ठाकरे के साथ जुड़ा हुआ है, न कि श्री

रामकृष्ण मिशन अथवा श्री अरविंद आश्रम जैसी संस्थाओं के साथ जो कि हिंदू-समाज की वैसी ही सेवा कर रही हैं, जिसे संघ करना चाहता है?

उत्तर: यद्यपि यह बताना ठीक नहीं है, फिर भी मैं स्वयं श्रीरामकृष्ण मिशन का दीक्षित सदस्य हूँ। मैं समझता हूँ कि यह पर्याप्त है। हम इसका उल्लेख नहीं करते, क्योंकि वह अत्यंत पवित्र संबंध है जिसका प्रदर्शन योग्य नहीं।

प्रश्न: क्या यह स्वीकार किया जा सकता है कि कांग्रेस और सेवादल में जो संबंध हैं, वही जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में हैं?

उत्तर: मैं पहले की कह चुका हूँ कि संगठन करने वाली कोई भी संस्था किसी राजनीतिक दल का उपांग बनकर नहीं चल सकती।

६. पाकिस्तान के विषय में

प्रश्न: पाकिस्तान के बारे में आपकी क्या नीति है?

उत्तर: पाकिस्तान भारत सरकार से भिन्न एक स्वतंत्र सरकार है। अतः उसके बारे में कोई भी निर्णय करना हमारी सरकार का काम है। हम उसमें कैसे दखल दे सकते हैं।

प्रश्न: क्या आप पाकिस्तान के हिंदुओं में भी अपना कार्य करेंगे?

उत्तर: यदि संभव हो तो अवश्य करेंगे।

प्रश्न: भारतवर्ष की भौगोलिक सीमाओं के बारे में आपकी क्या धारणा है?

उत्तर: देश में इस मत का अत्यधिक जोर है कि भारत की पुरानी सीमाओं को पुनरपि प्राप्त कर लिया जाए। मेरा दृष्टिकोण इससे भिन्न नहीं है। जहाँ तक संभव हो, हमें इन दो विभाजित प्रदेशों को फिर से एक करने की दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

प्रश्न: देश के विभाजन के बारे में किए हुए आपके इस कथन का अन्यथा अर्थ भी लिया जा सकता है। क्या आप उसे और अधिक स्पष्ट करेंगे? क्या आप विभाजन को मिटाना चाहते हैं अथवा अपने सांस्कृतिक संबंधों का विस्तार करना?

उत्तर: वास्तव में तो यह एक राजनैतिक प्रश्न है, किंतु मुझे यह कहना ही होगा कि विभाजन से कोई भी व्यक्ति प्रसन्न नहीं है।

प्रश्न: लियाकत-नेहरू समझौता यदि सफल हुआ तो?

उत्तर: हमारी इच्छा है कि ऐसा न हो।

प्रश्न: क्या विपरीत स्थिति में आपके पास अन्य पर्याय हैं?

उत्तर: अन्य पर्याय सुझाना जनता में भ्रम निर्माण कर सकता है।

प्रश्न: अखंड भारत के लिए क्या आप सशस्त्र संघर्ष का सुझाव देना चाहेंगे?

उत्तर: एक नागरिक ऐसा कोई सुझाव देने की स्थिति में नहीं होता। वैसे, अब जनसंख्या की अदला-बदली का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि अब वहाँ बहुत ही थोड़ी जनसंख्या रह गई है।

प्रश्न: क्या आप इसका समर्थन करते हैं कि निर्वासित अपने-अपने स्थानों पर वापस जाएँ?

उत्तर: मैं केवल समर्थन ही नहीं करता, अपितु यह भी प्रतिपादित करता हूँ कि उनको उनके स्थानों पर बसाया जाए। ये सब बातें छोड़ भी दें, फिर भी जनसंख्या की अदला-बदली की योजना चाहे जैसे भी बने, वह सही हल नहीं है। सही हल यही है कि देश के ये विभक्त हिस्से फिर जोड़े जाएँ।

प्रश्न: इसका अर्थ यही है कि आप अविभाजित भारत के पक्ष में हैं?

उत्तर: अवश्य ही।

प्रश्न: इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आपके पास साधन क्या हैं?

उत्तर: उचित समय पर आपको उससे अवगत करा दिया जाएगा।

प्रश्न: किंतु जब कोई लक्ष्य निर्धारित करता है, तो उसके साधन भी निश्चित कर लेता है?

उत्तर: हाँ, यह सही है, किंतु वह यह भी निश्चित करता है कि उन्हें कब व्यक्त किया जाए।

प्रश्न: शिमला-समझौते पर आपका मत क्या है?

उत्तर: उसमें कोई भी बात निर्णायक नहीं। सब कुछ जैसे-तैसे जोड़-जाड़कर रखा है, जिसका कोई उपयोग नहीं।

प्रश्नः युद्धबंदियों का मामला किस प्रकार हल करना चाहिए?

उत्तरः जब तक हमारी नाजुक आर्थिक स्थिति मजबूर न कर दे। (हास्य) जैसा कि आप जानते हैं, हम उनपर बहुत भारी व्यय उठा रहे हैं।

प्रश्नः यदि हम उन्हें अपनी ओर से वापस भेज दें तो?

उत्तरः उन्हें छोड़ दें, तो पश्चिम पाकिस्तान के बंगालियों का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।

प्रश्नः इसका अर्थ है कि वे एक प्रकार से बंधक के रूप में हैं?

उत्तरः हाँ। बड़ी दयनीय बात तो यह है कि हमारी सत्ता ने ऐसा ठोस कदम क्यों नहीं उठाया कि जब तक पाकिस्तान से प्रत्येक बंगाली नहीं लौटता, तब तक कोई बातचीत युद्धबंदियों की वापसी पर नहीं हो सकती। पूर्व बंगाल को हमारा समर्थन, इस प्रकार ठोस आधार पर नहीं हो पाया। हमें पता नहीं कि पाकिस्तान में कितने बंगालियों को समाप्त कर दिया गया है और कितनों को बंदी बनाया गया है।

प्रश्नः क्या भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध की स्थिति है?

उत्तरः हमारे प्रधानमंत्री के कथनानुसार ऐसा कतई नहीं है। किंतु वे हमारे विरुद्ध युद्धरत हैं। यही संभव है। जब पूर्व काल में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण किया, उस समय भी उन्होंने युद्ध घोषित नहीं किया था। पाकिस्तान बनने के पहले, अर्थात् विभाजन के पूर्व भी वे हमसे संघर्ष कर रहे थे। वास्तव में उनका अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर है, अन्यथा पाकिस्तान का अस्तित्व तर्कसंगत तो है नहीं।

हमारे पास आंतरिक सामर्थ्य नहीं है। इसलिए ये सब समस्याएँ खड़ी होती हैं।

आवश्यकता पड़ने पर अपनी व्यक्तिगत लोकप्रियता की कीमत पर भी सही बात करने का साहस हममें नहीं है। ऐसे चारित्र्य का अभाव है। नाटक या दिखावा करना तथा सस्ती लोकप्रियता के लिए कहना कुछ और करना कुछ, इन बातों से समस्याएँ हल नहीं होंगी।

प्रश्नः कुछ समय पूर्व आपने घोषणा की थी कि पाकिस्तान की ओर से

एक बार फिर आक्रमण होगा। उसका आधार क्या है?

उत्तर : उसका आधार है पाकिस्तान में तेजी से हो रही युद्ध-तैयारियों के समाचार तथा श्री भुट्टो का अपने देशवासियों के सम्मुख भाषण देने का ढंग। मेरा मत है कि उनकी इन सब कार्यवाहियों से हमारे साथ युद्ध होने के अतिरिक्त अन्य कोई भी परिणाम नहीं निकल सकता।

प्रश्न : कब तक इसकी संभावना है?

उत्तर : यह कहना तो बड़ा कठिन है, परंतु जैसा हमारी प्रधानमंत्री जी ने कहा है, हमें सदैव तैयार रहना चाहिए। वास्तव में यही बात हम सदैव कहते चले आ रहे हैं।

प्रश्न : भारत के प्रति पाकिस्तान शत्रुता क्यों रखता है?

उत्तर : पाकिस्तान के अस्तित्व का आधार ही भारत के प्रति घृणा है। इसलिए पाकिस्तान को 'घृणा' जरूरी हो गई है, अन्यथा वह समाप्त हो जाएगा।

प्रश्न : परंतु पाकिस्तान स्वयं ही छिन्न-विच्छिन्न हो रहा है?

उत्तर : हाँ, परंतु उसके नेताओं के लिए उसकी एकता का सूत्र, हमसे लड़ते रहना ही है।

प्रश्न : कुछ समय पूर्व आपने कहा था कि पाकिस्तान को सुधारा नहीं जा सकता। उसे तो समाप्त ही करना होगा। क्या अब भी आपकी यही राय है?

उत्तर : जी हाँ। आज भी मेरा यही मत है। यह बात मैंने किसी भावुकता के क्षण में नहीं कही। मेरा मत है कि एक बार पुनः देश अखंड होगा। विभाजन नितांत तर्कहीन है। वह समाप्त ही होना चाहिए। इससे मुसलमानों की समस्या भी हल होगी। विभाजन से यह समस्या हल नहीं हुई, अपितु वह अधिक उग्र हुई है।

प्रश्न : श्री पीलू मोदी ने सुझाव दिया है कि भारत और पाकिस्तान के बीच सीमाएँ खुली होनी चाहिए?

उत्तर : यह तो ठीक है। परंतु जब तक यह सब चल रहा है, तब तक सीमाएँ खोलने से क्या होगा? जो हमसे युद्ध करने पर तुले हुए हैं, वे इसका लाभ उठाएँगे, अपने लिए अनुकूलताएँ उत्पन्न करेंगे।

इसलिए यह सुझाव बहुत व्यावहारिक और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत नहीं होता। आज भी उनके एजेन्ट हमारे देश में घुसे आ रहे हैं और यहाँ-वहाँ विक्षोभ तथा उपद्रव पैदा कर रहे हैं। ऐसा बताया जाता है कि जासूसी का बहुत बड़ा जाल भी वे फैला चुके हैं।

प्रश्न: यदि वे विलय नहीं चाहते तो हमारी ओर से इस प्रकार कहने का क्या उपयोग होगा? यदि हम और वे एक हो जाते हैं, तो क्या उस स्थिति में देशद्रोहियों की संख्या नहीं बढ़ेगी?

उत्तर: आज भी ऐसे लोग बहुत बड़ी संख्या में राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के लिए पड़ोसी शत्रु देशों से सहायता लेते रहते हैं। विलय हो जाने से पड़ोसी राज्य की इस प्रकार की शक्ति समाप्त हो जाएगी। पाकिस्तान के बने रहने से यहाँ रहनेवाले सामान्य मुसलमानों के मन में एक प्रकार का गलत विश्वास उत्पन्न होता है और उसके कारण वे अराष्ट्रीय आंदोलनात्मक कार्यवाही में हिस्सा लेने लगते हैं। वे सोचते हैं कि आंदोलन के द्वारा वे एक और नया राज्य निर्माण कर सकते हैं। यह भावना समाप्त होनी चाहिए। उल्टे होना तो यह चाहिए कि विभाजन को एक बड़ी भूल मानने की भावना प्रत्येक मुसलमान में जागृत हो। हमें इस उद्देश्य की पूर्ति-हेतु उन्हें शिक्षित करना चाहिए।

प्रश्न: आपने कहा कि विलय से मुसलमानों की समस्या हल हो जाएगी। सो कैसे?

उत्तर: जैसा कि मैंने कहा, अपनी सीमा से लगे हुए पृथक स्वतंत्र राज्य के अस्तित्व का आधार अपने को है, उनकी यह भावना समाप्त हो जाएगी।

प्रश्न: शेख अब्दुल्ला की इस घोषणा में क्या आपको कोई नई चाल दिखाई पड़ती है कि उन्हें कश्मीर-विषयक संवैधानिक व्यवस्था में कोई आपत्ति नहीं है?

उत्तर: ऐसी बात अनेक वर्ष पूर्व भी वे कह चुके हैं, और उससे मुकर भी चुके है। जब तक समय की कसौटी पर उनकी घोषणा सही नहीं उतरती, तब तक उनके आज ऐसा कहने पर विश्वास करने से क्या लाभ? एक स्थान पर एक, तो दूसरे स्थान पर दूसरी बात कहने और पिछली बात से मुकर जाने का उन्हें अभ्यास है।

उन्होंने कहा है कि उनकी बात पर विश्वास किया जाए, परंतु पहले आवश्यकता इस बात की है कि वे स्वयं विश्वसनीय बनें।

प्रश्न: क्या आप समझते हैं कि बाँग्लादेश से संबंध सुधरेंगे?

उत्तर: प्राप्त समाचारों के अनुसार बाँग्लादेश में एक ऐसा गुट है, जो बाँग्लादेश और हमारे बीच के संबंध बिगाड़ने पर तुला हुआ है। परंतु जहाँ तक वहाँ के शासकवर्ग का मामला है, वह भारत के साथ मित्रता के संबंध स्थापित करना चाहता है।

प्रश्न: आपके विचार से भारत-पाक संघर्ष का अंतिम हल क्या हो सकता है?

उत्तर: ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक ही देश था। ईश्वर प्राप्ति के लिए विशिष्ट उपासना पद्धति अपनाने से राष्ट्रीयता नहीं बदलनी चाहिए। यदि इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाए तो ऐसा मानना चाहिए कि सीमा के उस पार रहनेवाले लोग अपने देश में ही रह रहे हैं। इसलिए अपने जैसा व्यवहार ही उनसे किया जाना चाहिए। देश के दूसरे महान नेताओं के साथ हम भी कहते आए हैं कि पाकिस्तान देश का निर्माण घृणा के आधार पर हुआ है। इसका अस्तित्व समाप्त होना चाहिए। पहले हम एक थे। कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण हम दो देश बनें। हमें एक हो जाना चाहिए, समस्या हल हो जाएगी।

प्रश्न: क्या यह हल व्यावहारिक है?

उत्तर: प्रारंभ में अव्यावहारिक दिखनेवाली बातें व्यावहारिक ही नहीं, वास्तविक भी हो जाती हैं।

प्रश्न: क्या भारत का विभाजन जर्मनी, कोरिया और वियतनाम देशों के समान ही था?

उत्तर: ये सारी घटनाएँ दुर्भाग्यपूर्ण थीं। किसी विचार को आधार बनाकर एक ही देश के लोग एक-दूसरे के विरोध में खड़े हो जाएँ और एक-दूसरे से अलग होकर दो राज्य बना लें, निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

प्रश्न: पाकिस्तान को अलग राज्य बनाए रखने में वहाँ के कुछ लोगों के निहित स्वार्थ हैं?

उत्तर: निहित स्वार्थ का अर्थ केवल कुछ विशेषाधिकार हैं। यह अवांछित ही है। किंतु दूसरे लाभ जो महत्त्वपूर्ण और विस्तृत हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए हमारा मिलना सबके लिए अति लाभदायी होगा।

प्रश्न: आपके विचार में रास्ता क्या है?

उत्तर: एक ही है, हृदय-परिवर्तन।

प्रश्न: पूर्ण एकीकरण के अलावा कोई दूसरा मार्ग है क्या?

उत्तर: पाकिस्तान-निर्माण का आधार जब तक भुलाया नहीं जाता या जब तक वे विश्वास करते हैं कि हमसे दुश्मनी के लिए ही वे बनें हैं, मेरे विचार में कोई दूसरा हल संभव नहीं।

प्रश्न: भारत और पाकिस्तान एक देश बनने पर सांप्रदायिक सद्भाव की गारंटी क्या होगी?

उत्तर: पाकिस्तान के बहुसंख्यक जिस मजहब का पालन करते हैं, उस मजहब का पालन करनेवालों की संख्या हमारे देश में भी काफी है। हम सांप्रदायिक सद्भाव के साथ ही रहते हैं। इधर-उधर कभी-कभी कुछ छुट-पुट घटनाएँ हो जाती हैं। किंतु ये सदा के लिए होती रहेंगी, ऐसा नहीं लगता।

प्रश्न: आपके विचार से भारत और पाकिस्तान किस प्रकार से एक होना चाहिए? कामचलाऊ एकीकरण हो, दोनों का एक संघ के रूप में या संपूर्ण विलीनीकरण हो?

उत्तर: आपने तीन क्रम बताएँ हैं। कामचलाऊ एकीकरण, एक संघ के रूप में और संपूर्ण विलीनीकरण। यह इसी क्रम से होना चाहिए।

प्रश्न: आप यह कैसे प्राप्त करेंगे?

उत्तर: वर्तमान में तो वैमनस्य का वातावरण ही दिखाई दे रहा है। यदि पुनः युद्ध छिड़ता है, तो कुछ बातें और सरल हो जाएँगी। युद्धजन्य स्थिति में कई बातें हासिल की जा सकती हैं, यहाँ तक कि दोनों का पुनर्मिलाप भी। लेकिन हमने दूसरे पक्ष के लोगों को आश्वस्त करना होगा कि पुनर्मिलाप का अर्थ उनकी गुलामी से नहीं है। देश का प्रशासन एवं कारोबार चलाने में समान रूप से जिम्मेदारी का वहन और सहकारिता की भावना आवश्यक रूप से होनी चाहिए। दुश्मनी के वातावरण में तो कुछ ही व्यक्तियों को काबू में किया जा सकेगा।

प्रश्न: आपके कथन का यह अर्थ तो नहीं है कि भारत द्वारा पाकिस्तान पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेने से सही मिलाप हो सकता है?

उत्तर: उसे विजय कहे जाने का औचित्य समझ के बाहर है। मैंने स्पष्ट रूप से बताने का प्रयास किया है कि किसी को गुलाम बनाने के प्रयत्न का नहीं, यह सुख-दुःख की समान भावनाओं की सहभागिता का सवाल है।

प्रश्न: क्या आप सोचते हैं कि भारत और पाकिस्तान अलग रहे तो चीन जैसा कोई तीसरा देश हमारे मामलों में हस्तक्षेप करेगा?

उत्तर: हाँ। यदि हम एक-दूसरे के साथ हमेशा लड़ते रहे, तो तीसरे देश को हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त अवसर देते रहेंगे। चाहे चीन हो या कोई अन्य देश हो।

प्रश्न: मान लिया कि हमने पाकिस्तानी सेना को परास्त कर दिया और देश पुनः एक हो गया, तब मुसलमान रहेंगे ही और हिंदू-मुस्लिम समस्या भी रहेगी। उसका क्या होगा?

उत्तर: नहीं रहेगी। यह हिंदू-मुस्लिम समस्या केवल राजनीति से प्रेरित है। यदि संपूर्ण देश एक हो गया तो अलगाववादी मुस्लिम प्रवृत्ति को सहारा देने वाली कोई शक्ति शेष नहीं रह जाएगी और यह समस्या सुलझ जाएगी। अंग्रेजों ने ही मुस्लिम जातीयता के उन्माद को भड़काया था। उनके आने के पूर्व राष्ट्रीय जीवन-प्रवाह के साथ अपने को समाहित करने की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। अब अंग्रेज देश छोड़कर जा चुके हैं, यदि हम परिस्थिति पर अपनी पकड़ सिद्ध कर सके, तो राजनैतिक गुलामी और दरिद्रता से मुक्ति पाकर पाकिस्तानी मुसलमान और भी सुखी होंगे।

प्रश्न: क्या आप पाकिस्तान के साथ बातचीत करने के विरोध में हैं?

उत्तर: बातचीत प्रारंभ करने के पूर्व बातचीत की असफलता के संभावित परिणाम के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

प्रश्न: मान लीजिए कि बातचीत असफल हो गई?

उत्तर: केवल एक निश्चित बिंदु तक ही बातचीत हो। हमारे सर्वनाश के लिए बातचीत न हो।

प्रश्न: क्या आप सोचते हैं कि पाकिस्तान मजहबी देश है?

उत्तर: कभी वे कहते हैं कि गैरमुस्लिमों को सुरक्षा प्रदान करेंगे, किंतु करते इसके ठीक विपरीत हैं। सभी नागरिकों के लिए एक कानून लागू करने की घोषणा करते हैं, उसी पल शरीयत कानून से चलने की बात भी करते हैं। पाकिस्तान के बारे में यही कहा जा सकता है कि वह अनिश्चित नीतिवाला देश है।

प्रश्न: भूतकाल की घटनाओं का विचार करते समय क्या यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि क्या हुआ था और क्या करें? भारत और पाकिस्तान दो अलग देश क्यों बने? क्या हमने अपने बारे में नहीं सोचना चाहिए तथा अपने में नहीं झाँकना चाहिए कि हममें कोई कमी हो? क्या पूरा दोष उन्हीं का है?

उत्तर: केवल उनके और हमारे दोषों के बारे में ही नहीं, बल्कि तीसरी शक्ति जो यहाँ थी, उनके दोषों के बारे मे भी विचार किया जाना चाहिए, जिन्होंने इन घटनाओं को प्रेरित किया। उसके बिना हम योग्य निर्णय पर नहीं पहुँच सकते।

७. आर्थिक

प्रश्न: हम पर्याप्त गति से आर्थिक विकास नहीं कर पा रहे हैं। चीन द्रुत गति से विकास की ओर बढ़ रहा है। क्या हमें उसका अनुसरण नहीं करना चाहिए?

उत्तर: चीन ने स्वयं को विदेशी विचारों के हाथों बेच दिया है। हमें इतनी तीव्र गति से नहीं चलना चाहिए कि अपनी राष्ट्रीय अस्मिता ही खोनी पड़े। पूरी दुनिया में भीख का कटोरा लेकर घूमने से क्या होगा? इससे केवल विदेशी विशेषज्ञ, तंत्रज्ञों का अधिक मात्रा में देश में आगमन होगा। उनके आने का मुख्य उद्देश्य स्वयं के देश के हित में शीत युद्ध की तैयारी मात्र होगा।

प्रश्न: हमारे मार्ग की मुख्य बाधा कौन-सी है?

उत्तर: हम दोहरा पाप कर रहे हैं। एक तो यह कि पर्याप्त कठोर परिश्रम नहीं करते तथा दूसरा यह कि जो थोड़ा-बहुत करते हैं, उसका दिखावा अधिक करते हैं। श्रमदान की बात करते हैं और उसकी

विडंबना कर हँसी भी उड़ाते हैं। चीन में माओ स्वयं मजदूरों के साथ काम करता था, परंतु हमारे नेता फोटो खिंचवाने के लिए मिट्टी का ढेला उठाते हैं। इसलिए आश्चर्य नहीं कि हम जिस वस्तु का उत्पादन करते हैं, वह अत्यंत निकृष्ट स्तर की होती हैं। नए बाँध धँस जाते हैं, नई इमारतों में दरारें आती हैं, कारखानों में उत्पादित वस्तुओं का स्तर निकृष्ट रहता है। भारत में बनी कार सड़कों पर कितने दिन दौड़ेगी, कुछ कह नहीं सकते।

प्रश्न: प्रथम पंचवर्षीय योजना की सफलता का दावा किया जा रहा है?

उत्तर: योजना में खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की बात थी। किंतु आज उसकी पूर्तता की बात कोई नहीं करता। प्राचीन भारत में राजा फसल के दिनों में इसका प्रयत्न करते थे कि कम से कम तीन वर्ष की आवश्यकता लायक अनाज भंडार में रहे। आज तो लोगों का पेट भर सके, इतना अनाज भी पास में नहीं है। जिस योजना में अनाज से संबंधित वस्तुओं की आत्मनिर्भरता की चिंता न हो, वह योजना, योजना ही नहीं है। यदि युद्ध होता है और अनाज का आयात करना असंभव हो जाए, उस स्थिति में क्या होगा? सभी दिशाओं में देश का विकास हो, इस बारें में कोई विचार करता हुआ दिखाई नहीं देता। सब ओर अव्यवस्था होने के कारण स्थिति दुखद है। हम कपड़ा, शक्कर आदि के निर्यात का प्रयास कर रहे हैं, जबकि उसके लिए बाजार ही नहीं है। नुकसान भरने के लिए उद्योग को आर्थिक सहायता दी जाती है। उसके लिए अपने ही लोगों से कर वसूला जाता है। यह योजना बनाना है अथवा पागलपन।

प्रश्न: तब क्या किया जाए?

उत्तर: प्रथम तो ईमानदारी होनी चाहिए। भूदान की बात की जाती है। कहा जा रहा है कि प्रत्येक के पास भूमि का टुकड़ा होना चाहिए। इसका अर्थ होगा जमीन का छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाना। लेकिन इसके साथ ही सहकारी खेती करने की बात भी की जाती है। जिसका अर्थ संपूर्ण भूमि पर एकीकृत खेती करना होता है। क्या यह विरोधाभास नहीं है?

नलकूपों के निर्माण पर करोड़ों रुपए खर्च किए गए। सात

वर्ष पूर्व मैंने कहा था कि अनाप-शनाप ढँग से नलकूपों के खनन से नए मरुस्थलों का निर्माण होगा। सरकार को अब पता चला है कि इस प्रकार के कुएँ तेजी से भूमि के अंदर का पानी ऊपर लाकर भूजल की धारा को सुखा देते हैं। फिर खींचने के लिए पानी शेष रहेगा ही नहीं। इतना होते हुए भी अधिक से अधिक नलकूपों के निर्माण की अनुमति दी जा रही है। विदेशी संस्थान इस काम को कर रहे हैं। इधर पुराने जलाशय नष्ट हो रहे हैं, बावड़ियाँ सूख रही हैं। अनाज का उत्पादन बढ़ाने का यह तरीका है क्या?

भिलाई में इस्पात के कारखाने का निर्माण किया जा रहा है। उसके लिए उत्कृष्ट चावल उगानेवाली १०० वर्ग मील जमीन का अधिग्रहण किया गया। जबकि खदान यहाँ से ३० मील दूर है। खेती के अयोग्य जमीन पर यह इस्पात नगर बनाया गया होता तो इस उपजाऊ भूमि का उपयोग चावल उत्पादन में होता रहता। कृषि और उद्योग विभागों में प्राथमिक सामंजस्य ही नहीं है।

नागपुर शहर का निर्माण बुद्धिमानी के साथ उपजाऊ भूमि के पास की अनुपजाऊ भूमि पर किया गया था। किंतु शहर के विस्तार ने कृषि भूमि पर अतिक्रमण प्रारंभ कर दिया है। इसका अर्थ केवल उपजाऊ भूमि को खोना ही नहीं, वरन् इमारतों को अयोग्य भूमि पर खड़ा कर उनका निर्माण-मूल्य बढ़ाना है। शहरों को अनियंत्रित क्यों बढ़ने दिया जाता है? दिल्ली में हम इस प्रकार के संकटों का सामना कर चुके हैं। वहाँ पेयजल-वितरण की व्यवस्था गड़बड़ा गई थी।

नागपुर शहर को सुंदर बनाने की योजना है। शायद इसलिए कि इस वर्ष (सन् १९५८) वहाँ एक प्रबल राजनैतिक दल का अधिवेशन होने जा रहा है। वे शुक्रवार तालाब का पूरा पानी बाहर निकालकर उसे ताजे शुद्ध जल से भरना चाहते हैं। भारत सरकार भी इस हेतु कई लाख रुपए का अनुदान दे चुकी है। आमोद-प्रमोद का स्थान बनाने के लिए तालाब को शुद्ध ताजे जल से भरने के लिए हमारे पास पर्याप्त धन है, किंतु शहर की जलपूर्ति के लिए नहीं है। नागपुरवासियों को पीने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं है। हमारे प्रयास उपलब्धियों के दिखावे मात्र के लिए होते हैं,

उपलब्धियों के लिए नहीं।

प्रश्न: परिस्थिति में सुधार कैसे लाया जाए?

उत्तर: दिखावा करने का पागलपन छोड़ना होगा और लोगों की देशभक्ति की भावना को सही दिशा देनी होगी। नए रेलवे स्टेशनों की इमारतों के निर्माण पर हम कई करोड़ रुपए खर्च कर डालते हैं, किंतु रेलवे लाइन व नदियों पर बने पुलों की उपेक्षा करते हैं। इस कारण अक्सर रेलवे दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। देश को गलत दिशा में ले जाया जा रहा है। लोगों की आँखों में आजादी की कोई चमक दिखाई नहीं देती। कर्म करने की प्रेरणा किसी के अंदर दिखती नहीं। हर वर्ष हजारों लोग उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए बाहर जाते हैं, पर क्या उनमें से कुछ लोग भी मौलिक परिवर्तन का विचार लेकर लौटते हैं?

ऐसा कहा जा रहा है कि यहाँ तेल शुद्धिकरण व ड्रिल करने के लिए विदेशी तज्ञ बुलाए जाएँ। मैं पूछता हूँ कि हमारे खनिज विभाग ने इसके लिए इन वर्षों में क्या किया? वेन्युजुएला, अमरीका, रूस आदि देशों में प्रथम बार जब तेल पाया गया, तब वहाँ ड्रिलिंग व तेल शुद्धिकरण का काम किसने किया? कांबे की मिट्टी से खनिज तेल की गंध आती है। ज्वालामुखी की ज्वाला ही यह सिद्ध करती है कि उस क्षेत्र में तेल के भंडार हैं। सामाजिक योजना से लेकर सभी बातों के लिए विदेशी विशेषज्ञों को निमंत्रण देने के पागलपन को क्या कहा जाए? केवल कार्यप्रवणता और लोगों की देशभक्ति की भावना को सही दिशा में मोड़कर ही समृद्धि की ओर बढ़ा जा सकता है। विदेशी सहायता या दिखावे की प्रवृत्ति से हमारा भला नहीं हो सकता।

प्रश्न: कई प्रकार के उत्पादनों के विदेशी बाजार हम क्यों खो रहे हैं?

उत्तर: इसका प्रमुख कारण है ईमानदारी का न होना। माना जाता था कि हमारे यहाँ की काली मिर्च सोना थी। इसलिए विदेशी बाजार में उसकी अच्छी कीमत मिलती थी। पर हमने उसका विश्व-बाजार खो दिया है। क्योंकि पपीते के बीज मिलाकर उसका निर्यात किया गया। इसका पता चलते ही उन्होंने भारत से काली मिर्च खरीदना बंद कर दिया। वस्तुतः हमारे कई उत्पादों के लिए हमने बाजार

खो दिया है। कुछ वर्ष पूर्व तक हम बहुत अधिक मात्रा में कपड़ा निर्यात करते थे। अब हाथकरघे से बनाए गए कपड़े के सिवाय हमारे दूसरे कोई उत्पाद विदेशियों ने खरीदने बंद कर दिए हैं।

यहाँ तक कि पाकिस्तान विश्व बाजार में सफलता प्राप्त कर रहा है। उसका व्यवहार हमसे अधिक ईमानदारी का है। हाँ, इस विषय में उनके पास सुविधाएँ अवश्य हमसे अधिक हैं। वहाँ उत्तम प्रकार का कपास बहुत अधिक मात्रा में पैदा होता है। उन्होंने अपने वस्त्र उद्योग का आधुनिकीकरण भी किया है, जिसमें मजदूरों की कम संख्या से काम चलाया जाता है। हमारे उद्योगपति ग्राहकों को संतुष्ट करने में असफल रहे हैं। एक तो नाप में कम मात्रा दी जाती है और दूसरा यह कि निकृष्ट वस्तुओं को उत्कृष्ट बताकर बेचा जाता है। इस कारण हमारे द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग कम होती जा रही है।

यहाँ तक कि बाहर से विभिन्न पुर्जे मँगाकर, उन्हें जोड़कर भारत में बनाई गई कारें भी घटिया दर्जे की हैं। हमारी विद्यमान अम्बेसडर कार इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। एक छोटा पत्थर भी उसकी पेट्रोल टंकी में छेद कर सकता है। कार जब तेज गति से दौड़ती है,तब सड़क के पत्थर उछलकर यह क्षति कर सकते हैं। इस प्रकार की असावधानी से उनका निर्माण हो रहा है।

प्रश्न : क्या सरकार ने कोई विकास नहीं किया?

उत्तर : क्या किया? कहाँ किया? अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह माना जाता है कि सरकार का काम सर्वोत्कृष्ट है। किंतु वस्तुस्थिति क्या है? कश्मीर के प्रश्न पर १० में से किसी ने हमारा समर्थन नहीं किया। आर्थिक दृष्टि से विदेशों में हमारी विश्वसनीयता शून्य है। हमें वहाँ से ऋण भी नहीं मिल पा रहा है। क्या यह विकास है? यह हमारी प्रतिष्ठा है? हमारे पास इस्पात के तीन कारखाने हैं, किंतु वे विदेशी धन से और विदेशियों द्वारा स्थापित किए गए हैं। हमारा तथाकथित विकास केवल आयातित विकास है। साबुन जैसी छोटी वस्तु के निर्माण में भी विदेशी कंपनी हिंदुस्थान लीवर का स्थान सर्वोच्च है।

प्रश्न : उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की आजकल काफी चर्चा है। कहा जा रहा

है कि वह सभी प्रकार की आर्थिक कमियों को पूरा करने की रामबाण औषधि है। इस बारे में आपके विचार क्या हैं?

उत्तर: उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का अर्थ है राज्य का पूँजीवाद, जिसमें पूँजीवाद के सभी गुण-दोष विद्यमान हैं। मैं भविष्य में औद्योगिक सहकारिता की व्यवस्था देखना चाहता हूँ, जिसमें सहकारी संस्था का सदस्य ही नहीं, बल्कि विशाल समाज के हर सदस्य को स्वयं की जिम्मेदारियाँ और नैतिक बंधन का ज्ञान हो, केवल अधिकारों की माँग और कर्तव्य से बचने के उपायों का नहीं। भारतीय संस्कृति में कर्तव्य और समाज के प्रति नैतिक बंधनों की भावना पर बल दिया गया है। मैं चाहूँगा कि स्वतंत्र भारत पुनः इसी भावना के साथ खड़ा हो।

प्रश्न: भारतीय परिस्थिति के अनुकूल औद्योगीकरण का प्रारूप क्या होना चाहिए?

उत्तर: लघु व गृह उद्योगों का सर्वत्र प्रसार होना चाहिए, जो बड़े औद्योगिक केंद्रों को उपकरण, साधन उपलब्ध करानेवाले हों। जापान की औद्योगिक रचना उसी प्रकार की है। साइकल उद्योग में छोटे उपकरण अलग-अलग स्थानों पर बनाए जाते हैं और उनको लाकर एक बड़े केंद्र में जोड़ दिया जाता है। केवल रक्षा संबंधी बड़े उद्योग ही शासन द्वारा चलाए जाने चाहिए।

इसी से कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में समन्वय स्थापित किया जा सकता है और देहात तथा शहरी क्षेत्र में जो अंतर दिखाई पड़ता है, वह कम करने में भी सहायता होगी।

प्रश्न: जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के संबंध में आपके विचार क्या हैं?

उत्तर: विशिष्ट परिस्थिति पर उसकी आवश्यकता एवं औचित्य निर्भर है। यदि जमींदारी प्रथा किसानों के हितों को नुकसान पहुँचाती हो तो उसे समाप्त किया जाना चाहिए। किसानों के हितों को प्राथमिकता देनी ही होगी, क्योंकि देश की लोकसंख्या में वे ही बड़ी संख्या में हैं।

सरकार और किसान के बीच जमींदार केवल मध्यस्थ होता है। यद्यपि सरकार के पास संपत्ति-संबंधी अधिकार हैं, फिर भी उसे मध्यस्थ की नियुक्ति करनी पड़ती है। जमींदारी प्रथा में

सरकार की आमदनी निश्चित रहती थी, भले ही किसानों के खेत में कोई फसल पैदा न हुई हो। यदि किसान लगान देने में असमर्थ है, तो भी सरकार उससे निपटने की चिंता से मुक्त रहती थी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सामान्य किसानों के हित में न होने के बावजूद इस हानिप्रद प्रथा को चालू रखा जाए। विदेशी शासकों द्वारा इस प्रथा को चालू रखने में उनका स्वार्थ निहित था।

जमींदारी प्रथा समाप्त होने के पश्चात् मध्यस्थ की आवश्यकता तो थी ही, उसकी पूर्ति के लिए नौकरशाही ने कदम बढ़ाया। निस्संदेह सरकार का लगान-वसूली पर पूर्ण नियंत्रण रहना ही चाहिए। व्यवस्था कुछ भी हो, सरकार को चाहिए कि वह मध्यस्थ को लगान वसूल करने में अधिकारों का दुरुपयोग न करने दे। इन बातों में मार्गदर्शक तत्त्व यही है कि सामान्य व्यक्ति का हित देखा जाए।

प्रश्नः क्या आप समझते हैं कि सरकार द्वारा कानूनी रूप से उठाए जा रहे कदम जमीदारों को, जागीरदारों को हटाने के लिए हैं?

उत्तरः पर ये हैं कहाँ? अब तो कोई भी नहीं बचा। वास्तव में अब हमारे पास अधिकतम सीमा के लिए कानून हैं। यह संविधान का सत्रहवाँ संशोधन अनावश्यक है। मुझे तो यह संदेह है कि इस प्रकार के संशोधनों द्वारा किसान की मालकियत नष्ट की जा रही है।

चीन में ऐसा ही किया गया। चीनी उपद्रव पर उतारू हो गए और अगणित भूधारियों को उन्होंने मार डाला। हमारे लोग तो शांतिपूर्ण हैं।

प्रश्नः समाचार-पत्रों में ऐसा प्रकाशित हुआ हैं कि आपने जमींदारी उन्मूलन का विरोध किया है। क्या यह सत्य है?

उत्तरः समाचार-पत्रों में नहीं केवल एक समाचार-पत्र में यह प्रकाशित हुआ है। किंतु मैंने कभी भी ऐसा विचार व्यक्त नहीं किया। यह एक राजनीतिक प्रश्न है। अतः हम लोग उसमें नहीं पड़ते। किंतु मेरा विचार है कि यदि जमींदारी-उन्मूलन से किसानों की भलाई होती है तो यह अवश्य कार्यान्वित किया जाना चाहिए। यदि जमींदारी रखने से किसानों की भलाई हो तो रखना चाहिए। प्रश्न जमींदारी-उन्मूलन का नहीं, अपितु किसानों की भलाई का है।

अतः किसानों को सुखी बनाने के लिए जो कुछ आवश्यक हो, वह करना चाहिए।

प्रश्न: अनाज की कमी के संदर्भ में सरकार क्या कर सकती है?

उत्तर: मुझे इसका विश्वास ही नहीं होता कि देश में अनाज की कोई कमी है। पिछले वर्ष फसल अच्छी होने की सूचना प्राप्त हुई थी। कठिनाई यह है कि अवैध रूप से अनाज का संग्रह करनेवाले उस व्यापारी के विरुद्ध सरकार कोई कार्रवाही नहीं करती, जो कांग्रेस को धन उपलब्ध कराता हो। ऐसे ही उस खद्दरधारी पाकिस्तानी एजेन्ट के विरुद्ध भी उचित कार्रवाही नहीं की जाती। जिस दिन सरकार यह तय कर ले कि दोषी व्यापारी यदि कांग्रेसी हो, तो भी कार्यवाही होगी, तब आधे प्रश्न स्वतः ही हल हो जाएँगे।

प्रश्न: पश्चिम बंगाल सरकार के 'संदेश मिठाई' पर निर्बंध आदेश से अनाज का प्रश्न कुछ मात्रा में हल हो सकता है, इसके विषय में आपके विचार क्या हैं?

उत्तर: मेरे विचार से वह आदेश निरर्थक है। कहा जाता है कि दूध संपूर्ण अन्न है। अनाज की समस्या हल करने का प्रभावी उपाय दूध उत्पादन में वृद्धि है। किंतु इसके संबंध में कोई विचार नहीं करता। पंजाब की दूध देनेवाली अच्छी गायों को भी कोलकाता ले जाकर काटा जाता है। मुख्यमंत्री पी.सी.सेन को चाहिए कि पहले गोहत्या बंद करें। उससे बंगाल को जितने दूध की आवश्यकता है, उपलब्ध हो सकता है, 'संदेश' के लिए भी।

प्रश्न: अनाज की कमी हैं। किंतु अनाज की राशनिंग कोई नहीं चाहता। हर कोई राशन के अनाज के प्रति शंकित है?

उत्तर: इस प्रकार की शंकाओं के लिए पर्याप्त कारण विद्यमान हैं। चेन्नै सरकार ने २% तक रेती या कंकड़वाले चावल को मनुष्य के भोजन के लिए उचित प्रमाणित किया हुआ है। उन्हें इसका एहसास नहीं है कि २% की छूट देने पर अधिक मिलावट होगी।

देश के कई हिस्सो में अनाज की गंभीर कमी है। इस स्थिति का सामना सरकार उचित ढंग से नहीं कर पा रही है। महाराष्ट्र और मैसूर में सूर्यास्त के पश्चात् खाद्यान्न से भरे ट्रक ले जाना असुरक्षित हो गया है। भूखे लोग उन्हें मार्ग में ही रोक लेते हैं।

पहले तो वे ड्राइवर को उचित कीमत देकर अनाज ले जाते थे, परंतु अब तो कीमत भी नहीं देते।

भूख से मृत्यु भी हो रही हैं। अभी हाल में ही चेन्नै में एक व्यक्ति को सस्ते अनाज की दुकान के सामने कई घंटे लाईन में खड़े रहने के बाद बताया गया कि अनाज उपलब्ध नहीं है। वह वहीं गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। प्रचार किया गया कि हृदयगति बंद पड़ने से मृत्यु हुई है। प्रत्येक मृत्यु हृदयगति बंद होने पर ही होती है।

प्रश्नः क्या आप अनाज के संपूर्ण व्यापार के सरकारीकरण तथा उसके आवागमन पर कठोर नियंत्रण के पक्ष में है?

उत्तरः नहीं। मुक्त व्यापार और खुला आवागमन होना चाहिए।

प्रश्नः आपने कहा था कि भौतिक साधन पश्चिम के लेंगे और समाज-रचना का आधार भारतीय रहेगा। किंतु फैक्ट्रियों की स्थापना के पश्चात् समाज-रचना का आधार भारतीय कैसे हो सकेगा?

उत्तरः सहकारिता के साथ कार्य करना होगा। कोई पैसा देगा, कोई बुद्धि तथा शारीरिक श्रम, किंतु लाभ में सबका भाग होगा। लाभ में भाग न मिलने पर ही संघर्ष उपस्थित होता है। हम प्रतिस्पर्धा नहीं चाहते। यह अभारतीय है। इसके विपरीत सहकार्य से कार्य करने का ढंग भारतीय है। पहले भी यह इसी प्रकार से होता था।

प्रश्नः मजदूर वर्ग के जीवन का स्तर ऊँचा उठाने की दृष्टि से आपने क्या कार्य किया है?

उत्तरः ऐसी बात नहीं कि हमने उनकी दृष्टि से कुछ भी कार्य न किया हो। किंतु हम हिंदू-हिंदू के बीच किसी भी प्रकार का भेद नहीं करते, फिर चाहे वह दरिद्र हो अथवा धनी। संघ का और भी अधिक प्रसार होने पर हमें आशा है कि हम उनमें से प्रत्येक के साथ संपर्क स्थापित कर सकेंगे।

प्रश्नः आर्थिक सुधार के बिना सांस्कृतिक कार्य किस प्रकार संभव हो सकता है?

उत्तरः यद्यपि आर्थिक प्रश्न मानव-मात्र के लिए महत्त्वपूर्ण है, तथापि यह आवश्यक नहीं कि वह उसी पर अवलंबित रहे। अभी तक का

इतिहास तो यह बताता है कि जहाँ कहीं भी सांस्कृतिक कार्य सफलतापूर्वक हुआ, वहाँ आर्थिक समस्या उपस्थित ही नहीं हुई। आर्थिक प्रश्नों के कारण सांस्कृतिक कार्य में कभी भी बाधा नहीं आई।

प्रश्न: द्वितीय पंचवार्षिक योजना के संबंध में आपकी क्या राय है?

उत्तर: वह अत्यधिक खर्चीली है। छोटे सिंचाई कार्यों और छोटे-छोटे कारखानों के लिए लागत कम लगती है और उनसे लाभ भी जल्दी होता है। इसके बाद इन्हीं लाभों को बड़े कार्यों में फिर से लगाया जा सकता था। हम गलत छोर से आरंभ कर रहे हैं, भव्यता पर बल दिया जा रहा है।

तथाकथित समाजवादी नियोजन का सर्वाधिक बुरा पहलू समूह-वाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंत है।

प्रश्न: प्रशासन में अधिकांश मध्यमवर्गीय लोग ही हैं। मध्यम वर्ग व्यापारियों की संपन्नता से ईर्ष्या करता है। वह राष्ट्रीयकरण का समर्थन इसलिए करता है, क्योंकि उससे व्यापारी का स्थान 'बाबू' ले सकता है।

उत्तर: किंतु बाबू व्यापारी नहीं बन सकता। दोनों के कार्य सर्वथा भिन्न हैं। व्यापारी घूस देने के लिए जितना तैयार रहता है, बाबू घूस लेने के लिए उससे कहीं अधिक तत्पर रहता है। पिछले वर्ष बजट का भेद खुल जाने के विषय में काफी हो-हल्ला हुआ। किंतु मुझे बताया गया है कि यह तो हर वर्ष की बात है। पिछले वर्ष तो बजट की साइक्लोस्टाइल प्रतियाँ खुलेआम बेची गईं और आपको पता है कि बजट का भेद कौन खोलता है? यह कार्य बहुत बड़े अधिकारी ही करते हैं। यह चारित्र्य के अभाव के कारण होता है। प्रशासन भ्रष्ट है। यदि आप राष्ट्रीयकरण करते चले जाएँ तो इसका अर्थ प्रशासन को पुष्ट करना और उसे अधिक भ्रष्ट बनाना ही होगा।

प्रश्न: कुछ ऐसी बातें हैं, जो निजी उद्योग नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए इस्पात संयत्र ही लें?

उत्तर: किंतु पहले १० वर्षों के लिए हम 'स्टील मिल' से ही क्यों न काम चलाएँ और उसके बाद किसी योजनाकाल में हम उन्हें एकत्र ले आएँ।

पता चला है कि भिलाई अब बिरला के हाथ सौंप दिया गया है। पिछले ही माह कर्मचारियों को बताया गया कि वे अब सरकारी कर्मचारी नहीं रहे। उन्हें निवृत्ति-वेतन नहीं मिलेगा। सरकार ने पहले ही लोगों को निजी स्टील मिल स्थापित करने की अनुमति क्यों नहीं दी? दुःख की बात है कि सरकार कुछ उद्योगपतियों को बढ़ावा देती है और अन्य अनेक को परेशान करती है। अभी-अभी एक विख्यात व्यापारिक घराने ने एक विशिष्ट प्रकार की कार के निर्माण हेतु एक विदेशी फर्म के साथ समझौता किया। उद्योगपति सरकार से इतने अधिक भयभीत हैं कि वे सुरक्षा के लिए शक्तिशाली विदेशी गठबंधनों का सहारा ढूंढते हैं।

शासन पूँजी की कमी की शिकायत करता है, अकेले अफ्रीका स्थित भारतीय ही भारत में १००० करोड़ रुपए लगा सकते हैं? किंतु सरकारी हस्तक्षेप, करों के बोझ और राष्ट्रीयकरण के खतरों के कारण पूँजी-निवेश के लिए कोई आकर्षण नहीं रहा है।

मैं तो सरकार पर आरोप करता हूँ कि स्वतः को सदा के लिए सत्ता में बनाए रखने के प्रयास में वह शिक्षा से उद्योग तक सभी को अपने नियंत्रण में करने का प्रयत्न कर रही है।

केवल गरीबों को प्रभावित करने के लिए अमीरों पर अत्यधिक कर लगाए जाते हैं, पर कर चुकाने के लिए गरीबों पर जबरदस्ती की जाती है। अमीर यदा-कदा ही कर चुकाते हैं। कांग्रेस चुनाव कोष में धन देकर, निर्धारित कर का अंश मात्र चुकता कर वे करों की चोरी करते हैं। हाल ही में सुना है कि किसी बहुत बड़े उद्योगपति को कुछ अन्य कंपनियों में अनियमितताएँ करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया। परंतु इन कंपनियों के मालिकों ने कांग्रेस को बहुत बड़ी राशि चंदे में देकर अपना पीछा छुड़ा लिया। वह उद्योगपति इसलिए गिरफ्तार हुआ था क्योंकि उसने कहा था, 'कांग्रेस को फटा जूता भी नही दूँगा।' पिछले चुनाव के समय इस उद्योगपति ने यह धमकी दी थी कि उनसे कांग्रेस चुनाव फंड के लिए पैसा माँगा गया तो वे एक बड़े कांग्रेसी नेता की पोल अखबारों में खोल देंगे। इस बार भी वह इसी तरह सोच रहे थे, किंतु सफल नहीं हो सके।

वे चारित्र्य के संकट की बातें करते हैं, किंतु प्रश्न है कि वे किसके चारित्र्य की बात करते हैं? ऊँचे से ऊँचा व्यक्ति भी विकृति से अछूता नहीं है।

प्रश्न: विदेशी मुद्रा विनियोग के संदर्भ में हम क्यों इतने चिंतित हैं?

उत्तर: हाँ। इस संबंध में केवल हम ही इतने चिंतित हैं। एक कारण तो यह है कि हम उत्पादन में पिछड़ गए हैं और दूसरा यह कि दुनिया में हमारे रुपए का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसे स्टर्लिंग के अधीन कर दिया गया है।

प्रश्न: आजकल औद्योगीकरण देश के विकास को आँकने का मापदंड बन गया है। क्या यह उचित है?

उत्तर: यही कारण है कि दुनिया आज संघर्ष और युद्ध के मार्ग पर चल पड़ी है। अतिरिक्त उत्पादन की बिक्री के लिए दूसरे देशों के बाजार बनाने की स्पर्धा एक स्थिति के बाद संघर्ष में बदल जाती है और कभी-कभी युद्ध भी अनिवार्य हो जाते हैं। दूसरे, मशीनों के उपयोग के कारण मनुष्य बेरोजगार होने लगा है। ऐसा नहीं होना चाहिए। बहुविध वस्तुओं की माँग निर्माण करना, उनके निर्माण में अधिक आधुनिक मशीनों का उपयोग करना, इन पाश्चात्य विचारों के प्रभाव के कारण मनुष्य मशीन का गुलाम बन जाएगा।

यह स्पष्ट होना चाहिए कि मशीन मनुष्य के सुख के लिए है। पर वह भस्मासुर के समान है। यदि उसे नियंत्रित नहीं रखा गया तो वह अपने निर्माता को ही नष्ट कर देगी। ज्ञानी और जिनमें नैतिक बल है, केवल ऐसे व्यक्ति ही भस्मासुर को नियंत्रण में रख सकते हैं, उसे दिशा-निर्देश दे सकते हैं। ऐसे ही प्रभुसत्ताप्राप्त लोग मानव-जाति का भाग्य बना सकते हैं और मार्गदर्शन कर सकते हैं।

समाज की एकात्मता जिन संस्कारों पर आधारित हो, उन्हीं संस्कारों का समुच्चय संस्कृति है।
— श्री गुरुजी

८. राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएँ

कश्मीर के बारे में

प्रश्न : कश्मीर की समस्या पर आपका क्या मत है?

उत्तर : यह एक राजनैतिक समस्या है, जिसे सरकार को ही सुलझाना चाहिए। हम अपना मत व्यक्त कर सरकारी योजनाओं के मार्ग में बाधा निर्माण करना नहीं चाहते।

प्रश्न : कश्मीर के संबंध में सरकार किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई है। वह कश्मीर खोना नहीं चाहती और उसे सुरक्षित रखने का मार्ग उसे दिखाई नहीं देता?

उत्तर : कश्मीर को सुरक्षित रखने का एकमात्र तरीका उसका भारतीय संघ में पूर्ण विलय है। अनुच्छेद ३७० के साथ-साथ पृथक ध्वज एवं पृथक संविधान को समाप्त करना आवश्यक है। यदि राष्ट्रपति शासन लागू करना अनिवार्य हो तो उसका सहारा अवश्य लेना चाहिए। कुछ व्यक्तियों का कथन है कि राष्ट्रपति शासन अस्थायी तौर पर ही लागू होगा और एक-दो वर्ष में नवीन निर्वाचन आवश्यक होंगे। तब निर्वाचनोपरांत गठित होने वाली विधानसभा वर्तमान विधानसभा से भी अधिक सांप्रदायिक हो सकती है। उस स्थिति में क्या होगा? इन संभावनाओं से पूर्णतया इनकार नहीं किया जा सकता। परंतु आधारभूत प्रश्न यह है कि हम कश्मीर की सुरक्षा चाहते हैं अथवा नहीं? यदि कश्मीर की सुरक्षा आवश्यक है तो उसके लिए प्रत्येक संभव उपाय करना होगा। यदि सीमांतवर्ती नेफा प्रदेश का प्रशासन सामरिक महत्त्व को ध्यान में रखकर सेना के माध्यम से केंद्र सरकार के अंतर्गत रह सकता है, तब सामरिक कारणों से कश्मीर के सीमांतवर्ती प्रदेश का प्रशासन उसी रीति से क्यों नहीं चलाया जा सकता।

प्रश्न : ऐसी नीति के संबंध में संसार की प्रतिक्रिया क्या होगी?

उत्तर : अपने राष्ट्र की दृष्टि से अत्यावश्यक राष्ट्रीय हित कौन से हैं, इसका निर्णय हमें करना होगा और तभी उनका संरक्षण किया जा सकेगा। 'विश्व-जनमत' की अधिक चिंता करने का कोई कारण नहीं है। क्या विश्व-जनमत आज भी भारत के अनुकूल है? क्या

इस विश्व-जनमत ने जूनागढ़, हैदराबाद और गोवा की समस्याओं पर हमारा समर्थन किया था? भारत का प्रशासन भारतीय हितों को दृष्टिगत रखकर करना होगा। उसमें अन्य विदेशी राष्ट्रों की प्रतिक्रिया निर्णायक कारण नहीं बन सकती, क्योंकि उक्त प्रतिक्रिया उनके अपने स्वार्थों से प्रेरित होगी।

प्रश्न : कश्मीर घाटी को सिक्किम समान स्तर देने के संबंध में आपका क्या अभिमत है? कतिपय व्यक्तियों का विचार है कि कश्मीरी वस्तुतः पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं होना चाहते। ऐसा करके हम पाकिस्तान का मुँह बंद कर देंगे?

उत्तर : यह कारगर नहीं होगा। सिक्किम के संबंध में की गई व्यवस्था ही सुचारु रूप से नहीं चल रही है। पुनः कश्मीरी मुसलमानों की ही भाँति सिंधी मुसलमानों के संबंध में भी यही कहा जाता था कि वे सांप्रदायिक नहीं हैं और वे पाकिस्तान का निर्माण नहीं चाहते। किंतु सिंध के मुसलमान आज पाकिस्तान में हैं और उस नवीन व्यवस्था में समरस हो गए हैं। अतः यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि कश्मीर के संबंध में सिक्किम सरीखी व्यवस्था ठीक होगी। इस विषय में हमें कोई मिथ्या धारणा नहीं रखनी चाहिए। शेख अब्दुल्ला स्वतः कश्मीर के पाकिस्तान में विलय का समर्थक था, किंतु वह ऐसा इसलिए नहीं कर सका, क्योंकि जिन्ना उसकी विलय संबंधी शर्तों को मानने के लिए तैयार नहीं था।

सरकार व संविधान के बारे में

प्रश्न : भारतीय संविधान को विभिन्न संविधानों के अनुसार तैयार किया जा रहा है, आप उसका विरोध क्यों करते हैं?

उत्तर : इसलिए कि यदि हम संसार से दान ही लेते रहेंगे तो उसको फिर दे क्या सकेंगे? संविधान तो स्वयं विकसित होना चाहिए। उसका ऊपर से लादा जाना कदापि उचित नहीं है। सन् १९०९ के पश्चात् हम पर बराबर संविधान लादा जा रहा है। उन लादे हुए संविधानों की पद्धति के अनुसार ही बढ़ने की हमें क्या आवश्यकता है? विदेशों से हम केवल उतना हीं लें, जितना कि उचित एवं आवश्यक हो।

प्रश्न: यदि संविधान के विकास की राह देखी जाए तो बीच में कुछ काल ऐसा रहेगा, जब कोई व्यवस्था ही नहीं रहेगी?

उत्तर: नहीं। कुछ सर्वसाधारण सिद्धांत निश्चित कर लें। तब तक उन्हीं के अनुसार कार्य किया जाए।

प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हमारे संविधान में कतिपय संशोधन आवश्यक हैं?

उत्तर: मुझे दुःख इसी बात का है कि स्वतंत्र भारत के निर्माण के प्रारंभिक दिनों में ही सरकार अनुचित उदाहरण प्रस्तुत कर रही है। एक-एक कर लोगों की आस्थाओं और आदर के विषयों को कमजोर किया जा रहा है। संविधान को देश को संगठित और शक्तिशाली बनाने का आधार बनाया जा सकता था। अपना संविधान बहुत विस्तृत बनाया गया है, जो समझने में काफी कठिन है। फिर भी यदि सरकार ने उसका पर्याप्त आदर किया होता, तो वह आदरणीय हो सकता था। किंतु ऐसा होता हुआ दिखाई नहीं देता। उसमें हर वर्ष संशोधन किए जा रहे हैं। लोगों की ऐसी धारणा बन रही है कि संविधान के साथ मनचाहा खिलवाड़ किया जा सकता है। उसके प्रति पवित्रता के भाव का उल्लघंन किया जा रहा है।

१०-१५ वर्ष तक संविधान का प्रयोग ईमानदारी के साथ करना चाहिए था। तब हमें पता चलता कि उसकी क्रियाशीलता कितनी प्रभावी है और कहाँ-कहाँ सुधार आवश्यक हैं। असल में सरकार बिना गंभीर विचार के उसे ठोक-पीट कर सीधा करना चाहती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि सरकार अनुचित उदाहरण प्रस्तुत कर रही है।

प्रश्न: सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार, मैसूर (कर्नाटक) राज्य के कानून में संशोधन कर बारह वर्ष से अधिक आयु के बैलों की हत्या की अनुमति दी गई है। क्या यह अनिवार्य था?

उत्तर: विशेष रूप से उत्तरप्रदेश के कसाइयों के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिए हैं, जिससे उनके व्यवसाय विशेष का अधिकार सुरक्षित रह सके। मैसूर राज्य के लिए वह तर्क पूर्णतः अनुचित हैं। चूँकि वहाँ पर संपूर्ण गोहत्या पर पाबंदी बहुत पहले से है,

इसलिए लोगों के व्यवसाय प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं है।

व्यवसाय की स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा का सर्वोच्च न्यायालय का तर्क भी एक ढकोसला ही है। शराबबंदी के कारण कई लोगों को पूर्वजों से चलते आए व्यवसाय से वंचित होना पड़ा। महाराष्ट्र में रामोशी नाम की एक जाति है। वे लोग लूट-पाट व डकैती कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यह उनका परंपरागत व्यवसाय है। तो क्या सर्वोच्च न्यायालय उनके व्यवसाय के अधिकारों की रक्षा करेगा?

प्रश्न: आपके अनुसार संविधान का विकास कब तक संभव है?

उत्तर: विकास तो कभी बंद ही नहीं होता, परंतु यदि प्रयत्नपूर्वक कार्य किया गया तो ४-५ वर्ष में कार्य करने योग्य संविधान तैयार हो सकता है।

प्रश्न: हमारा पिछला विकास राजतंत्र तक हुआ था। बाद में वह बंद हो गया। अब कैसे विकास होगा?

उत्तर: हाँ, हमारा विकास बंद अवश्य हो गया, किंतु फिर भी हम उसके आगे चल सकते हैं। जैसे हमने राजतंत्र में भी देखा कि एक केंद्रीय सत्ता का सिद्धांत लाभदायक है। परंतु दुर्भाग्य से सन् १९३५ के संविधान के अनुसार आज हम संघराज्य-निर्माण कर प्रांतों को स्वतंत्र कर रहे हैं। पहले उसे तो छोड़ें।

प्रश्न: क्या आप संघराज्य के विरोध में हैं?

उत्तर: हाँ। संक्रमण काल में तो प्रांतीय स्वायत्तता के आधार पर विकेंद्रीकरण उचित नहीं हो सकता। संभव है कि कुछ वर्ष पश्चात् हम संघराज्य को अपना सकेंगे।

प्रश्न: तब तो केंद्र को अधिकाधिक अधिकार मिलने के कारण आप प्रसन्न होंगे?

उत्तर: नहीं। राज्य को बहुत अधिकार हैं। मैं चाहता हूँ कि पंचायतों की व्यवस्था हो।

प्रश्न: प्राचीनकाल में तो पंचायतें जाति के आधार पर थीं। अब वे कैसी होनी चाहिए?

उत्तर: अब गाँवों के आधार पर।

प्रश्न : क्या आप वयस्क मताधिकार के पक्ष में हैं?

उत्तर : वयस्क मताधिकार सभी देशों में नहीं है। केवल वहीं है, जहाँ शताब्दियों का अनुभव है और जहाँ अशिक्षित जनसमुदाय को मताधिकार प्रदान करना अनुचित प्रतीत नहीं होता। सर्वप्रथम जन समुदाय को शिक्षित करना आवश्यक है।

प्रश्न : क्या सभी धारणाओं में से प्रजातंत्र का घोषित उद्देश्य 'अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई' श्रेष्ठतम नहीं है?

उत्तर : जहाँ तक पश्चिमी देशों का प्रश्न है, समुचित है। हमारा आदर्श इससे ऊँचा है। सभी की भलाई हमारा आदर्श है। हमारा घोषित उद्देश्य तो 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः' का है।

प्रश्न : क्या प्रजातंत्र की धारणा भारतीय है?

उत्तर : हमारे यहाँ सभी प्रकार के प्रयोग हो चुके है। पश्चिमी देशों के उदय के पूर्व ही प्रजातंत्र का प्रयोग हो चुका है।

प्रश्न : सरकार के रूप में क्या प्रजातंत्र ही सर्वोत्कृष्ट है? आपका मत क्या है?

उत्तर : बर्नार्ड शॉ ने एक स्थान पर कहा है कि 'दयालु तानाशाह उपलब्ध न होने के कारण प्रजातंत्र का उदय हुआ है।' यदि सरकार चलानेवाले व्यक्ति ईमानदार और त्यागी वृत्ति के हों, तो हर प्रकार की सरकार अच्छी है। अंततः बात यहीं समाप्त होती है कि व्यक्ति गुणवान है अथवा नहीं।

प्रश्न : मान लीजिए कि ईमानदार तानाशाह शासनकर्ता के रूप में उभरता है, तब क्या बेईमानों के द्वारा चलाए जानेवाले प्रजातंत्र से वह अधिक पसंद किया जाएगा?

उत्तर : तानाशाही में यह कठिन है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी अच्छी सरकार की परंपरा चलती रहे। परिवर्तन के लिए कोई न कोई व्यवस्था होनी चाहिए। मानव की प्रकृति जिस प्रकार की हो, उस तरह की व्यवस्था आवश्यक है। प्रजातंत्र ऐसी ही एक व्यवस्था है।

प्रश्न : हिंदू-शास्त्रों में राजा के नियत कर्तव्य क्या बताए गए हैं?

उत्तर : धर्म के सिद्धांतों के द्वारा वह नियंत्रित होना चाहिए। चक्रवर्ती सम्राट बनने की अभिलाषा की पूर्ति के लिए उसे अश्वमेध यज्ञ

करना पड़ता था। वह सर्वस्व की आहुति देकर, तीन बार उच्चार करता था– 'अदण्डयोऽस्मि।' मैंने पृथ्वी का राज्य जीता है, कोई मुझे दंड नही दे सकता। प्रत्येक उच्चार के बाद राजपुरोहित धर्मदंड हाथ में लेकर उसके मस्तक पर उसका स्पर्श कर कहता था– 'धर्म दण्डयोऽसि।' धर्म तुझे दंड दे सकता है।

प्रश्न: हमारे देश में लोकतंत्र जितनी मात्रा में सफल होना चाहिए था, वह क्यों नहीं हुआ?

उत्तर: लोकतांत्रिक शासन चलानेवाले शासक वर्ग के लोग स्वयं लोकतांत्रिक प्रवृत्ति के नहीं हैं। उदाहरण के लिए- यदि व्यक्ति सदैव के लिए शासक बने रहने की इच्छा रखनेवाला हो, तो वह लोकतांत्रिक मानसिकता नहीं है। सच्चा लोकतांत्रिक प्रवृत्तिवाला व्यक्ति कहेगा, 'मैं दूसरों के लिए पद छोड़ूँगा'। किंतु हमारे देश में लोग मृत्यु तक पद पर बैठे रहना चाहते हैं।

प्रश्न: उचित मानसिक प्रवृत्ति किस प्रकार लाई जा सकती है?

उत्तर: लोगों को शिक्षित करके। राष्ट्र, लोग और राष्ट्रीय परंपरा की ओर देखने का उचित दृष्टिकोण निर्माण करना ही शिक्षा का सही अर्थ है।

प्रश्न: जहाँ तक हमारे देश का संबंध है, क्या 'गुटनिरपेक्षता और गतिशील उदासीनता' की नीति सही नहीं है?

उत्तर: जब तक हम दुर्बल बने रहेंगे, ये मनमोहक मुहावरे हवा में ही रहेंगे, जैसे कि अभी हैं। हमारी 'गतिशील उदासीनता' फुटबॉल की तरह की होगी, जो स्वयं उदासीन और अपक्ष है। किंतु इधर-उधर की लात खाने की शक्ति उसमें होगी।

प्रश्न:- कॉमनवेल्थ का सदस्य बने रहने में केवल भावनात्मक लगाव है। इस कारण हमारे पर कोई व्यावहारिक बंधन तो है नहीं। तब उसमें आपत्ति क्यों होनी चाहिए?

उत्तर: आप सही कह रहे हैं। गधे को अपने मालिक से यही भावनात्मक लगाव रहता है। उसे कहीं भी भटकने की, चरने की स्वतंत्रता होती है, पर मालिक के भार वहन के समय को छोड़कर। हम यह क्यों नहीं समझते कि मूर्खतापूर्वक अंग्रेजों को अपना शोषण उनके लाभ के लिए करने दे रहे हैं। अकारण यह विश्वास किए बैठे हैं

कि हमारा उनसे भावनात्मक लगाव है।

प्रश्न: ऐसा लगता है कि विदेश मंत्रालय पर पंडित नेहरू के कुटुंबियों का एकाधिकार है। वस्तुतः सभी पदाधिकारी या तो पं. नेहरू के व्यक्तिगत मित्र हैं या निकट संबंधी। क्या अधिक जिम्मेदारी के पदों पर प्रसिद्ध व्यक्तियों को उत्तरदायित्व सौंपने की दृष्टि से ऐसा किया गया है?

उत्तर: मेरे और तुम्हारे जैसे लोगों की व्यक्तिगत बातों के संबंध में यह कहा जा सकता है, किंतु सर्वाधिक उत्तरदायी सरकारी पदों के बारे में नहीं। इसके लिए संपूर्ण सरकारी प्रशासन सक्रिय होना चाहिए। इंग्लैंड की पद्धति ऐसी है कि जिसे विदेश में राजदूत बनाकर भेजा जाता है, उसके नियमित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। जिन देशों में उन्हें नियुक्त किया जाना है, उन्हें उन देशों की भाषा, संस्कृति, चाल-चलन आदि सभी बातों का गहरा अध्ययन करना पड़ता है। प्रशिक्षण के पश्चात् भी यह देखने के लिए उन पर निगरानी रखी जाती है कि विशेष कार्य के लिए वे कहाँ तक सक्षम हैं। अभिप्राय यह है कि विदेश में नियुक्ति के लिए विशेषज्ञ होना चाहिए।

हमारे देश में इस प्रकार की आवश्यक प्रक्रिया की अनदेखी की जाती है। हमारे नेतागण जब विदेशों में जाते हैं, तब वे विदेशी अनुवादकों पर ही निर्भर रहते हैं। आपको पता होगा कि जब चाउ-एन-लाई अपने यहाँ आए थे, तब स्वयं के देश के अनुवादक लाए थे। विदेशी अनुवादकों पर निर्भर रहना हमारी राजनीति के खोखलेपन को दर्शाता है।

इसका एक मजेदार प्रसंग है। वह प्रसंग हमारे एक प्राध्यापक के साथ विद्यार्थी दशा में घटित हुआ था। कालेज के कई छात्रों ने छात्रावास के भोजनालय का कई माह से बिल नहीं चुकाया था। भोजनालय का संचालक नागपुर में नया-नया आया था। वह बेचारा असमंजस में था कि क्या करना चाहिए। उन छात्रों ने छात्रावास में प्रवेश करते समय पालक के नाते नागपुर के बहुत प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम लिखवाए थे।

मजबूर होकर संचालक शिकायत लेकर वार्डन के समक्ष पहुँचा। वार्डन भोजनालय के संचालक की भाषा नहीं जानता था।

उसने एक छात्र को अनुवाद करने के लिए बुला लिया। तब वहाँ नाटक प्रारंभ हुआ। संचालक ने शिकायत की कि छात्र भोजनालय का बिल नहीं चुका रहे हैं, अतः वार्डन व्यक्तिशः हस्तक्षेप करें और इन छात्रों के जो स्थानीय पालक हैं, उनसे बिल चुकाने के लिए कहें। उसने पालकों के नाम भी गिनाए। अनुवाद करनेवाले छात्र ने इसका ठीक उल्टा अनुवाद कर वार्डन को बताया कि संचालक महोदय उनके कृतज्ञ हैं, क्योंकि अभी जिन प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम बताए हैं, उनकी दानशीलता के कारण भोजनालय अच्छी तरह चल रहा है। अतः संचालक महोदय का धन्यवाद उन तक पहुँचाया जाए। वार्डन ने आश्वासन देकर उस संचालक को विदा किया।

सांप्रदायिकता के बारे में

प्रश्नः क्या आप 'असांप्रदायिक राज्य' के उद्देश्य से शिक्षा देना चाहेंगे?

उत्तरः असांप्रदायिक राज्य का कोई अर्थ नहीं। मैंने कहा है कि जिस संस्कृति का मैं प्रचार करता हूँ, उसमें राज्य सदैव ही असांप्रदायिक रहा है। राज्य तो जीवन का एक ऐसा विभाग है जो कि धर्मेतर प्रश्नों के विषय में ही कार्य करता है। सांप्रदायिक राज्य तो पहले बौद्धों के समय में और फिर मुसलमानों के काल में हुआ। बाद के हिंदू राजाओं का राज्य भी असांप्रदायिक ही रहा है।

प्रश्नः पर वे असांप्रदायिक कहाँ थे? राजा तो हिंदू था, मुसलमान तो नौकर ही थे, चाहे फिर मंत्री ही क्यों न रहे हों?

उत्तरः नहीं। राज्य धार्मिक प्रश्नों पर हस्तक्षेप नहीं करता, तो वह असांप्रदायिक ही कहलाएगा। आज यदि भारत का प्रधानमंत्री कोई मुसलमान हो, तो भी राज्य तो असांप्रदायिक ही रहेगा। हाँ, यदि उसने संस्कृति में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया, तो जनतंत्र में उसको जनता हटा देगी, क्योंकि उसका कार्य जनता के प्रतिकूल होगा।

प्रश्नः सांप्रदायिक दंगों से संबंधित मामलों के लिए सरकार विशेष गुप्तचर कर्मचारी, विशेष जाँच कर्मचारी और विशेष न्यायालय स्थापित करने का विचार कर रही है?

उत्तर: यह स्थिति सरकार द्वारा अपने प्रशासन के प्रति अविश्वास की ही परिचायक है। प्रशासनिक सेवा के मनोबल के लिए ऐसी नीति घातक होगी।

प्रश्न: सरकार द्वारा सांप्रदायिक दंगों से संबंधित मुकदमों को कुछ समय उपरांत वापस ले लेने के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: स्पष्टतः इसका कारण यही है कि हिंदुओं के विरुद्ध उनके पास साक्ष्य नहीं होता और मुसलमानों के विरुद्ध कार्रवाई वे करना नहीं चाहते।

प्रश्न: आपके मतानुसार सरकार ने जबलपुर दंगों से संबंधित जाँच आयोग के प्रतिवेदन को प्रकाशित क्यों नहीं किया?

उत्तर: स्पष्टतः कारण यही था कि प्रतिवेदन मुसलमानों के विरुद्ध था। इन सभी सांप्रदायिक दंगों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रथम प्रत्यक्ष कार्रवाई करनेवाले मुसलमान ही होते हैं। सर्वदा वही प्रथम आक्रमण करते हैं। नागपुर में दंगे होने के दो दिन पूर्व से उन्होंने अपने परिवारों को सुरक्षित स्थानों पर भेजना आरंभ कर दिया था। शस्त्रास्त्रों का संग्रह वे काफी समय पूर्व से ही कर रहे थे। उनकी यही योजना थी। पुलिस को इन सभी बातों का ज्ञान था। लेकिन सत्ताधीश व्यक्तियों का आक्रोश उन्हें मोल न लेना पड़े, इसलिए पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की।

कुछ वर्ष पूर्व मैंने यह कहा था कि मुसलमान मस्जिदों में शस्त्रास्त्र एकत्र कर रहे हैं। इससे कुछ व्यक्ति उत्तेजित हो उठे और उन्होंने शोर मचाना आरंभ किया कि मेरे विरुद्ध भारतीय दंड संहिता के अनुभाग १५३ (अ) के अंतर्गत कार्रवाई की जाए। केंद्रीय गुप्तचर विभाग का एक अधिकारी मिला और मुझसे बोला कि उन मस्जिदों के संबंध में, जहाँ शस्त्रास्त्र एकत्र किए जा रहे थे, की सूचना आपने सरकार को क्यों नहीं दी? मैंने प्रत्युत्तर में कहा कि यदि मैं ऐसा करता तो उन मस्जिदों की तलाशी लेने के लिए पुलिस वहाँ पहुँचती, उसके पूर्व ही यह समाचार संबंधित मुसलमानों को मिल जाता। नागपुर से लगभग ४० मील दूर एक मस्जिद के संबंध में मैंने उसे सूचना दी। उक्त अधिकारी अविलंब उस मस्जिद की और भागा और उसे शस्त्रास्त्रों से लदे ट्रक वहाँ मिले। इसके

उपरांत अनुभाग १५३ (अ) के अंतर्गत मेरे विरुद्ध कार्रवाई करने की माँग नहीं की गई।

प्रश्न : आजादी आए २३ वर्ष हो गए, फिर भी भारत में सांप्रदायिक तनाव समाप्त नहीं हुआ। इस स्थिति के संबंध में आपका विश्लेषण क्या है?

उत्तर : भारत में हिंदू-मुस्लिम तनाव का प्रमुख कारण यह है कि अभी भारतीय मुसलमानों का भारतीय जन तथा संस्कृति के साथ पूरी तरह एकरूप होना बाकी है। भारतीय मुसलमान यह अनुभव करने और बोलने लगें कि यह अपना देश है तथा यहाँ के लोग अपने हैं, तो समस्या समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार का योग्य परिवर्तन उनकी मनोभूमिका में लाने की बात है।

प्रांत-रचना व भाषा

प्रश्न : भाषानुसार प्रांत-रचना के बारे में संघ की नीति क्या है?

उत्तर : इस बारे में मेरा दृष्टिकोण बिल्कुल सीधा-सादा है। शासन की सुविधा तथा खर्चे की बचत के लिए प्रांतों का विभाजन होना चाहिए। भाषानुसार प्रांत-रचना के द्वारा यदि इन दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति होती हो, तो उसके लिए मेरा तनिक भी विरोध न होगा। किंतु भाषा की भिन्नता भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों को एकत्रित करने अथवा एक साथ रहने के मार्ग में बाधक कदापि नहीं होनी चाहिए।

प्रश्न : आप हिंदी को राष्ट्रभाषा तो मानते हैं, किंतु आप कैसी हिंदी के पक्ष में है?

उत्तर : हिंदी संस्कृतनिष्ठ होने पर सभी को सहज व सरल होगी, किंतु अरबी-फारसी मिश्रित भाषा विंध्याचल के नीचे कोई नहीं समझेगा।

प्रश्न : क्या विज्ञान भी हिंदी में पढ़ाया जा सकता है?

उत्तर : हाँ, मुझे लोगों ने कहा है कि वे कोश तैयार कर सकते हैं।

प्रश्न : उसमें बहुत देर लग सकती है?

उत्तर : इसलिए मैं सुलभ हिंदी के पक्ष में हूँ।

प्रश्न : क्या आपके द्वारा चेन्नै में हिंदी का प्रचार हुआ है?

उत्तरः हाँ हमारे संपर्क में जो-जो आते हैं, हम उनको हिंदी पढ़ने आदि की व्यवस्था कर देते हैं और ऐसा करते हुए हमें अभी तक किसी भी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

प्रश्नः भाषा समस्या का हल क्या है?

उत्तरः मेरा स्पष्ट मत है कि उच्च शिक्षा और शोधकार्य के लिए एक सर्वसाधारण भाषा हो। संस्कृतोद्भव सर्वसाधारण तांत्रिक शब्दावली से इस दिशा में पहल की जाए। संस्कृत का शब्द-भंडार समृद्ध है और उसके बारे में एक पवित्र भावना भी है, इसलिए मेरे विचार से वह राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। कामचलाऊ संस्कृत की जानकारी प्राप्त करना बहुत ही सरल है। किसी एक समान भाषा के अभाव में विभिन्न प्रांतों के मध्य कोई बौद्धिक विचार-विनिमय संभवनीय नहीं होगा और वे एक-दूसरे के निकट नहीं आ पाएँगे। राष्ट्र की एकता के लिए संस्कृत नितांत आवश्यक है।

हिंदी भी इस उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है। हिंदी अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तुलना में पुरानी नहीं है। कुछ क्षेत्रीय भाषाएँ तो उससे अधिक समृद्ध हैं। तमिल २५०० वर्षों से सुसंस्कृत भाषा के रूप में प्रचलित थी। इसलिए अन्य भाषाओं से हिंदी को श्रेष्ठ कहना ठीक नहीं है। मैं मानता हूँ कि अपनी सभी भाषाएँ राष्ट्रीय हैं। वे हमारी राष्ट्रीय धरोहर हैं। हिंदी भी उन्हीं में से एक है, परंतु उसके बोलनेवालों की संख्या अधिक होने से उसे राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। यह दृष्टिकोण कि हिंदी ही एकमात्र राष्ट्र भाषा है और अन्य भाषाए प्रांतीय हैं, वास्तविकता के विपरीत और गलत है।

प्रश्नः कुछ समय पूर्व डा. सी.पी.रामास्वामी अय्यर ने दिल्ली की एक सार्वजनिक सभा में हिंदी पर व्यंग्य किया कि हिंदी में दो ही महान ग्रंथ हैं– एक तुलसी रामायण और दूसरा रेलवे समय सारिणी। उसी सभा में डा.पनिक्कर ने डा.रामास्वामी के उक्त कथन से सहमति व्यक्त की थी।

उत्तरः यह दृष्टिकोण भी उतना ही गलत है, जितना कि हिंदी के अति-उत्साहियों का। हिंदी के विषय में ज्ञान न रखने वाले ही हिंदी का इस प्रकार से उपहास कर सकते हैं। कुछ समय पूर्व

मराठी के एक प्रमुख नाटककार राम गणेश गडकरी ने अपने एक पात्र के मुख से कहलवाया था– 'टिन के डिब्बे में कुछ कंकड़ रखकर डिब्बे को हिलाने से जो ध्वनि निकलती है, वही दक्षिणी भाषाएँ हैं।' अब यह बात मजाक में ही कही गई थी। फिर भी मैं समझता हूँ कि इस तरह का विघटन पैदा करनेवाला मजाक देश के हित में नहीं है। यह अज्ञानमूलक उपहास बंद होना चाहिए।

प्रश्नः कुछ लोगों की धारणा है कि हिंदी की प्रगति से उनकी मातृभाषा मिट जाएगी?

उत्तरः मैं नहीं मानता। बाँग्ला, तमिल, मराठी और तेलगू अंग्रेजी राज में भी फली-फूलीं। हिंदी की प्रगति से तो ये भाषाएँ और भी अधिक फूलेंगी-फलेंगी और साथ ही साथ हिंदी को भी समृद्ध करेंगी। बंगालियों को बाँग्ला के हिंदीकरण से क्यों भयभीत होना चाहिए? पिछले २० वर्षों में बाँग्ला का उर्दूकरण हुआ है। प्रातः काल के लिए प्रयुक्त 'प्रभाते' के लिए 'फजरे' अधिक प्रयुक्त होता है। फिर भी मैंने अभी तक यह नहीं सुना कि किसी बंगाली ने इस पर आपत्ति की हो। फिर उन्हें हिंदी क्यों इतनी खटकती है?

यह बात नहीं कि विभिन्न भाषाओं में प्रचलित उर्दू अथवा अन्य भाषाओं के शब्दों के उपयोग के प्रति मुझे आपत्ति है। कुछ समय पूर्व स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने मराठी के शुद्धीकरण का सुझाव दिया था। उन्होंने प्रचलित उर्दू शब्दों के लिए संस्कृत समानार्थी शब्द दिए। उन्होंने कहा कि 'जरूरी' के स्थान पर 'आवश्यक' प्रयुक्त हो, किंतु यह बात कहते समय 'के स्थान पर' शब्दप्रयोग करने के बजाय 'ऐवजी' शब्द का प्रयोग किया, जो कि स्वयं उर्दू शब्द है। इसलिए मेरी आपत्ति स्वाभाविकतया रूढ़ हुए शब्दों के प्रति नहीं, अपितु सुनियोजित रूप में परकीय शब्दों को लादने के प्रति है।

कुछ समय पूर्व मदुरै में एक बैरिस्टर महोदय ने मुझसे कहा कि हिंदी से तमिल को क्षति पहुँचेगी। मैंने उनसे पूछा– कैसे? तो वे समझा नहीं सके। मैंने कहा– जिला न्यायालय में जब तमिल के प्रयोग की अनुमति है, तब फिर वे अंग्रेजी का प्रयोग क्यों करते है? तमिल क्यों नहीं? उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं था। मैंने

उनसे कहा- हिंदी तमिल की शत्रु नहीं है, अपितु अंग्रेजी दोनों भाषाओं की शत्रु है।

प्रश्नः क्या आप नहीं मानते कि चार भाषाएँ- मातृभाषा, हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी अधिक नहीं होतीं, वे विद्यार्थियों का आधा समय ले लेती हैं?

उत्तरः यह सच है, किंतु मेरे मत से इन चार भाषाओं में से अंग्रेजी को सबसे पहले हटाया जाए। वह अनिवार्य नहीं होनी चाहिए। शासन यदि दृढ़तापूर्वक निर्णय ले, उस पर दृढ़ रहते हुए उसे क्रियान्वित करे, तब वर्तमान संभ्रम धीरे-धीरे दूर होकर समाप्त हो जाएगा। वर्तमान अनिश्चितता अंग्रेजी को ही बल प्रदान कर रही है। आज तो पहले से भी कहीं अधिक संख्या में बच्चे कॉन्वेन्ट में जाने लगे हैं। कुछ लोग तो खुले रूप में कहने लगे हैं कि अंग्रेजी भारत की राष्ट्रभाषा हो। राजभाषा के मौलिक प्रश्न पर यदि सरकार ढुलमुल दृष्टिकोण अपनाएगी, तो जनता के विश्वास को धक्का लगेगा।

प्रश्नः आंध्र की मुल्की समस्या के संबंध में आपका क्या मत है?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय ने इन मुल्की-नियमों को वैध ठहराया है। ये नियम निजाम के समय से लागू हैं। फिर भी उन्हें चलन में कभी लाया नहीं गया। राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर निजाम अपने आदमियों को ही रखना चाहता था। इसलिए संपूर्ण देश से चुन-चुनकर कट्टर मुसलमानों को अपने राज्य में वह लाने लगा। राज्य के बाहर से इस प्रकार मुसलमानों को लाने की कार्रवाई के खिलाफ आंदोलन होता रहा। जब आंध्र बना तब इस प्रकार की शिकायत सामने आई कि समुद्र सीमावर्ती हिस्से के (आंध्र के) लोगों को नौकरियों में वरीयता दी जा रही है, उनका एकाधिकार स्थापित हो रहा है। और स्थानीय लोगों को नौकरियाँ नहीं दी जा रही हैं। ये कार्य और उनकी प्रतिक्रियाएँ- दोनों इस बात के सबूत हैं कि हमारी जनता संकुचित भावनाओं की शिकार हो रही है। वे संपूर्ण देश के नागरिक होने के स्थान पर स्वयं को क्षेत्रीय नागरिकता के विचारों से बाँध ले रहे हैं। यह बहुत ही भयंकर बात है। ऐसा यदि हुआ, तो कल प्रत्येक जिला अपनी-अपनी भूमि पर ही भूमिपुत्र होने का दावा करेगा। संपूर्ण देश का विचार

ओझल होगा। यह विघटन है और इसका प्रारंभ भाषावार प्रांत-रचना से हुआ है।

आंध्र में चालू वर्तमान आंदोलन ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रदेशों के निर्माण में केवल भाषा ही मूल आधार नहीं हो सकती। अन्य विषय भी महत्त्वपूर्ण हैं। महाराष्ट्र में भी विदर्भ आंदोलन चल रहा है। आमतौर पर लोगों के सोचने का ढंग यही बन गया है कि जब तक हिंसात्मक उपद्रव नहीं होते, तब तक सरकार माँगों को स्वीकार नहीं करनेवाली। लोग सोचने लगे हैं कि सरकार केवल हिंसा की ही भाषा समझती है। ऐसा कहा जाता है कि बिना 'वजन' के आवेदन-पत्र स्वीकार नहीं होता। आंदोलन का भी यही है। यहाँ वजन का अर्थ है हिंसा। इस हिंसा से नुकसान होता है हमारी राष्ट्रीय संपत्ति का।

प्रश्न: तो अब इसमें से रास्ता क्या है?

उत्तर: एक अच्छी सरकार ही उसका रास्ता है। यदि नेताओं को दृष्टि होती और वे व्यक्तिगत लोकप्रियता का विचार न करते हुए सही बात कह सकने का चारित्रिक बल धारण करते, तो हालत इस सीमा तक कदापि नहीं पहुँचती। परंतु तर्कपूर्ण बात सुनने के लिए कोई तैयार नहीं है। यहाँ तक कि आंदोलनकारी भी स्वीकार करते हैं कि हिंसात्मक तरीके ठीक नहीं हैं।

प्रश्न: तो पुलिस को क्या करना चाहिए?

उत्तर: निस्संदेह पुलिस को कानून और व्यवस्था की सुरक्षा करनी ही चाहिए। परंतु कई बार वे अपनी कार्य-संबंधी सीमा का अतिक्रमण करते हैं। घरों में घुसते हैं, यहाँ तक कि महिलाओं के साथ अभद्रता का व्यवहार करते हैं। इससे सामान्य जनता क्रोधित होती है। इसलिए पुलिस की ज्यादतियों को रोकना ही चाहिए। पुलिस की ज्यादतियों के जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं, वे पुलिस की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचानेवाले हैं। कुछ मामलों में यद्यपि पुलिस का शक्ति-प्रयोग आवश्यक हुआ करता है, परंतु मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि हमारे नेता आंदोलन और हिंसा होने तक कानों में तेल डाले क्यों बैठे रहते हैं? पहले माँगों को अनसुना करना और बाद में स्वीकार करना यही बताता है कि वे हिंसा के

सामने सिर झुकाते हैं। कर्नाटक और महाराष्ट्र– दोनों का यही कहना है। बेलगाँव समस्या अभी तक हल न होने का कारण क्या हिंसा न अपनाया जाना ही है? महाराष्ट्र में इस आशय के संपादकीय भी समाचार-पत्रों में छपे हैं।

प्रश्न: तब तो जनता को शिक्षित करना ही समस्या का हल है?

उत्तर: परंतु राजनीतिक नेता हैं कि जो समस्याएँ खड़ी करते हैं। वे आंदोलन भड़काते हैं। हड़ताल और बंद रोजमर्रा की बातें हो गई हैं। देश का नुकसान हो रहा है। इससे कुछ लाभ नहीं होता।

प्रश्न: राष्ट्रीय भाषा के विषय में आपका क्या मत है?

उत्तर: अन्य कुछ प्रश्नों की तरह ही यह प्रश्न भी अभी रुक सकता है। मुंबई के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में मैंने हाल ही में पढ़ा कि स्थानीय भाषा की तुलना में अधिक संख्या में विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम ले रहे हैं।

प्रश्न: यह बात केवल शहरी क्षेत्रों के लिए हो सकती है?

उत्तर: किंतु यह बात ग्रामीण क्षेत्रों में भी फैली है। अब दुर्भाग्य से भाषा को झगड़े का विषय बना दिया गया है। असम का ही मामला लें। विश्वविद्यालय ने एक प्रस्ताव पारित कर असमिया में ही शिक्षा देने का निर्णय लिया, तो वहाँ गड़बड़ी शुरू हो गई। वहाँ बंगाली लोग काफी संख्या में हैं। वे इसे अन्याय मानते हैं।

प्रश्न: अंग्रेजी यदि राष्ट्रीय भाषा का स्थान नहीं ले सकती, तो फिर अन्य कौन-सी भाषा है, जो राष्ट्रीय भाषा का स्थान ले सके?

उत्तर: हाल ही में मुझसे किसी ने कहा, 'क्रिकेट हमारा राष्ट्रीय खेल है, अंग्रेजी वेश हमारा राष्ट्रीय वेश है और अंग्रेजी हमारी राष्ट्रीय भाषा है।' तब तो केवल यही कहना शेष रह जाता है कि हमारा राष्ट्र इंग्लिश राष्ट्र है।

जो देश अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुए, उन सभी देशों ने अपने देश की भाषाओं को ग्रहण किया। ब्रह्मदेश ने ब्रह्मी और श्रीलंका ने सिंहली को स्वीकार किया। सत्ता हाथों में आते ही उन्होंने भाषा बदल दी। दक्षिण अफ्रीका में विभिन्न जातियों की १४-१६ भाषाएँ हैं तथा प्रत्येक समुदाय को अपनी भाषा पर गर्व

है। फिर भी सर्वसम्मति से उन्होंने 'स्वाहिली' भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में ग्रहण किया। उनका सब-कुछ ठीक चल रहा है। विज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में अपने देश की तुलना में अफ्रीका काफी अधिक पिछड़ा हुआ है। हमारे यहाँ अनेक समृद्ध भाषाएँ हैं, फिर भी हमने मूर्खतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। अंग्रेजी प्रशासन और आज के प्रशासन में अपनी जनता कौन-सा अंतर देख सकती है? कोई अंतर नहीं। केवल सत्ता धारण करनेवाले लोग बदल गए हैं। अभी भी अंग्रेजी प्रचलित है। तब ऐसी बात ही कौन-सी है, जो लोगों में राष्ट्रभक्ति की प्रखर भावना जगा सके?

प्रश्न: आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि अंग्रेजी से हिंदी में बदलकर देने मात्र से परिवर्तन आ जाएगा?

उत्तर: यह एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक परिवर्तन है।

प्रश्न: तमिलनाडु में हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही बाह्य भाषाएँ हैं। एक प्रतिशत लोग भी नहीं समझते। ऐसी स्थिति में बदल क्या कोई अर्थ रखता है?

उत्तर: सन् १९४७ के पूर्व हिंदी के प्रसार में तमिलनाडु अग्रणी था।

प्रश्न: किंतु आज?

उत्तर: मैं आपको अपना ही एक अनुभव बताता हूँ। एक बार वहाँ पर एक शिक्षावर्ग में हमारे कार्यकर्ताओं ने चाहा कि मैं अंग्रेजी में बोलूँ। मैंने उनसे कहा कि मैं अंग्रेजी में बोलूँ या हिंदी में, तमिल में अनुवाद तो किया जाएगा ही। इसलिए दोनों में से किसी भी भाषा में बोलना एक समान ही है। मैं हिंदी में सहजतापूर्वक बोल सकता हूँ। इसलिए मैं हिंदी में बोलना चाहूँगा। फिर भी पहले दिन मैं अंग्रेजी में बोला और दूसरे दिन हिंदी में। बाद में शिक्षार्थियों से पूछताछ की। मैंने पाया कि अंग्रेजी की अपेक्षा हिंदी अधिक लोगों की समझ में आई। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि बहुत से शब्द समान हैं। कठिनाई तब होती है, जब हिंदी में अरबी अथवा फारसी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। तब तो वह मेरी भी समझ के बाहर हो जाती है। उत्तर में मुस्लिम लीग के दबाव में आकर यह किया गया। उदाहरण के लिए, यदि कोई 'फर्माबर्दोश' कहे, तो हम समझ नहीं सकते। 'आज्ञाधारक' हम समझ लेते हैं।

फारसी की संकरता ने स्थिति को बिगाड़ा है।

प्रश्नः मैं समझता हूँ आप संपूर्ण देश के लिए हिंदी के पक्ष में हैं?

उत्तरः मैं किस बात के पक्ष में हूँ अथवा किस बात के पक्ष में नहीं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्राचीनकाल से अपने लोग, टूटी-फूटी हिंदी में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए तीर्थयात्राएँ करते आ रहे हैं। काशी में, प्रयाग में हम देखते हैं कि संपूर्ण देश से आनेवाले लोग टूटी-फूटी हिंदी में अपना काम चलाते हैं। हिंदी में कामकाज चलाने का हमने निर्णय लिया, उसके बहुत पूर्व ही सीमित प्रमाण में हिंदी चलती रही है। मेरा जन्म मराठीभाषी परिवार में हुआ, किंतु मैंने हिंदी सीखी और १२ वर्ष की आयु में तुलसी रामायण पढ़ी। गुजरात, पंजाब, बंगाल, असम आदि प्रदेशों में लोग हिंदी समझते हैं। दक्षिण के लोग यदि तमिल स्वीकार करें और चाहें कि वह अखिल भारतीय भाषा बने, तो मैं उसका समर्थन करूँगा।

प्रश्नः अब प्रत्येक प्रदेश अपनी क्षेत्रीय भाषा लागू कर रहा है। अतः अखिल भारतीय संपर्क की कठिनाई है। समान भाषा के अभाव में हम काम कैसे चला सकते हैं?

उत्तरः समान शब्दों के दृष्टिकोण से तो संस्कृत ही आदर्श होगी। हम किसी भी भाषा के शत्रु नहीं। वस्तुतः तकनीकी विषयों के लिए जर्मन और रूसी भाषा पढ़ी जाने लगी। अंग्रेजी का प्रसार तो द्वितीय महायुद्ध के बाद अमरीकी प्रभाव-विस्तार के परिणामस्वरूप हुआ। द्वितीय भाषा के रूप में हम किसी भी उपयोगी भाषा को स्वीकार कर सकते हैं।

प्रश्नः कुछ प्रदेश हिंदी से सहमत न हों, तो विकल्प क्या है?

उत्तरः अपने प्रदेश लड़ रहे हैं, इसलिए क्या हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी राज उसका विकल्प है?

नहीं, नहीं। अब स्थिति की दयनीयता यह है कि अंग्रेजी प्रमुख भाषा बन बैठी है और हमारी सब भाषाएँ गौण बनी हैं। इसे बदलना होगा। यदि हम समझते हैं कि हम स्वतंत्र राष्ट्र हैं, तो हमें अंग्रेजी के स्थान पर स्वभाषा लानी होगी। निस्संदेह हम किसी पर हिंदी थोपना नहीं चाहते। ऐसा दृष्टिकोण रखना ठीक नहीं होगा, क्योंकि वे सब हमारे अपने लोग हैं।

संस्कृत भाषा सर्वोत्तम है। परंतु इस संबंध में एक कठिनाई है। हाल ही में संस्कृत भाषा के एक विद्वान से मैंने प्रश्न किया कि संस्कृत भाषा होते हुए भी हमारे देशवासियों ने प्राकृत और हिंदी में बोलचाल प्रारंभ क्यों की? कालिदास-रचित नाटकों में भी छोटे पात्र प्राकृत बोलते हुए ही बताए गए हैं। कारण यह है कि उन दिनों में भी संस्कृत कठिन भाषा समझी जाती थी और वे कोई सरल माध्यम खोज रहे थे। इसलिए प्राकृत आई। काशी के एक पंडित ने प्राकृत से भी सरल संस्कृत का व्याकरण बनाया है। संस्कृत यदि सरल की जा सके, तो प्रयुक्त हो सकती है।

प्रश्नः अपने देश में अंग्रेजी का क्या भविष्य है?

उत्तरः अंग्रेजी को इस देश से जाना होगा। इसके दो प्रमुख कारण हैं। प्रथमतः अंग्रेजों के शासन में शासकों की भाषा सीखने के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। अब अंग्रेजों के जाने के साथ यह उत्साह खत्म हो रहा है। दूसरे अंग्रेजों के शासन में स्थिति यह थी कि अंग्रेजी के ज्ञान के बगैर शासकीय सेवाओं में प्रवेश असंभव था। अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव में विद्वत्ता का कोई मूल्य नहीं था। आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, तो सामाजिक जीवन में भी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। यह भय भी अब क्रमशः घटता जा रहा है। अंग्रेजी भाषा अंग्रेजी शासन का एक अंग था। अब किसी भी प्रकार की कृत्रिमता उसे जीवित नहीं रख सकती।

प्रश्नः यह भय व्यक्त किया जाता है कि अंग्रेजी को हटाने से शिक्षा का स्तर गिरेगा?

उत्तरः विश्वविद्यालयों में आज भी अंग्रेजी में ही शिक्षा दी जाती है, पर स्तर घटा हुआ है। इसका असली कारण यह है कि स्तर को उठाने का, सुधारने का कोई प्रयास गंभीर रीति से नहीं किया जाता। यही कारण है कि यहाँ से अच्छे-अच्छे लोग बाहर चले जा रहे हैं। हमारे यहाँ के विद्वानों की कीमत विदेशों में होती हैं। वे अपने देश में कम पारिश्रमिक मिलता है, इस कारण लौटना नहीं चाहते– यह बात नहीं है। अधिकतर इसलिए नहीं लौटते क्योंकि यहाँ स्वतंत्र रूप से अनुसंधान के लिए उन्हें प्रोत्साहन ही नहीं मिलता।

एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ— इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर गुडरिज जीवनशास्त्र में मत्स्य विषय के अच्छे अधिकारी पुरुष थे। उनके कार्य की विश्वभर में गूँज है। लंकाशायर सिरीज में उनका कार्य प्रकाशित होता रहा है। जब यह पता चला कि ऐसा प्रतिभावान पुरुष भारत में है, तो उन्हें इंग्लैंड बुलाया गया। वहाँ उन्हें साधारण डिमॉन्स्ट्रेटर का काम मिला। वेतन भी यहाँ से कम मिलता था। भारत में उन्हें अच्छा वेतन मिलता था, वे एक विभाग के प्राध्यापक थे। उन्हें पर्याप्त अधिकार थे, प्रतिष्ठा थी। पर इंग्लैंड में यह सब न रहने पर भी अनुसंधान करने की सुविधा कहीं अधिक अच्छी थी। यही वह चीज थी, जिसके लिए वे तरस रहे थे। फलतः उन्होंने उस कार्य को स्वीकार किया और वे इंग्लैंड चले गए।

स्थिति अब भी कोई अच्छी नहीं है, वह तो और खराब हो रही है। इसी कारण युवक विदेशों में जा रहे हैं, जहाँ उनकी प्रतिभा की सराहना अधिक होती है।

प्रश्नः नवीन भाषा-नीति के संबंध में आपका क्या मत है?

उत्तरः मुझे तो कोई नीति दिखाई नहीं देती। भाषा के संबंध में आज जो स्थिति है, उसे तो नीति से च्युत होने और अनिश्चय की अवस्था ही कहा जा सकता है। सरकार एक विचित्र घेरे में घूमती दिखाई दे रही है।

पिछले दिनों श्री पी.बी.गजेंद्र गडकर का एक लेख (टाइम्स ऑफ इंडिया, १७ अक्तूबर १९६७) पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ। अत्यधिक वेदना भी हुई, क्योंकि उसमें पृथकतावादी प्रवृत्तियों को यह कहकर मान्यता दी गई थी कि यदि विश्वविद्यालयों में अध्ययन और न्यायालयों में न्याय का माध्यम हिंदी को बनाया गया तो उसकी अत्यंत तीव्र प्रतिकूल प्रतिक्रिया होगी।

प्रश्नः क्या आप श्री त्रिगुण सेन के मातृभाषा के माध्यम से सभी प्रकार की शिक्षा देने के फार्मूले को उचित और तर्कपूर्ण समझते हैं?

उत्तरः अवश्य। यही सही तरीका है। उसे तो काफी समय पूर्व लागू कर देना चाहिए था। एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालयों में जाकर अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की संख्या कितनी है?

प्रश्नः ऐसी स्थिति में उन राज्यों के संबंध में कौन सी नीति अपनाई जाएगी, जिनकी अपनी भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम बनने योग्य समुन्नत नहीं है? उदाहरणार्थ– कश्मीर में कश्मीरी प्राथमिक शिक्षा का माध्यम भी नहीं है।

उत्तरः ऐसी परिस्थिति में वे राज्य हिंदी अथवा अन्य किसी भारतीय भाषा को माध्यम बनाने का निर्णय ले सकते हैं। दक्षिण भारत की चारों भाषाएँ पर्याप्त समुन्नत हैं और वे उच्च शिक्षा का माध्यम बन सकती हैं। यदि सभी भाषाओं में तकनीकी शब्दों के प्रयोग के लिए एक सर्वमान्य शब्दावली को अपना लिया जाए तो बहुत सारी कठिनाइयाँ स्वतः हल हो जाएँगी। यदि कुछ तकनीकी शब्दों के लिए पर्यायवाची स्वदेशी शब्द न मिलें, तो विदेशी शब्दों को अपना लेने में कोई हानि नहीं है।

प्रश्नः तमिल को 'बर्बर जंगली भाषा' क्यों कहते हैं?

उत्तरः इसका उत्तर तो वही दे सकते हैं। पर यदि वे अंग्रेजी को इसलिए श्रेष्ठ समझते हैं, क्योंकि उसकी लिपि में वर्णों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। तब तो सर्वोत्तम भाषा तमिल ही है, जिसमें कुल १८ वर्ण हैं।

प्रश्नः कुछ व्यक्तियों के मतानुसार संस्कृत को संपर्क भाषा बनाना चाहिए?

उत्तरः कठिनाई यह है कि कुछ व्यक्ति जिन्हें संस्कृत की श्रेष्ठता अकस्मात समझ में आने लगी है, अपने सुझाव के संबंध में गंभीर नहीं हैं। वे उक्त तर्क का प्रयोग विलंबकारी उपाय के रूप में कर रहे हैं। यदि वे सभी व्यक्ति जो हिंदी-विरोधी हैं, संस्कृत के संबंध में एकमत हों तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

प्रश्नः श्री अन्नादुरै के मतानुसार, हिंदी को अनिवार्य विषय बनाने की आवश्यकता इसलिए नहीं है, क्योंकि भविष्य में उसके उपयोग की अधिक आवश्यकता नहीं रहती?

उत्तरः यह सत्य हो सकता है। लेकिन इस विषय का एक दूसरा पहलू भी है। सभी भारतीयों के अंदर हिंदी का अल्प ज्ञान भ्रातृत्व की भावना को बढ़ाने और राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने में सहायक होगा।

प्रश्न: संभवतः विभिन्न भाषाओं में समान पाठ्यपुस्तकें भी राष्ट्रीय एकता को पुष्ट बनाने में सहायक होंगी?

उत्तर: अवश्य। लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य पुस्तकों के अंदर की विषय-सामग्री है। इस दृष्टि से हमारी इतिहास की पुस्तकें विशेष दोषपूर्ण हैं। इन पुस्तकों के अनुसार देश का इतिहास पाटलिपुत्र और दिल्ली तक ही सीमित है। मानो देश के अन्य भाग पूरी तरह महत्त्वहीन हैं। हमारे स्नातकों में से कितनों को चोल, पांड्य और पुलकेशी वंशों की महानता का ज्ञान है? एक विजयनगर को छोड़कर दक्षिण भारत का इतिहास कहाँ पढ़ाया जाता है? यही स्थिति पूर्वी भारत की है। खारवेल उत्कल का महान शासक था, जिसका साम्राज्य समुद्र पार हिंदेशिया तक विस्तृत था, लेकिन कितने भारतीय विद्वानों ने उसका नाम सुना है? यदि आप दक्षिण जाएँ और वहाँ स्थित विशाल मंदिरों के दर्शन करें, तभी यह समझ में आ सकेगा कि इन भव्य मंदिरों के पीछे कितनी अतुल धनराशि और श्रेष्ठ संस्कृति रही होगी। लेकिन इन सभी तथ्यों को कितने लोग जानते हैं?

प्रश्न: हिंदी को लागू करने के विरुद्ध एक आपत्ति यह है कि ऐसा करने पर हिंदीभाषी लोगों की तुलना में अहिंदीभाषी हानि में रहेंगे?

उत्तर: न्यूनाधिक रूप में यह आपत्ति भ्रममूलक है। सत्य तो यह है कि जिस खड़ी बोली को 'हिंदी' के रूप में मान्यता दी गई है, वह दिल्ली व मेरठ क्षेत्र के कुछ लाख लोगों की मातृभाषा है। अन्य हिंदी भाषा-भाषी लोग अपने घरों में खड़ी बोली का प्रयोग नहीं करते। वे पहाड़ी से लेकर राजस्थानी, अवधी, मागधी, ब्रज और मैथिली का प्रयोग करते हैं। उन्हें भी बाँग्ला, मराठी, तेलगु व मलयालम भाषी भारतीय की तरह हिंदी सीखनी होगी।

प्रश्न: प्रस्तावित सरकारी भाषा विधेयक के संबंध में आपका क्या विचार है? क्या इसके द्वारा प्रत्येक राज्य को अंग्रेजी से हिंदी अपनाने में निषेधाधिकार नहीं मिल जाएगा?

उत्तर: इस प्रकार तो अंततोगत्वा प्रत्येक नागरिक निषेधाधिकार प्राप्त कर लेगा। इसे तो बहुसंख्यक वर्ग पर कुछ मुट्ठीभर लोगों की निरंकुशता ही कहा जा सकता है। मुझे आश्चर्य होता है कि

भारतीय व्यापारियों द्वारा नियंत्रित अंग्रेजी के समाचार-पत्र, भारतीय भाषाओं के इतने अधिक विरुद्ध हैं।

अन्यान्य वाद

प्रश्नः विभिन्न आधुनिक विचारधाराओं के मूल में आप कोई दोष देखते हैं क्या?

उत्तरः हाँ। उन सबका उद्भव भौतिकवाद में है और भौतिकवाद के पास इस मौलिक प्रश्न का कोई उत्तर नहीं कि आखिर क्यों व्यक्ति विश्व-एकता और मानव-मात्र के हित के लिए प्रेरित होता है। व्यक्ति को विरोध में खड़ा देखकर दुःख की अनुभूति क्यों होती है? हमें एक-दूसरे से प्रेम क्यों करना चाहिए? भौतिकवाद के दृष्टिकोण से हम केवल एक-दूसरे से पृथक जड़ वस्तु हैं। हममें आपस में स्नेह के कोई बंधन नहीं हैं। मानवता के प्रति समर्पित भावना के अभाव में व्यक्ति स्वार्थीपन के विचारों से ऊपर उठकर स्वयं को संयमित करने का कोई प्रयास नहीं करता।

प्रश्नः व्यावहारिक स्तर पर व्यक्ति के कर्मों पर इसका क्या प्रभाव होगा?

उत्तरः त्याग और सेवावृत्ति के अभाव में स्वार्थी भावना के कारण उत्पन्न संघर्ष रोकने के लिए व्यक्ति और समाज के बीच किसी समझौते के सिद्धांत को व्यावहारिक धरातल पर विकसित किया गया। इसी मूल संघर्ष-भावना का प्रकटीकरण एक ओर पूँजीवाद और दूसरी ओर साम्यवाद के रूप में हुआ है। इसलिए एक में व्यक्ति समाज का और दूसरे में समाज व्यक्ति का दुश्मन घोषित किया गया।

प्रश्नः कम्युनिस्टों की व्यावहारिक असफलताओं के बावजूद उन्होंने मानव समाज के लिए एक दिव्य प्रेरणादायी उद्देश्य तो रखा है— राज्य संस्था का संपूर्ण विलोप?

उत्तरः कार्लमार्क्स से हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने 'राजाविहीन राज्य' की कल्पना की थी। राजा नहीं, दंड नहीं, न कोई अपराधी। सबका संरक्षण धर्म के पालन से होगा। राज्यविहीन समाज के विचार का आधार मार्क्स नहीं दे सका। वहाँ हमारे ऋषियों ने उसका पूर्ण स्पष्टीकरण दिया है और उसकी प्राप्ति के लिए व्यावहारिक मार्ग भी बताया।

प्रश्नः- कम्युनिस्टों का दावा है कि उनका सिद्धांत मानव-विकास के वैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित हैं। क्या यह उनके पक्ष में सशक्त तर्क नहीं है?

उत्तर: वस्तुतः मानव के विकास-क्रम की पद्धति के वैज्ञानिक परीक्षण से उनका दावा असत्य प्रमाणित होता है। कम्युनिस्ट सिद्धांत भौतिकवाद पर पूर्णतः निर्भर है, जो मानव के विकास-क्रम के कनिष्ठ स्तर पर स्थित है। विकास वस्तुतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होता है। मानव प्रारंभिक अवस्था में स्थूल भौतिक पदार्थों में ही आसक्त रहता था। वह अपनी संपूर्ण शक्ति और समय भौतिक सुखों की प्राप्ति और शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति में ही व्यतीत करता था। वह जैसे-जैसे उच्च स्तर की ओर अग्रसर होकर अधिक विकसित होता है, उसकी मानसिक प्यास बढ़ती है और वह भावनात्मक सुखों की तृप्ति में रत होता है। तब वह संस्कृति के पथ पर आगे बढ़ता है, इसका ही दूसरा नाम मानव-विकास है। उससे रसानुभूति की प्रवृत्ति वेगवान होती है, तब वह बहुविध कलाओं का निर्माण करता है और कलाओं के बहुविध रूपों में सुप्त सौंदर्य को निखारता है। तब उसे बौद्धिक सुख की अनुभूति के कारण ज्ञान-गंगा में उतरकर गहराई में डुबकी लगाने में अत्यानंद की प्राप्ति होती है। विज्ञान और दर्शनशास्त्र उसके बौद्धिक सामर्थ्य को अन्वेषण के लिए भूमि प्रस्तुत करते हैं। इसपर भी वह स्वयं को असंतुष्ट ही पाता है और आगे बढ़कर बुद्धि-क्षेत्र को लाँघते हुए आत्मा के गूढ़ तथ्यों का परीक्षण करने का प्रयास करता है। तब वह ब्रह्म जगत् में प्रवेश करता है। अंत में वह सच्चिदानंद परमेश्वर की प्राप्ति करता है। मानव-विकास की प्रकृति इस प्रकार की है।

स्थूल से सूक्ष्म और जड़ से चेतन तक की यात्रा का दावा भौतिक दुराग्रह और वैज्ञानिक आधार के कम्युनिस्ट कैसे कर सकते हैं? वस्तुतः इस दृष्टिकोण से देखें तो वे प्रतिक्रियावादी, प्रगति के विरोधक और अवनति की ओर चलनेवाले हैं।

प्रश्नः क्या आपको नहीं लगता कि साम्यवाद में जीवन के आधारभूत मूल्य हैं?

उत्तर: नहीं। साम्यवाद के उद्गाता के द्वारा की गई भविष्यवाणी जिस दिन असत्य साबित हुई, उसका उसी दिन पर्दाफाश हो गया। मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार साम्यवादी क्रांति औद्योगिक दृष्टि से अधिक प्रगत इंग्लैंड, जर्मनी और अमरीका में पहले होनी चाहिए थी। किंतु वह हुई रूस जैसे पिछड़े देश में। इससे सिद्ध होता है कि उसके सिद्धांत का संपूर्ण आधार ही गलत था। अब इतने वर्ष व्यतीत होने के बाद भी इंग्लैंड, अमरीका में क्रांति की संभावना के कोई संकेत नहीं मिलते।

प्रश्न: पर उनके पास समानता का मूलभूत सिद्धांत तो है?

उत्तर: लेकिन उसका भौतिकवाद का आधार गलत है। उनकी मूल धारणा कि मानव शारीरिक इच्छाओं की एक गठरी मात्र है, सत्य पर आधारित नहीं है। मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि यदि मैं एक जड़ वस्तु मात्र हूँ, तब दूसरों के साथ सहयोग की भावना मन में क्यों पालूँ? सुखपूर्वक जीने के लिए व्यक्ति में भौतिक इच्छाओं के साथ मन, बुद्धि, हृदय से संबंध रखने वाली इच्छाएँ भी रहती हैं। इनका भी समान रूप से महत्त्व है। मानव जीवन की जटिलताओं का यदि कोई विचार-पद्धति पर्याप्त रूप से विचार नहीं करती, तो उसका कोई मूल्य नहीं होता। सब जीव एक ही शाश्वत सत्य के अंग हैं, इसकी अनुभूति ही वास्तविक समानता का आधार बन सकती है।

प्रश्न: कम्युनिस्टों ने समस्याओं के निश्चित हल दिए हैं और व्यावहारिक स्तर पर उन्हें सफलतापूर्वक अपनाया भी है?

उत्तर: नहीं। उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता प्रदान की और संपत्ति पर व्यक्ति के स्वामित्व को स्वीकार किया है। रूस में क्रांति के पश्चात् पहले कुछ वर्षों में उत्पादन-क्षमता चोटी पर थी, परंतु अब वहाँ उत्पादन-क्षमता तेजी से घट रही है। विशाल मात्रा में बंधुआ मजदूरी होते हुए भी क्षमता निरंतर घट रही है।

प्रश्न: क्या आप साम्यवाद के कतिपय सिद्धांतों का या किन्हीं अन्य वादों के सिद्धांतों का संघकार्य में समावेश कर रहे हैं?

उत्तर: दूसरे सिद्धांतों में मुझे रुचि नहीं है। यदि हमारे आदर्शों में किसी

वाद के सिद्धांतों अथवा उसके किसी अंश का अंतर्भाव है, तो भी मुझे चिंता करने की आवश्यकता नहीं।

प्रश्न: किसी वाद में विश्वास रखते हैं?

उत्तर: मुझे नहीं लगता कि मानव-बुद्धि का इतना दीवाला निकल चुका है कि उसे किसी वाद के घेरे में बंद कर लिया जाए।

प्रश्न: क्या आप किसी नए सिद्धांत का प्रचार करना चाहते हैं?

उत्तर: मेरा ऐसा मानना है कि सभी वादों का केवल सामयिक महत्त्व होता है। जो वाद आज प्रतिष्ठित हैं, कल इनका पता भी नहीं होगा। पता नहीं, आज तक कितने सिद्धांत और वाद उभरे हैं और भविष्य में भी कितने ही प्रकट होंगे। किंतु उनमें अंतर्निहित जीवनधारा निरंतर बहती आई है। ऐसा माननेवाला मैं अकेला नहीं हूँ कि इस या उस विचारधारा का अवलंबन आवश्यक है।

प्रश्न: क्या आर्थिक असमानता के रहते हमारे देश में साम्यवाद का अधिक प्रचार होना अपरिहार्य नहीं है?

उत्तर: जिस वर्ग-संघर्ष और घृणा के सहारे साम्यवादी पैर फैलाते हैं, उनका वास्तविक कारण आर्थिक नहीं है। हमारे लोगों ने श्रम की प्रतिष्ठा का आदर्श प्रस्थापित नहीं किया। रोजाना तीन-चार रुपए कमानेवाले रिक्शा चालक को 'रिक्शावाला' कहकर पुकारा जाता है, पर ६० रुपए प्रतिमाह वेतन प्राप्त करने वाले क्लर्क को बाबूजी कह कर आदर दिया जाता है। दृष्टिकोण के इस अंतर के कारण घृणा उत्पन्न होती है। रास्ता यही है कि स्नातकों के द्वारा ऐसे उद्योग स्वीकारे जाएँ, जिससे श्रम को प्रतिष्ठा प्राप्त हो। कर्म-सिद्धांत में श्रेष्ठता-कनिष्ठता का भाव नहीं होता। हर कार्य समाज के रूप में परमेश्वर की पूजा ही होता है। भगवद्गीता कहती है— स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

शोषणकर्ता और शोषित का वर्गीकरण करना भी गलत है। कभी मालिक तो कभी मजदूर हड़ताल पर चले जाते हैं। मजदूरों की माँगें और मालिकों का घाटा— दोनों उपभोक्ता को ही झेलना पड़ता है। वे ही वस्तुतः शोषित हैं।

प्रश्न: तुलनात्मक दृष्टि से साम्यवाद की अधिक लोकप्रियता का कारण आपको क्या लगता है?

उत्तर: सामान्य व्यक्ति शक्ति से डरता है। इसलिए वह शक्ति की पूजा करता है। बड़े प्रमाण में साम्यवाद के प्रति आकर्षण का कारण उसके पीछे शक्तिशाली रूस का खड़ा होना है।

प्रश्न: इस कारण तो अमरीका अधिक लोकप्रिय होना चाहिए?

उत्तर: निःसंशय अमरीका रूस से अधिक शक्तिशाली है। परंतु लोकतांत्रिक प्रणाली के कारण अमरीका कम डरावना है। उसकी कृपा प्राप्ति के लिए उसकी पूजा की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न: दूसरा अन्य कोई कारण नहीं हो सकता?

उत्तर: साम्यवाद की जितनी भी लोकप्रियता है, उसका ठोस कारण एक और भी है। मनुष्य केवल रोटी के लिए ही जीवित नहीं है। उसे श्रद्धा की भी आवश्यकता है। उसे श्रद्धा चाहिए– जीवन के लिए और मृत्यु के लिए भी। श्रद्धाविहीनता के कारण जीवन में दिशा और अर्थ ही शेष नहीं रहता। व्यक्ति के जीवन में भटकाव प्रारंभ हो जाता है। वह खोयापन अनुभव करने लगता है। यह मनुष्य के लिए अति कठिन व असंभव स्थिति है। विज्ञान की प्रगति के पूर्व ईसाइयत ने यूरोप के लोगों को आवश्यक श्रद्धा उपलब्ध कराई थी। किंतु विज्ञान ने ईसाइयत की आस्थाओं पर प्रहार किया। आकाश, काल, जीवन, ब्रह्मांड-संबंधी ईसाई धारणाओं को उसने चकनाचूर कर डाला। यूरोप ने न केवल श्रद्धा का एक स्थान खोया, अपितु दूसरा प्राप्त कर लिया। धर्म में विश्वास क्षीण हुआ और विज्ञान पर श्रद्धा बढ़ गई। एक प्रकार से विज्ञान ही नया धर्म बन गया। मनुष्य विज्ञान को परमेश्वर के समान त्रिकालदर्शी और सर्वशक्तिमान मानकर श्रद्धा करने लगा।

यद्यपि विज्ञान के अन्वेषण पुराने तथ्यों का खंडन करने लगे। डार्विन के प्रजातियों के विकासक्रम के सिद्धांत को जोरदार तरीके से नकारा गया। वर्तमान के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आईन्स्टाइन ने भी कबूल किया कि विज्ञान ब्रह्मांड की गूढ़ समस्याओं का संतोषजनक उत्तर देने में अक्षम है। विक्टोरिया युग में विज्ञान को त्रिकालदर्शी माना जाता था। किंतु शीघ्र ही उसके ध्यान में आया कि उन्हें विशाल ज्ञान महासागर के किनारे पड़े कुछ कंकड़-पत्थर ही प्राप्त हुए हैं। खोज और अनुसंधान के लिए अभी भी बहुत

बड़ा क्षेत्र है। इस कारण पश्चिम के मानव की आस्थाएँ धराशायी हुईं। उसने स्वतः को पतवारविहीन, दिशाहीन नाविक के समान महासागर में पड़ा पाया। पुरानी आस्थाएँ टूटीं और नई जन्म लेने लगीं। उस उत्पन्न हुए शून्य को भरने के लिए कुछ दिखावटी आस्थाएँ प्रकट हुईं, जिनमें से एक है फासीवाद और दूसरी है साम्यवाद।

साम्यवाद, ईसाइयत के समानता आदि मान्यताओं का अधकचरा विकृत रूपांतरण ही है। प्रसिद्ध विचारक टायनबी के अनुसार साम्यवाद वस्तुतः ईसाई नास्तिकवाद है। साम्यवाद इस्लाम के समान ही है, जिसमें पैंगबर है, पवित्र पुस्तक है और जेहाद है। व्यक्ति को आस्था अवश्य चाहिए। किंतु साम्यवाद एक तुच्छ आस्था है।

प्रश्न : कई लोग गंभीरता से विचार कर रहे हैं कि भूदान आंदोलन, साम्यवादी लोगों के भीतर की हवा निकाल देगा?

उत्तर : मेरा दृष्टिकोण इसके एकदम विपरीत है। आंदोलनकर्ताओं का नारा है– 'जमीन का मालिक हल चलानेवाला।' लोगों को यह कह कर डराया जा रहा है कि यदि वे स्वयं जमीन नहीं देंगे, तो साम्यवादी बलपूर्वक आपका सर्वस्व ले लेंगे। इससे लोग मानने लगेंगे कि साम्यवाद सही है और अवश्यंभावी है। यह एक प्रकार से साम्यवाद को प्रतिष्ठा देना ही है। मुझे ऐसा लगता है कि भूदान आंदोलन एक प्रकार से साम्यवाद के लिए मार्ग सुगम बनाने का कार्य कर रहा है। केवल साम्यवाद का विरोध करने की दृष्टि से काम करना संकट को आमंत्रण देना है।

प्रश्न : तब इससे बाहर निकलने का समुचित रास्ता क्या है?

उत्तर : साम्यवाद के बढ़ने का प्रमुख कारण राष्ट्रवाद का अभाव है। दरिद्रता केवल एक कारण हो सकता है। गरीबी होते हुए भी राष्ट्रवाद की प्रखर भावना से साम्यवाद के प्रति आकर्षण समाप्तप्रायः हो सकता है। गरीबी हटाने के संपूर्ण प्रयत्न तो होने ही चाहिए। परंतु राष्ट्रभावना-जागृति पर संपूर्ण लक्ष्य केंद्रित होना चाहिए।

इंग्लैंड का उदाहरण लें। उनके जीवन का प्रमुख केंद्र देशभक्ति ही है। उसके सहारे वे सभी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों

पर विजय प्राप्त करने में सक्षम हैं। दूसरे महायुद्ध के तुरंत पश्चात् एक सज्जन इंग्लैंड से आए थे। एक भोज में जब उन्होंने चाय में शक्कर की अधिक मात्रा देखी, तो आश्चर्य से कहा– 'आप जितनी शक्कर यहाँ चाय में लेते हैं, इंग्लैंड में एक सप्ताह के लिए राशन में दी जाती है। उसपर भी वे खुशी से रहते हैं।' ऐसी भावना के कारण ही राष्ट्र जीवित रहते हैं और शक्तिशाली बनकर अराष्ट्रीय तत्त्वों से मुक्त रहते हैं।

प्रश्न: पश्चिमी देशों की धारणा है कि साम्यवाद का विरोध केवल ईसाइयत और आर्थिक संपन्नता से ही संभव हो सकता है। इसलिए भारत को साम्यवाद से बचाना हो तो जीर्ण-शीर्ण हिंदू धर्म को समाप्त हो जाना चाहिए?

उत्तर: पश्चिमी देश स्वतः की व्याधियों से अनभिज्ञ हैं और हमारी व्याधियों से तो और भी। इस समस्या की मूल प्रकृति को वे समझते नहीं हैं। हिंदुत्व साम्यवाद को टक्कर नहीं दे सकता– यह कहना निरर्थक है। भारत में आज साम्यवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है तो इसका कारण भारत सरकार है, जो उसे मान्यता देकर आदरणीय बना रही है। साम्यवाद के कार्यक्रम, विचार-प्रणाली और अनर्गल बातों को स्वीकार किया जा रहा है। कांग्रेस के विचार से वह साम्यवादी आंदोलन की हवा निकालकर उसे निष्प्रभ कर रही है। कांग्रेस ने गलत रास्ता चुना है। केरल प्रांत में साम्यवादियों ने इसी कारण सफलता पाई है। हम छः वर्ष पूर्व इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। साम्यवादियों के लिए मार्ग तो कांग्रेस बना रही है।

साम्यवाद की लोकप्रियता के लिए मैं कांग्रेस को ही जिम्मेदार मानता हूँ। चरित्र-निर्माण, स्वास्थ्य, संस्कृति, नैतिक मूल्यों के स्थान पर उसने आर्थिक विकास के प्रचार पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया। लोगों में असंतोष पनपता गया और साम्यवाद के लिए आधार तैयार हो गया।

जो सोचते हैं कि केवल ईसा ही जंगली हिंदुस्तान का उद्धार कर सकता है, उन्हें गंभीरता से इस बात का विचार करना चाहिए कि रूस जैसे कट्टर ईसाई देश ने ईसा को अस्वीकार क्यों किया?

उन्होंने ईसाइयत को अपने देश से क्यों उखाड़ फेंका? यहाँ तक कि मार्क्स ने भी नहीं सोचा था कि रूस में क्रांति हो सकती है।

प्रश्न: साम्यवाद को रोकने की अमरीकी नीति का क्या होगा?

उत्तर: उनका डॉलर दृष्टिकोण गलत सिद्ध होगा। हम खरीदे जाने वाली वस्तु नहीं हैं। साम्यवाद को स्वीकार करना अथवा नकारना इस बात पर निर्भर नहीं है कि विदेशी सहायता हमें मिलती है अथवा नहीं।

पंडित नेहरू के इस विचार को मान्यता देकर कि साम्यवाद से बचाव का एकमात्र रास्ता आर्थिक विकास है, अमरीका एक तरह से साम्यवादी खेल ही खेल रहा है। इस प्रकार का दृष्टिकोण लोगों के मन में उच्चतर जीवनस्तर से रहने की इच्छा उत्पन्न करता है, जबकि अल्प समय में उसकी पूर्ति असंभव है। अपेक्षा और उनकी पूर्ति के बीच की दरार देश में अव्यवस्था एवं विप्लव की स्थिति निर्मित कर संकट उपस्थित कर सकती है और तब साम्यवाद आ सकता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि दरिद्रता के कारण क्रांतियाँ नहीं होती, बल्कि दरिद्रता के एहसास से होती हैं। यह देखा गया है कि सन् १७८९ में फ्रांसीसी लोग सर्वाधिक संपन्न थे, किंतु उसी वर्ष उन्होंने अपने देश में क्रांति कर डाली। क्रांति इसलिए नहीं की कि वे दरिद्र थे, बल्कि इसलिए की, क्योंकि उन्हें यह अनुभव हो रहा था कि वे अपेक्षाकृत शीघ्रता से आर्थिक संपन्न नहीं हो रहे हैं। उसी प्रकार हमारे यहाँ भी तथाकथित उच्चतर जीवनस्तर पर आवश्यकता से अधिक बल दिए जाने का नासमझी का काम कांग्रेस और अमरीका द्वारा किया जा रहा है।

प्रश्न: साम्यवादी किस कारण आगे बढ़ रहे हैं?

उत्तर: एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति ने लिखा है कि जहाँ कहीं भी चरित्रहीन व्यक्ति के हाथ में सत्ता आती है, वहाँ साम्यवादी बढ़ते दिखाई देते हैं, क्योंकि चरित्रहीनता से ही स्वार्थीपन में वृद्धि होती है और व्यक्ति देश और उसके हितों को भुला बैठता है। फिर वह सरलता से साम्यवादियों के छल का शिकार बन जाता है।

प्रश्न: क्या आपके पास साम्यवादी आर्थिक रचना के स्थान पर कोई पर्यायी योजना है?

उत्तर: भोजन, कपड़ा, मकान की मूलभूत सुविधाएँ हर किसी को मिलनी ही चाहिए— इसका अनावश्यक उच्चार नहीं करना चाहिए और न ही रूस की तरह राज्य को संपूर्ण अधिकार अपने हाथ में रखना चाहिए। मेरा सुझाव है कि सहकारिता के आधार पर उद्यमशीलता बढ़ाकर उत्पादन को गति देनी चाहिए। उत्पादनवृद्धि के लिए हम पश्चिमी पद्धतियाँ अपनाएँ, किंतु अपनी सामाजिक रचना की पवित्रता की भावना का पोषण करते हुए।

प्रश्न: यह कैसे संभव है, जबकि हमारे आर्थिक जीवन में कल-कारखानों ने महत्त्व का स्थान ले लिया है?

उत्तर: हमारी समाज रचना में सहकारिता की भावना प्रमुख मार्गदर्शी तत्त्व है। हर आर्थिक उद्यम के लाभ में सबकी उचित हिस्सेदारी होनी चाहिए। क्योंकि कोई रुपए के रूप में अपनी पूँजी का विनियोग करेगा, कोई बुद्धि के, तो कोई शारीरिक श्रम के रूप में। आपस में संघर्ष केवल तभी उत्पन्न होता है, जब लाभ में उचित हिस्सेदारी नहीं मिलती। अस्वास्थ्यकर स्पर्धा एवं प्रतियोगिता को हमारी धर्म-भावना में कोई स्थान नहीं है। सहकारिता की भावना उसे दूर रखने में सहायक होती है।

प्रश्न: आपका साम्यवाद को क्या उत्तर है?

उत्तर: यह तो हर एक मानता है कि सबको खाना, कपड़ा आदि प्राथमिक सुविधाएँ होनी चाहिए। अभी यहाँ पर पूँजीवाद ने अन्य देशों की भाँति जड़ नहीं जमाई है। सरकारी उत्पादन के प्रयत्नों द्वारा उस जड़ को नहीं जमने देना चाहिए, किंतु राज्य का सर्वाधिकार उचित नहीं है।

प्रश्न: परंतु रूस ने तो इसी प्रकार राज्य के सर्वाधिकार द्वारा ही प्रगति की है?

उत्तर: इसका अर्थ यह तो नहीं कि प्रगति का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। आज तो चारों ओर दरिद्रता है, सहकार्य के द्वारा उसे दूर किया जाना चाहिए।

प्रश्न: इसका अर्थ है कि आप पूर्ण-राज्याधिकार और संपूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच में हैं?

उत्तर: ठीक है।

प्रश्न : व्यक्तिगत संपत्ति के विषय में आपका क्या विचार है?

उत्तर : रूस भी पूर्ण रीति से व्यक्तिगत संपत्ति का नाश नहीं कर सका। अभी ऐसा करना मानव को संभव नहीं।

प्रश्न : क्या आप इस मत के हैं कि उत्पादन आदि पर राज्य का अधिकार हो?

उत्तर : मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। यह तो राज्य का पूँजीवाद होगा। जिसमें सभी राज्य के नौकर होंगे, और व्यक्ति को कोई भी विशेष स्थान न होगा। अतएव साधारण तौर से उद्योगों का राष्ट्रीयकरण आवश्यक नहीं।

प्रश्न : मेरा अनुमान है कि आप साम्यवाद विरोधी हैं?

उत्तर : मुझे ऐसा बतलाया गया है कि कम्युनिज्म रशियज्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। यदि यह सच है तो हमारी कम्युनिस्ट भाइयों से पटना असंभव ही है। क्योंकि यह कोई भी नहीं चाहेगा कि उसके देश पर कोई विदेशी तत्त्वप्रणाली अपना प्रभुत्व जमाए। इस बारे में एक बात और भी है। साम्यवाद जीवन की एक प्रणाली है और एक राष्ट्र के नाते हमारी भी स्वयं की एक विशिष्ट परंपरागत प्रणाली है ही। उसकी जीवनशक्ति प्रस्थापित हो चुकी है। उसके चिरंतनत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसने शताब्दियों तक राष्ट्र को भयंकर आक्रमणों से विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य प्रदान किया है। इसी से उसकी उपयुक्तता सिद्ध होती है। मैं प्रयोगों से डरता नहीं, किंतु इस प्रकार कसौटी पर खरी उतरी जीवन-प्रणाली के होते हुए नवीन प्रयोगों की आवश्यकता नहीं रहती।

प्रश्न : तो क्या आप साम्यवाद से संघर्ष लेंगे?

उत्तर : संघर्ष? लड़ाई-झगड़ों में हमारा विश्वास नहीं। हम ठोस प्रकार के प्रयत्नों में विश्वास करते हैं। जिस बात को हम श्रेष्ठ समझते हैं, उसका केवल प्रचार करते हुए शेष भार हम जनता पर ही छोड़ देते हैं।

प्रश्न : सांस्कृतिक कार्य साम्यवाद का प्रतिरोध कर सकता है, इस संबंध में आपका क्या उपक्रम है?

उत्तर : समाज-व्यवस्था ऐसी निर्माण की जा सकती है कि संसार के

लोगों से हमें कुछ भी उधार न लेना पड़े। मुझे नहीं लगता कि कुछ बातों के लिए हमें अन्य देशों के सम्मुख हाथ पसारने की आवश्यकता है।

अन्य समस्याओं के बारे में

प्रश्न : निधर्मी राज्य संकल्पना के बारे में आपके विचार क्या हैं?

उत्तर : क्या यह शब्द हिंदू संकल्पना में निहित नहीं है? हिंदू राज्य कल्पना में सर्वधर्मसमभाव स्वभावतः ही समाहित है। हिंदुओं की व्याख्या में राज्य-यंत्रणा का यह पूर्ण दायित्व है कि वह सर्व धर्मों को समदृष्टि से देखे, सम्मानित करे, जिससे सारा समाज लाभान्वित हो।

प्रश्न : हिंदुओं के पूर्वज जाति-भेद मानते थे। इस प्रकार जाति प्रथा समाप्त कर तो हिंदू अहिंदू बन जाएगा?

उत्तर : इस विषय पर समाज शास्त्रियों के मतभेद हैं। हम नहीं मानते हमारे कार्य से हिंदू, अहिंदू होगा।

प्रश्न : स्पष्ट है कि आप जातिप्रथा समाप्त करना चाहते हैं।

उत्तर : हमें न तो जाति-प्रथा से घृणा है, न ही उसके रहने से आनंद। जो चल रहा है, उसे चलने दिया जाए। सारे प्रयत्न इसलिए हैं कि सबका संगठन व समन्वय हो। समाज-व्यवस्था समय-समय पर बदल सकती है।

प्रश्न : शरणार्थियों के पुनर्वसन की पद्धति क्या हो?

उत्तर : यह तय करना शासन का काम है। शरणार्थियों को अधिक सहायता की आवश्यकता है, पर अपने पास इतना धन नहीं है। परंतु पास की रोटी बाँटकर उन्हें देना, यह अवश्य अपेक्षित है। संघ स्वयंसेवक वह कर ही रहे हैं।

प्रश्न : भ्रष्टाचार की समस्या भीषण है। हाल ही में एक व्यंग्यचित्र प्रकाशित हुआ है। उस व्यंग्य चित्र में भ्रष्टाचार के प्रतीक के रूप में एक महिला, नेताओं को यह चुनौती देती हुई दर्शाई गई है कि 'जो कोई निष्कलंक हो, वही मुझे पहला पत्थर मारे, आखिर समस्या का हल कहाँ है?

उत्तर : हाँ। यह बाइबिल से लिया गया है। भ्रष्टाचार के अनेक प्रकार हैं।

कुछ लोग पैसों के लालच से भ्रष्ट किए जाते हैं तो अन्य कुछ लोग नाम, ख्याति, पद आदि से। कोई चरित्रवान व्यक्ति यदि अपने सिद्धांतों को ताक पर रखकर राजदूत-पद स्वीकार करता है, तो यह भी एक प्रकार का भ्रष्टाचार है। प्रतिवर्ष जो उपाधियाँ दी जाती हैं, वे भी एक प्रकार की घूस ही हैं। अपने लोग खरीद की वस्तु बन गए हैं।

सौभाग्य से अपने देश में अब भी ऐसे लोग हैं जो किसी भी कीमत पर बिकने के लिए तैयार नहीं होते, किंतु वे एकदम अलग-थलग पड़े हैं। ऐसे निष्कलंक चारित्र्य और दृढ़ इच्छाशक्तिवाले लोगों का एक देशव्यापी संगठन खड़ा करना ही भ्रष्टाचार की समस्या का एकमेव हल है।

प्रश्न: इसे करने के लिए क्या करना होगा?

उत्तर: अपने स्वयं के उदाहरण के द्वारा, योग्य संस्कारों के द्वारा लोगों को शिक्षित किया जाए। संदेह नहीं कि यह कार्य परिश्रम-साध्य है। संघ का उद्देश्य यही है कि निष्कलंक चरित्रवान तथा प्रखर राष्ट्रभक्तों का देशव्यापी संगठन खड़ा किया जाए। इसमें समय लगता है। अपने विशाल देश में यह कार्य किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तिसमूह के बूते की बात नहीं है। हम सबको कंधे से कंधा लगाकर कार्य करना होगा।

प्रश्न: किंतु ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं और एक-दूसरे से बहुत दूर हैं। वे अपने-आप में ही संतुष्ट रहते हैं। नेतृत्व करने के लिए वे सामने नहीं आते।

उत्तर: वे संगठित हों, तो बहुत लोगों को प्रभावित कर सकते हैं। ऐसे लोगों के संगठन से सामान्य जनता को प्रभावित किया जा सकेगा। यह संगठन उस रसायन की तरह होता है, जो अन्य रासायनिक पदार्थों में मिला दिया जाए तो प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है, किंतु प्रतिक्रिया की प्रक्रिया में स्वयं समाप्त नहीं होता। ऐसे लोग प्रकाश में नहीं आते, फिर भी राष्ट्र की स्थिति को ठीक कर देते हैं।

प्रश्न: इसमें कितना समय लगेगा?

उत्तर: समय के आधार पर इसका विचार नहीं किया जा सकता। चाहे जितना समय लगे तथा चाहे जितना त्याग करना पड़े, लक्ष्य प्राप्त

करना ही होगा। अनेक बार यह ठीक उसी प्रकार हुआ करता है, जैसे किसी गुफा में सदियों अंधकार रहता है, किंतु उजाले का एक पल ही संपूर्ण अंधकार को एकदम समाप्त कर देता है।

प्रश्न: छोटे राज्यों विषयक आपका सुझाव क्या संपूर्ण देश के लिए एकात्मक शासन-विषयक आपके पूर्वघोषित मत के विपरीत नहीं है?

उत्तर: यदि वर्तमान संघात्मक ढाँचे पर बने रहने का ही आपका आग्रह है, तो छोटे-छोटे प्रदेश अधिक श्रेयस्कर होंगे।

प्रश्न: किंतु विधानसभाओं और राज्यपालों की संख्या बढ़ने से व्यय नहीं बढ़ेगा?

उत्तर: कुछ व्यय तो बढ़ेगा ही। यदि हम संघात्मक ढाँचा अपनाते हैं, तो यह कठिनाई हमें स्वीकार करनी होगी, अन्यथा उनमें यदि पर्याप्त साहस हो, तो संविधान को संशोधित कर संघात्मक पद्धति को पूर्णतः समाप्त करने की घोषणा करें और कहें कि संपूर्ण देश में एक ही एकात्म शासन रहेगा।

प्रश्न: हरिजनों के संरक्षण के विषय में संविधान द्वारा प्रदत्त अभिवचन और बाद में उसकी अवधि में वृद्धि के विषय में आपका क्या मत है?

उत्तर: डा. अंबेडकर ने सन् १९५० में गणतंत्र की स्थापना के समय से केवल १० वर्षों की अवधि के लिए इसे स्वीकार किया था। आज हम सन् १९७३ में हैं, फिर भी अवधि बढ़ाने का क्रम जारी है। मैं केवल जाति के आधार पर विशेष सुविधाएँ प्रदान करने के विरुद्ध हूँ। क्योंकि उससे निहित स्वार्थ का निर्माण होता है और तदर्थ पृथक इकाई बनाए रखने की प्रवृत्ति बढ़ती है। समाज के साथ एकात्मता निर्माण होने की दृष्टि से यह हानिकारक होगा। जो लोग साधनहीन-गरीब हैं, उनकी सहायता बिना किसी वर्ग-जाति का भेदभाव किए की जानी ही चाहिए। यदि तथाकथित जातिभेद के नाम पर राजनीतिक अथवा सामाजिक किसी भी प्रकार की असमर्थताओं से कोई परेशान हो, तो उन कारणों को पूरी तरह हटाना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में हरिजन-गैरहरिजन जैसा कोई विचार नहीं होता। हम कहते हैं कि हम सब हिंदू हैं। हमारे लिए इतना पर्याप्त है। हम किसी अन्य बात की चिंता नहीं करते।

हमने हमेशा इसी तरह का व्यवहार किया है। हमारे लिए 'हिंदू' समाज का अंग होना ही महत्त्व की बात है। जाति, पंथ या अन्य किसी भी बात का, हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं है।

प्रश्न: क्या आप वर्णाश्रम के उच्चाटन के हेतु निश्चित रूप से कार्यशील हैं?

उत्तर: हिंदू समाज को समन्वयपूर्ण तथा एकात्म बनाने के लिए हम निश्चित रूप से कार्यशील हैं।

प्रश्न: वह कैसे?

उत्तर: अपने आचरण के द्वारा। इसका अन्य कोई मार्ग नहीं है। केवल बातों से कुछ नहीं होगा।

प्रश्न: कितने वर्षों में आप अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे?

उत्तर: इस विषय में मैं आपको एक कहानी बताना चाहूँगा। महान शब्दकोश-निर्माता डा.जॉन्सन एवं उनके अन्य कुछ शीर्षस्थ व्यक्ति प्रतिदिन रात को एक छोटे क्लब में मिला करते थे। विख्यात लेखक गोल्डस्मिथ भी उसके एक सदस्य थे। एक रात ये लोग चंद्रमा के प्रकाश में भोजन कर रहे थे। चंद्रमा को देखकर गोल्डस्मिथ प्रफुल्लित हो उठे। उनके मन में एक विचित्र कल्पना उठी। उन्होंने कहा– 'अच्छा डा.जॉन्सन, यह बताओ कि कितनी मछलियाँ एक के ऊपर एक लगाने से हम चंद्रमा तक पहुँच पाएँगे?'

इस अजीब प्रश्न पर जॉन्सन ने कहा– 'हमें नहीं मालूम। तुम्हीं बताओ।' इस पर गोल्डस्मिथ बोले 'केवल एक, यदि वह पर्याप्त लंबी हो।' जो लोग मुझसे पूछते हैं कि कितना समय लगेगा, उन्हें मैं इसी प्रकार का उत्तर देता हूँ। यदि हम सब जुट जाएँ, तो यह कार्य कल ही पूर्ण हो सकता है।

प्रश्न: भारत सरकार का परिवार-नियोजन कार्यक्रम इस मान्यता पर आधारित है कि देश में जनसंख्या की बहुलता है। क्या आप इस मान्यता से सहमत हैं?

उत्तर: नहीं। मुझे तो इस कार्यक्रम को 'परिवार-नियोजन' कहने का औचित्य समझ में नहीं आया। इसे 'नियोजन' कहना तभी सार्थक होगा, जब यह परिवारों को सीमित करने में ही सहायक न हो,

वरन् संतानहीन व्यक्तियों को संतान प्राप्त करने में भी सहायक हो सके। लेकिन यह कार्यक्रम उस दिशा में तो कुछ करता नहीं।

जिस रीति से सरकार जनसंख्या की वृद्धि के आँकड़ों को प्रकाशित कर रही है, वे विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते और मुझे तो सरकार के इन आँकड़ों पर भरोसा भी नहीं है। इन्हें पढ़कर या सुनकर मुझे स्वर्गीय जिन्ना का स्मरण हो आता है, जो अपने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण भाषण में मुसलमान समाज की जनसंख्या में कुछ लाख की बढ़ोतरी कर दिया करते थे। मुझे तो ग्रामीण क्षेत्र उजड़ते और वहाँ के रास्ते अपेक्षाकृत रूप में बच्चों से शून्य दिखाई देते हैं। कृषकों को कृषि-क्षेत्र में श्रमिक ढूँढ पाना दुष्कर हो रहा है।

सरकारी आँकड़े ही जनसंख्या वृद्धि के कृत्रिम भय की अविश्वसनीयता सिद्ध करते हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, १९५२-६६ के चौदह वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन में ६१.८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि सरकार के जनसंख्यावृद्धि-संबंधी अपने अनुमानों से कहीं कम है। अतः दोनों आँकड़ों में से एक अथवा दोनों ही असत्य हैं और भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं।

मुझे प्रतीत होता है कि जनसंख्यावृद्धि के इस काल्पनिक भय के पीछे एक गुप्त प्रयोजन है। सरकारी असफलताओं को नवीन पीढ़ी के सिर पर थोप देने का यह सरल बहाना है। विदेशी शक्तियाँ तो भारतीय जनसंख्या में कमी के लिए आकुल हैं। इसका कारण यह है कि वे जनसंख्या की शक्ति और जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ उक्त राज्य की वृद्धिंगत होती हुई शक्ति के महत्त्व को पहचानते हैं।

फिर ये कृत्रिम उपाय अत्यंत हानिकारक हैं। यौन ग्रंथियों की स्रवण-स्राव प्रक्रिया में व्यतिक्रम उत्पन्न कर शरीर के हारमोन-संतुलन को नष्ट कर देते हैं, जिसकी अत्यंत विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्ति की मनःस्थिति और उसके स्वास्थ्य पर होती है। जिस सामान्य विधि से सरकार देश के लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के मानसिक संतुलन तथा उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही है, उसे देखकर आश्चर्य होता है।

प्रश्नः अपने देश में जनसंख्या की समस्या के हल की दृष्टि से आपके विचार क्या हैं?

उत्तरः इतना तो सर्वज्ञात है कि यदि आप व्यक्ति को सुरक्षित जीवन प्रदान कर सकें, तो वह अधिक बच्चों को जन्म नहीं देगा।

प्रश्नः भारतीय किसान कुछ एकड़ जमीन होने पर स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं करता है। इस परिस्थिति में उसने अधिक बच्चों को जन्म नहीं देना चाहिए?

उत्तरः नहीं, वह बहुत गरीब है। पर्याप्त वर्षा का न होना, संक्रामक रोगों का फैलाव आदि के कारण वह अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं करता। वह स्वयं को सदैव संकटों और मृत्यु के बीच खड़ा पाता है। इससे पार पाने की इच्छा ही उसे अधिक शिशुओं को जन्म देने को प्रेरित करती है। वह आशा करता है कि उनमें से कुछ तो जीवित रहेंगे।

प्रश्नः जापान में संतति नियंत्रण की सुविधाएँ गरीबों को निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती हैं। क्या यहाँ ऐसा कुछ किया जाना चाहिए?

उत्तरः नहीं। व्यक्ति चूँकि गरीबी के कारण अपने कुटुंब का पोषण नहीं कर सकता, इसलिए उसे कुटुंब मर्यादित करने के लिए बाध्य करने का समाज पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। कुटुंब का मर्यादित होना इसका उपाय नहीं हो सकता। उसे पर्याप्त काम देना सही उपाय है। असाध्य रोगी के बंध्याकरण को मैं समझ सकता हूँ, किंतु गरीबों का नहीं। गरीब होना कोई अपराध नहीं है। यह डाक्टर द्वारा दया कर मरीज को मृत्यु देने जैसा भी नहीं है। दूसरी एक आपत्ति यह भी है कि यदि जनसंख्या नियंत्रण को आप प्रोत्साहन देते हैं, तो गरीब के बजाय संपन्न लोग ही इसे व्यवहार में अधिक लाएँगे। शिक्षित और संपन्न व्यक्ति ही इन बातों को समझता है और व्यवहार में लाता है। किंतु गरीब इन बातों को नहीं समझता। इन बातों से उसे डर अनुभव होता है। परिणामतः जनसंख्या-नियंत्रण के प्रचार के कारण शिक्षित लोगों के संख्या-बल पर विपरीत प्रभाव होगा। कुछ मिलाकर जनसंख्या के गुणात्मक स्तर में गिरावट ही इसका अर्थ होगा।

प्रश्नः नक्सलवादी चुनौती के संबंध में आपका क्या कहना है?

उत्तर: मैं समझता हूँ कि यदि जनता को अपने कार्यों के प्रति सतर्क और जागरूक किया जाए, तो इन सभी ताकतों का, जो देश में अराजकता की स्थिति निर्माण कर रही हैं, ठीक-ठीक मुकाबला किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि देश एकजुट होकर खड़ा होगा। इस चुनौती का सामना करेगा और सफल होगा।

प्रश्न: आपके विचार से देश ने अनाज उत्पादन की वृद्धि के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर: पिछले कुछ वर्षों से हमारे लोग अधिक पैसे देनेवाली उपज के पीछे पड़े हैं। उत्तरप्रदेश और बिहार में जमीन का बड़ा हिस्सा गन्ना उत्पादन में प्रयुक्त हो रहा है। जमीन के बड़े क्षेत्र में मूँगफली की उपज ली जा रही है। महाराष्ट्र में अंगूर के उत्पादन की होड़ लगी है। इसी प्रकार की और भी बातें हैं। इन सबका समुचित विचार किया जाना चाहिए। अनाज-उत्पादन के लिए पर्याप्त जमीन उपलब्ध कराने के बाद ही नगद रुपए दिलानेवाली उपज का विचार किया जाना चाहिए। यह बहुत कठिन नहीं है। सरकार द्वारा प्रकाशित की गई रिपोर्ट के अनुसार, इस वर्ष अनाज की कमी केवल ८ प्रतिशत के लगभग है, जबकि यह वर्ष अनाज उत्पादन के लिए बहुत अच्छा नहीं था। निश्चय ही इस कमी को पूरा करने के लिए नगद रुपए वाली उपज के क्षेत्र में अधिक कमी नहीं करनी पड़ेगी। हर क्षेत्र और हर ग्राम में इस बात पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। पैदावार के आँकड़ों का सही अध्ययन कर किसानों को योग्य खाद्यान्न के उत्पादन के बारे में बताया जाना चाहिए।

प्रश्न: कोई किसान आदेश-पालन न करे तो क्या होगा? आपके मतानुसार मुक्त व्यापार का प्रबंध करने पर इस बात की क्या गारंटी होगी कि व्यापारी सुयोग्य ढंग से अनाज का वितरण करेगा ही?

उत्तर: व्यापारी को बहुत अधिक घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यदि ऐसा मान लिया गया कि हमारे सभी व्यापारी बेईमान हैं और उन्हें अपने देशबांधवों से कोई सहानुभूति नहीं है, तब तो ऐसा सबके बारे में ही कहना पड़ेगा। क्योंकि उद्योगो में कार्यरत लोगों के बारे में भी कहा जाता है कि वे बेईमान हैं, मजदूर भी पूरा काम नहीं

करते। वे जितना काम करते हैं और उसके लिए उन्हें जितना समय दिया जाता है, उसमें कोई संगति नहीं है। इसकी भी चर्चा है कि कुछ धनी किसान अपना उत्पादन मंडी में आने से रोक देते हैं। ऐसा विचार करने पर तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इस विशाल देश में एक भी सच्चा ईमानदार आदमी नहीं है। मेरे विचार से तो यह बहुत ही अन्यायी दृष्टिकोण होगा। और यदि एक भी सच्चा ईमानदार आदमी नहीं है, तो सरकारी व्यापार के प्रबंधन के लिए सच्चा आदमी कहाँ से उपलब्ध होगा? इसलिए हमें परस्पर विश्वास करना ही चाहिए।

विश्वसनीय जानकारी के अनुसार मालूम हुआ है कि एक प्रांत में पिछले वर्ष गेहूँ की कमी हो गई थी। अनाज व्यापारी संगठन ने प्रस्ताव रखा कि उसे पड़ोसी राज्य से अनाज लाने की अनुमति दी जाए। उन्होंने कहा था कि वे खरीद-मूल्य पर १५ से २० प्रतिशत के मुनाफे पर अनाज बेचेंगे। उसमें परिवहन लागत भी शामिल थी। किंतु सरकार ने यह कहते हुए प्रस्ताव ठुकरा दिया कि लाभांश की मात्रा अधिक है। सरकार ने कहा कि वह अपने स्तर पर समस्या का हल कर लेगी और उसने किया भी। सरकार ने जो गेहूँ बेचा, उसपर लाभ १२५ प्रतिशत से भी अधिक था। मैं पूछता हूँ कि दोनों में काला बाजारी कौन है?

हमें परस्पर विश्वास रखना ही चाहिए। वस्तुतः हमारा जीवन तभी चल सकता है, जब हम एक-दूसरे पर विश्वास करें। हम व्यापारियों व ग्रामीण जनता को विश्वास में लें, जिससे हम जो चाहते हैं, उसे प्राप्त कर सकें।

प्रश्न: उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद के उपयोग का क्या परिणाम होगा?

उत्तर: इस विषय में विशेषज्ञों ने कहा है कि गाय का गोबर और हरे पत्तो से बनाया गया जैविक खाद भूमि की उर्वरा शक्ति बनाए रखने के लिए अधिक प्रभावी है।

प्रश्न: अनाज की कीमत के प्रश्न पर अनशन, हड़ताल आदि के बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तर: विरोध-प्रदर्शन का अपना महत्त्व है। किंतु विरोध-प्रदर्शन को

कीमतों के समान नियंत्रण के बाहर नहीं जाने देना चाहिए। कम्युनिस्ट अवसर का लाभ उठाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जनआक्रोश का अपने फायदे के लिए सरलता से उपयोग कर सकते हैं। उन्हें ऐसा नहीं करने देना चाहिए। सांकेतिक हड़ताल ठीक है। बढ़ती हुई कीमतों को रोकने के लिए सरकार चलाने वाले दल के विधानसभा तथा संसद के सदस्यों से माँग कर सकते हैं या पद त्यागने के लिए कह सकते हैं।

प्रश्न: सामान्यतः बैंक कर्मचारी 'धीमी गति से कार्य' कर अपना विरोध प्रगट करते हैं?

उत्तर: अति महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों को इस प्रकार के मार्ग नहीं अपनाने चाहिए। इससे पूरी अर्थ-व्यवस्था बिगड़ सकती है। यदि वे पूरे दिन समुचित काम करते हैं और अंत में विरोध प्रदर्शन करते हैं तो क्या वह अधिक प्रशंसनीय नहीं माना जाएगा? इस प्रकार का प्रदर्शन भी अवश्य प्रभाव डालेगा।

प्रश्न: गंगा को कावेरी से मिलाने की योजना की चर्चा बहुत जोरों से चल पड़ी है। वह कहाँ तक सार्थक है?

उत्तर: गंगा को कावेरी से मिलाने की योजना का सुझाव इस आधार पर दिया गया है कि गंगा में बारहों मास पानी रहता है, जिसे दक्षिणी राज्यों को उपलब्ध कराया जाए। बाढ़-नियंत्रण करने का यह भी एक उपाय है। एक ने तो साहस कर यह तक कह डाला कि इससे देश के अंतर्गत जहाज से माल-ढुलाई का मार्ग विकसित होगा और माल-ढुलाई की आज की लागत में कमी आएगी। यहाँ तक यह विचार ठीक है। किंतु मुख्य प्रश्न यह है कि क्या गंगा में वर्षभर पर्याप्त पानी है, जो कावेरी तक पहुँचाया जा सके। वर्ष के निश्चित समय ही गंगा में बाढ़ आती है। कई माह ऐसे भी होते हैं, जब पटना शहर के लिए महीनों गंगा में पर्याप्त पानी नहीं रहता। करीब-करीब आधी नदी सूख जाती है। सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि उसमें वर्ष भर कितना पानी उपलब्ध रहता है। फिर जिन राज्यों से होकर गंगा बहती है और अभी सिंचाई व्यवस्था व उसके लिए पर्याप्त पानी नहीं है, पहले वह की जाए। नदियों को मिलाने की योजना के क्रियान्वयन के पूर्व सभी पक्षों का

गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

प्रश्न : ...पत्रिका का इसके बाद का अंक 'वेश्यावृत्ति' विषय को लेकर प्रकाशित होनेवाला है। आप इस विषय को शायद दूर से भी स्पर्श नहीं करेंगे?

उत्तर : यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका स्वरूप कैसा रहने वाला है। उसके पीछे की आधारभूत धारणा क्या है? यदि उसका उद्देश्य लोगों की निम्नस्तरीय भावनाओं को उकसाना है तो कोई भी सभ्य व्यक्ति उससे दूर रहना चाहेगा। यदि अंक समस्या पर विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालने हेतु निकाला जाएगा, तब हर कोई उसे पढ़ सकता है। मानवीय दुर्बलता के कारण ही इस व्यवसाय का उद्भव हुआ है। यह हजारों वर्षों से सामाजिक आवश्यकता बना हुआ है, इसको मान्यता देनी चाहिए। इस व्यवसाय का संपूर्ण उन्मूलन असंभव है। इस समस्या को सुलझाने का केवल एक ही सफल मार्ग है और वह यह है कि जो महिलाएँ इस व्यवसाय में हैं, उनकी परिस्थिति में सुधार तथा उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। उन्हें धर्मप्रवण और ईश्वरभक्त बनाने का प्रयास हो।

प्रश्न : इन दिनों हिंसक आंदोलनों में तेजी आई है। उसका कोई विशेष कारण है?

उत्तर : लोगों में बढ़ता हुआ असंतोष, वैफल्य की भावना और सरकार के प्रति विश्वास के अभाव आदि कारणों से देश के विभिन्न हिस्सों में आंदोलन प्रारंभ हुए हैं। ऐसी भावना बढ़ना दुर्भाग्यपूर्ण है। लोग जब तक आंदोलन नहीं करते और वह हिंसक नहीं हो जाता, तब तक सरकार परिस्थिति की गंभीरता को नहीं समझती। आंदोलन हिंसक हो जाने के पश्चात् सरकार भी हिंसक भावना के साथ प्रतिबंधात्मक कार्यवाही में जुटती है। मैं इन भावनाओं को अत्यंत घातक समझता हूँ। सत्ताधारियों का यह कर्तव्य है कि वे समय रहते सहानुभूति से शासन का कार्य करें और लोगों में इस प्रकार की घातक भावनाएँ न उभरें, इसके लिए योग्य वातावरण तैयार करें।

प्रश्न : विशेषतः खाद्यान्न के आंदोलन ने हिंसक मोड़ लिया। उससे संपूर्ण

जनजीवन ही अस्तव्यस्त हो गया?

उत्तर: कुछ राजनीतिक तत्त्व ऐसे हैं, जो सत्ता-प्राप्ति के एकमेव उद्देश्य से अराजकता पर ही निर्भर रहते हैं। वे इस प्रकार के आंदोलन की अग्नि को हवा देकर असंतोष का लाभ उठाते हैं। शीघ्रता और समय रहते खाद्यान्न की पूर्ति कर इन आंदोलनों को टाला जा सकता है। मुझे लगता है कि अनाज की कमी के कारण समस्या गंभीर नहीं हुई थी, बल्कि अनाज के स्थानांतरण में अकारण अवरोध खड़े करने से उसके वितरण में अव्यवस्था उत्पन्न हुई। खाद्यान्न-परिवहन के स्वाभाविक मार्गों को ही अवरुद्ध कर दिया गया है। अनाज की कमी और बहुलतावाले जिले एक-दूसरे के समीप हैं, पर सत्ता में बैठे लोग पूरे देश की चिंता करने के बजाय अपने जिले या राज्य की चिंता अधिक करने लगे हैं। मेरा सुझाव है कि सभी प्रकार के अवरोध तुरंत समाप्त किए जाएँ। संपूर्ण देश को अखंड रूप से एक इकाई माना जाए। अनाज बहुलवाले क्षेत्र से कमीवाले क्षेत्र में बिना रोकटोक परिवहन की सुविधा होनी चाहिए। अनाज की कीमतें अनावश्यक रूप से न बढ़ने देने के प्रति सरकार को सचेत रहना चाहिए।

९. सर्वसाधारण

प्रश्न: आप इतिहास की पुस्तकें क्यों नहीं लिखते?

उत्तर: अलग पुस्तकें लिखने की क्या आवश्यकता है? बहुतेरी पुस्तकें लिखी गई हैं। मैं तो पत्र के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखता। जिन्हें पुस्तकें लिखना हों, लिखें।

प्रश्न: संघ के घटकों को मंत्रिपद देने के विषय में, पटेल जी ने सूचनाएँ दी हैं, ऐसी वार्ता किसी वृत्तपत्र मे आई थी। परसों सरदार जी से भेंट के समय आपकी उनसे कोई बातचीत हुई क्या?

उत्तर: इस प्रकार का कोई संभाषण नहीं हुआ। 'मिनिस्ट्री' के संबंध में हममें कोई वार्ता नहीं हुई।

प्रश्न: श्रेष्ठ नेतृत्त्व कहीं नहीं दिखाई देता?

उत्तर : श्रेष्ठ नेतृत्व जनसमाज में से उत्पन्न होता है। यदि जनसमाज को उचित शिक्षण और ज्ञान दिया जाए, तो नवीन नेतृत्व स्वतः उभर आएगा। यह संभव है कि इस नवीन नेतृत्व के घटक प्रतिभाशाली व्यक्तित्ववाले न हों, लेकिन यदि वे प्रामाणिक एवं सामान्य बुद्धिक्षमता वाले भी हुए, तो देश का कल्याण हो सकेगा।

प्रश्न : क्या आप यह अनुभव करते हैं कि हमारे राजनेता जिन्होंने देश का विभाजन स्वीकार किया, उनमें दूरदर्शिता का अभाव था?

उत्तर : मैं दो उदाहरण देता हूँ। पहला यह कि उनका विश्वास था और वे उपदेश भी देते थे कि मात्र हिंदू-मुस्लिम एकता से ही स्वराज्य प्राप्त होगा। किंतु स्वराज तब आया, जब उनके संबंध अतिशय बिगड़े हुए थे। दूसरा यह कि देश-विभाजन के पश्चात् पंडित नेहरू ने हवाई जहाज से उन स्थानों को देखा, जहाँ अत्याचार और क्रूरता का नंगा नाच हो रहा था। ऐसा कहा जाता है कि सब देखकर उन्होंने कहा था– 'यदि मालूम होता कि देश-विभाजन का परिणाम यह होगा, तो मैं कभी भी उसे स्वीकृति नहीं देता।'
अब बताएँ मैं कैसे कहूँ कि वे दूरदर्शी थे, जबकि निकट भविष्य में क्या हो सकता है, इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते थे।

प्रश्न : विद्यमान राजनेताओं ने देश के लिए त्याग किया है। क्या आप इसे स्वीकार नहीं करते?

उत्तर : परंतु भूतकाल में किए हुए त्याग की कीमत वसूल करने की वर्तमान प्रवृत्ति का मैं अनुमोदन नहीं कर सकता।

प्रश्न : नेताओं द्वारा दिए गए उपदेशों से सामान्यजन को प्रेरणा क्यों नहीं मिलती?

उत्तर : क्योंकि लोग उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन से भली-भाँति परिचित हैं। वे जो कहते हैं, उनसे उनका जीवन मेल नहीं खाता। केवल उन्हीं शब्दों का प्रभाव पड़ता है, जिनका आधार जीवन के सत्कर्म होते हैं।

प्रश्न : आज हर बात के लिए सरकार पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं। क्या यह उचित है?

उत्तर : जीवन के हर क्षेत्र पर सरकार प्रभुता स्थापित करे, यह अत्यंत अनुचित बात है। यह सोचना कि सरकार और राजनीति का जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, स्वस्थ विचार नहीं है।

प्रश्न: क्या आप कई राजनैतिक दलों के होने को उचित समझते हैं?

उत्तर: उसमें हानि नहीं है, किंतु सबका लक्ष्य एक ही होना चाहिए। सबने राष्ट्र के उत्थान के विषय में ही सोचना चाहिए। विविध दृष्टिकोणों का आदर होना चाहिए, किंतु आज अपने देश में तो सब एक-दूसरे से शत्रु जैसा व्यवहार करते हैं।

प्रश्न: हमारे यहाँ के विद्वान विदेशों में बसना पसंद करते हैं। क्या आप इसे सही मानते हैं?

उत्तर: यहाँ के श्रेष्ठ बुद्धिमानों से मैं कहना चाहूँगा कि विदेशियों के अधीन काम करने की प्रवृत्ति को तिलांजलि दें और स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करें। हमारे देश में संशोधन की सामग्री का आधिक्य है। आविष्कार और खोज के लिए अनंत अवसर उपलब्ध हैं। मैं तो अनुरोध करूँगा कि पूरे विश्व को दिखा दें कि उनमें सभी क्षेत्रों में कुशलता व योग्यता है।

प्रश्न: जानकारी मिली है कि वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए अपने यहाँ के बंदरों को अमरीका भेजा जा रहा है?

उत्तर: आदमी ने स्वयं को कितना पशु बना लिया है। अपनी कभी न मिटने वाली भूख की तृप्ति के लिए ईश्वर-निर्मित सृष्टि के शोषण को वह अपना अधिकार मानने लगा है। यह कितनी घृणित बात है? वह विश्व को कहाँ ले जा रहा है? वह जीवन की पवित्रता को नष्ट कर रहा है। आज का दर्शन तो अणु बम का है। वह तो नरभक्षी वृत्ति है। आज आदमी, आदमी का शोषण कर जी रहा है।

ईश्वर निर्मित संपूर्ण सृष्टि अति पवित्र है। यदि असावधानी से भी एकाध चींटी को कष्ट हुआ, तो मुझे अतीव दुःख होगा।

प्रश्न: अभी हाल के विधानसभा चुनाव के पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी तिरूपति दर्शन को गई थीं। उस विषय में वृत्त-पत्रों में टीका-टिप्पणी हुई थी। क्योंकि बी.बी.सी को दिए साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि 'उन्हें ईश्वर की बैसाखियों की आवश्यकता नहीं है' पर दूसरी ओर तिरुपति के दर्शन को जाती हैं। पत्रकारों का कहना है कि यह तो धर्म-प्रेमी हिंदू जनता के वोट प्राप्त करने की चतुर चाल मात्र है। इसके अलावा दूसरा कोई हेतु हो ही नहीं सकता।

उत्तर: मैं सोचता हूँ कि यह टिप्पणी अनुदार है। मुझे लगता है कि वे राजनैतिक स्वार्थ से नहीं, बल्कि भक्ति से प्रेरित होकर वहाँ गई थीं। आखिर व्यक्ति के जीवन में ऐसे क्षण आते ही हैं, जब वह धन, संपत्ति, सत्ता, लोकप्रियता आदि बातों से ऊपर उठकर अंतरात्मा में झाँकने का प्रयास करता है।

प्रश्न: सामाजिक दोषों को दूर करने के लिए उनके प्रति गुस्सा क्यों न जगाया जाए?

उत्तर: जनकोप अल्पजीवी होता है। हम उसे इच्छानुसार नियंत्रित अथवा निर्देशित नहीं कर सकते। शेक्सपियर के नाटक जुलियस सीजर में एंटोनी का प्रसिद्ध कथन हमारे सामने है– 'उपद्रव, तू चल पड़ा है। जो तेरे मन में आए, वही कर।' शब्दों पर ध्यान दें उसने यह नहीं कहा कि 'जो मैं चाहता हूँ, वह कर।' उसने कहा 'जो तेरे मन में है, वह कर।'

प्रश्न: क्या अहिंसा सर्वोच्च सद्गुण नहीं है?

उत्तर: कभी-कभी अहिंसा की रक्षा करने के लिए ही हिंसा आवश्यक बन जाती है।

प्रश्न: व्यक्ति के समाज के साथ क्या संबंध होने चाहिए?

उत्तर: सरल शब्दों में कहना हो तो समाज का सुख वही अपना सुख, उसका दुःख वही अपना दुःख, उसका यश व कीर्ति वही अपना यश व कीर्ति, उसका अपमान, याने अपना अपमान, यह अनुभूति होनी चाहिए।

प्रश्न: आदर्श के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए व्यक्ति को शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी?

उत्तर: आदर्श के प्रति संपूर्ण समर्पण भावना से। ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करने में लगे दो योगियों की तीव्र तपस्या की कहानी है। नारद उसी रास्ते से भगवान के धाम जा रहे थे। दोनों योगियों ने नारद जी के द्वारा यह जानना चाहा कि भगवान की प्राप्ति के लिए अभी और कितनी तपस्या करनी पड़ेगी। वापस आते समय नारद उन योगियों से पुनः मिले। उन्होंने पहले योगी को बताया कि उसे अभी चार जन्म तक तपस्या करनी होगी। नारद जी का उत्तर सुनकर वह योगी निराश हो विलाप करने लगा।

नारद जी ने दूसरे को बताया कि उस इमली के वृक्ष में

जितनी पत्तियाँ हैं, अभी उतने जन्म तक ईश्वरप्राप्ति के लिए तुम्हें राह देखनी होगी। वह खुशी से नाचने लगा। यह देखकर नारद जी को आश्चर्य हुआ। कारण पूछने पर उसने बताया, 'अब यह तो निश्चित हो गया कि ईश्वर की प्राप्ति होगी ही। मेरे प्रयत्न निष्फल नहीं जाएँगे। जैसे ही उसने यह कहा, दैवी आकाशवाणी सुनाई दी– 'तुम इस क्षण ही मुक्तात्मा हो।'

इस प्रकार के लोग कठिनाइयों को सुअवसर में बदल सकते हैं। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में 'ऐसे लोग रौद्र पूजा करते हैं, और संकटमय जीवन से प्रेम करते हैं।' सभी प्रकार के प्रलोभनों और विपत्तियों की आँधी से अविचलित रहते हुए, आग्रही वृत्ति से विजयी होकर आगे बढ़ते ही रहते हैं।

१०. अहिंदू समाज के विषय में

प्रश्न: आप बारंबार इस राष्ट्र को 'हिंदू राष्ट्र' के नाम से संबोधित करते हैं। यदि आपकी यही मान्यता है, तब तो जिन परिस्थितियों में सन् १९४७ में देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ, उसे देखते हुए पाकिस्तान के मुसलमान शायद ही एकीकरण का समर्थन कर सकें। यदि वे इसे स्वीकार नहीं करते, तब तार्किक दृष्टि से केवल युद्ध का ही मार्ग शेष बचता है। क्या आपको युद्ध का ही मार्ग स्वीकार्य होगा?

उत्तर: इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए 'हिंदू राष्ट्र' के संबंध में व्याप्त भ्रांति का निराकरण आवश्यक है। 'हिंदू' शब्द 'संप्रदाय' का बोधक नहीं है। यद्यपि लोग अक्सर 'हिंदू रिलीजन' शब्द का प्रयोग करते हैं, पर यह शब्द-प्रयोग गलत है। 'हिंदू' राष्ट्रीयता का बोधक है। अपनी राष्ट्रीयता की कल्पना में कुछ बातों पर जोर दिया जाता है, यथा– मातृभूमि के प्रति असंदिग्ध, निष्कपट भक्ति को प्रथम स्थान देते हैं। अपने इतिहास के प्रति श्रद्धा, उस इतिहास के प्रति, जो केवल कुछ शताब्दियों का ही नहीं, अपितु अति प्राचीन है– का स्वाभाविक अर्थ है, अपने महान पूर्वजों के प्रति श्रद्धा। यह दूसरी आवश्यकता है। राष्ट्रीयता की तीसरी शर्त

है एक सुरक्षित वैभवपूर्ण राष्ट्रीय जीवन जीने की समान आकांक्षा। इन्हीं कुछ बातों पर हम विशेष बल देते हैं। उपासना-पद्धति इसमें कहीं भी आड़े नहीं आती। इन्हीं बातों के समुच्चय को हम 'हिंदू राष्ट्र' के नाम से पुकारते हैं।

जब मैं उपरोक्त बात कहता हूँ, तब अपने मुसलमान बंधुओं से मैं पूछना चाहता हूँ कि आखिर उन्हें अपनी जीवनधारा क्यों बदलनी चाहिए? परशिया का ही उदाहरण लीजिए। इस्लाम को स्वीकार करने के बाद भी वहाँ के लोगों ने अपनी भाषा नहीं बदली। अरबी को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपनी लिपि भी नहीं बदली अरबी लिपि स्वीकार नहीं की। उन्होंने अरब देशीय जीवन-पद्धति को भी स्वीकार नहीं किया। अपनी जीवनधारा से वे चिपके रहे। अपने महान पूर्वजों के प्रति उनकी भक्ति में भी कोई कमी नहीं हुई। आज भी कोई पारसी 'रुस्तम' का नाम बड़े ही गौरव के साथ लेता है। रुस्तम मुसलमान तो नहीं था। उसमें से कुछ चंगेज खाँ का गौरव करते हैं। वह भी मुसलमान नहीं था। फिर देश के मुसलमान किसी विशिष्ट उपासना-पद्धति को अंगीकार कर लेने मात्र से ही अपने पूर्वजों से अलग कैसे हो जाते हैं? अपनी भाषा का ज्ञान छोड़ना आवश्यक क्यों मानते हैं? विदेशी भाषा और लिपि अपनाने का दुराग्रह क्यों करते हैं? मेरा विश्वास है कि यदि यह तर्क-शुद्ध दृष्टिकोण अपनाया गया, तो कोई भी समस्या शेष नहीं रह जाती। असंख्य मत-मतांतरों के होते हुए भी आज हम एक राष्ट्र हैं। राष्ट्रीयता की यह पुरानी धारा आज भी अविकल रूप से प्रवाहित हो रही है, यह राष्ट्रीयता ही है। आज भी राजनीतिक क्षेत्र में जिस पंथनिरपेक्षता का उद्घोष किया जा रहा है, उसका अर्थ धर्म का निषेध नहीं, अपितु सभी धर्मों के प्रति आदर और सम्मान का भाव रखना है। यह हिंदुत्व की ही परिकल्पना है।

प्रश्नः आप विगत वर्षों के हिंदू व मुसलमानों के संबंधों से अच्छी प्रकार परिचित हैं। भारत-विभाजन की भूमिका भी आपको मालूम ही है। मेरा आशय इतना ही है कि क्या इस बात पर विचार करते समय अन्य कमियों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए?

उत्तरः निश्चय ही हमें उनकी गलतियों के साथ ही अपनी गलतियों पर

भी ध्यान देना चाहिए। इतना ही नहीं, मैं तो कहूँगा कि हमें उस तीसरी शक्ति की भूलों या अधिक ठीक कहा जाए तो योजना-बद्ध प्रयासों को भी अच्छी प्रकार समझना चाहिए, जो उन दिनों हमारे शासक के रूप में यहाँ विद्यमान थी। इन सभी बातों का सम्यक् विवेचन किए बिना हम उचित निर्णय पर नहीं पहुँच सकेंगे।

प्रश्न : मुसलमान अन्य देशों में भी रहते हैं, किंतु दंगे केवल भारत में ही होते हैं?

उत्तर : यह वस्तुस्थिति नहीं है। रूस व चीन में भी मुस्लिम-समस्या विद्यमान है। मुझे याद है, ३० वर्ष पूर्व चीन में चीनियों और मुसलमानों के बीच सिक्यांग में बड़ा संघर्ष हुआ। बताया गया कि झगड़ा मुसलमानों ने प्रारंभ किया था और चीनियों ने इसका करारा जवाब दिया। करीब १० लाख लोग मारे गए। अभी पिछले सप्ताह ही सिक्यांग में पुनः ऐसी वारदात होने के समाचार आए हैं।

प्रश्न : कट्टरपंथी मुसलमानों ने इसका गलत अर्थ लगाया था। मौलाना आजाद ने उसका आधुनिक और नया पर सही अर्थ बताया।

उत्तर : पर कितने मुसलमानों ने आजाद के कदमों पर चलने की चिंता की। धर्मनिरपेक्षता हिंदुओं में नियम है, सांप्रदायिक हिंदू अपवाद है। किंतु मुसलमानों में सांप्रदायिक मुसलमान नियम है, और धर्मनिरपेक्ष मुसलमान अपवाद। यही दोनों में अंतर है।

प्रश्न : पाकिस्तान की ओर देखने के कारण मुसलमानों की आप निंदा करते हैं, किंतु कई हिंदू भी हैं जो चीन और रूस की ओर देखते हैं?

उत्तर : मैं उतनी ही उग्र निंदा उनकी भी करता हूँ।

प्रश्न : किंतु अब क्या करें? समस्या का हल कौन-सा है? भारत में आज ६ करोड़ मुसलमान हैं। क्या हम उन्हें निकाल बाहर करें?

उत्तर : भारतीय मुसलमान अपने देश को और यहाँ की प्राचीन संस्कृति को अपनी मानकर इस समस्या को हल कर सकते हैं और हल करना ही चाहिए। यह तो स्पष्ट है कि भारतीय इतिहास महमूद गजनी से प्रारंभ नहीं होता।

प्रश्न : इस देश के साथ तथा यहाँ की संस्कृति से एकरूप होने के लिए मुसलमानों को शिक्षित कौन करेगा?

उत्तर : आप, हम और सभी।

प्रश्न : उन्हें मनवाने के लिए क्या करें? ठोक-पीट करें?

उत्तर : ताड़ना देना भी दो प्रकार का होता है। माँ अपने बच्चों को पीटती है और दूसरी ओर दुश्मन किसी व्यक्ति को पीटता है। हमने अब तक कोई मारपीट नहीं की, किंतु जब ताड़ना द्वारा शिक्षा देनी होगी तो वह माँ की ममता में बच्चे की भलाई के लिए की गई बात जैसी ही होगी।

प्रश्न : किंतु महात्मा गाँधी का हत्यारा हिंदू था।

उत्तर : हाँ। और कहीं वह मुसलमान होता तो स्थिति पर काबू पाना कठिन हो जाता। जैसा आप सभी को विदित होगा कि सन् १९४७ की शरद् ऋतु में सरकार को पता चल गया था कि कुछ मुस्लिम उन्हें मार डालने की तैयारी में हैं। कुछ मुसलमान उन्हें भंगी कॉलोनी के उनके निवास पर ही मारने की धमकी दे रहे थे। सरकार ने हमसे सहायता माँगी। तब हमने चौबीसों घंटे पहरे की व्यवस्था तब तक रखी, जब तक महात्मा जी बिरला-भवन में नहीं चले गए।

प्रश्न : साफ है कि आप हिंदुओं की प्रधानता चाहते हैं। क्या आप इसके लिए संविधान में संशोधन की माँग भी करना चाहते हैं?

उत्तर : हिंदुओं को प्रधानता तो प्राप्त है ही। प्रजातांत्रिक ढाँचे में हिंदुओं का यह प्राधान्य स्वाभाविक ही है। मैं जो चाहता हूँ, वह है 'स्वस्थ समाज'। इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता नहीं है। हमारा संविधान सबको समान अधिकार की गारंटी देता है। हिंदू जन्मजात धर्मनिरपेक्ष होने के कारण इस सत्य को मानता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए विभिन्न मार्ग होते हैं।

प्रश्न : आप सदैव हिंदुओं की बात ही क्यों करते हैं, 'इंडियन' की क्यों नहीं? मुसलमानों को आप क्यों नहीं अपने कार्य में सम्मिलित करते?

उत्तर : महात्मा गाँधी के कार्यकाल में हिंदू बहुत अंशों में हिंदुस्तानी बन गया था, किंतु क्या मुसलमान ने भी उनकी ओर ध्यान दिया? क्या मुसलमान हिंदुस्तानी बना? इसके विपरीत मौलाना मोहम्मद अली ने मुँह फेरकर घोषणा की कि खराब मुसलमान भी भले से

भले, याने महात्मा गाँधी सहित किसी भी हिंदू से कहीं अच्छा है। उसके बाद प्रायः सभी राजनीतिक दल मुसलमानों के समूह-वोट पाने के लिए, उनके पृथकत्व को बनाए रखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित कर रहे हैं। क्या उन्हें हिंदुस्तानी बनाने का यही तरीका है? हमें इतिहास को ठीक प्रकार से पढ़ना चाहिए। हमें इतनी समझ प्राप्त करनी ही चाहिए कि हम इतिहास को ठीक प्रकार से परख सकें। मैं केवल हिंदू-संगठन के कार्य से संबंधित हूँ, मुस्लिम से नहीं। मेरा कार्य है हिंदुओं को संगठित करना।

प्रश्न: यह सत्य है कि कुछ मुसलमानों ने भारत-विभाजन का समर्थन किया था, किंतु क्या इसमें सब मुसलमानों का दोष है? कई मुसलमान पछता रहे हैं। क्यों न पाकिस्तान बनने की घटना को भुला दिया जाए?

उत्तर: हम ऐसा नहीं कर सकते। भारत-विभाजन की घटना को मुसलमान अंतिम घटना के रूप में नहीं देखता। वह इसे केवल आगे बढ़ने के लिए पहला कदम मानता है।

प्रश्न: अहिंदुओं को राष्ट्रीय मुख्य धारा में मिलाने की प्रक्रिया से आप क्या अर्थ लगाते हैं?

उत्तर: हिंदुओं की तरह उन्होंने भी इस देश के लिए, उसके लोगों के लिए, संस्कृति, परंपरा, इतिहास, भूतकालीन स्मृतियों, भविष्यकालीन आकांक्षाओं को अपनाने की भावना का अनुभव करना चाहिए। इन सब बातों को अपना लेने के पश्चात् कोई कहता है कि उसने कुरान या बाइबल का सूक्ष्म अध्ययन किया है और उसके हृदय को वह अध्ययन आंदोलित करता है, तब उसके अनुकरण के लिए उसका स्वागत है। व्यक्तिगत जीवन में उसे इसका पूरा अधिकार है। शेष सभी बातों के लिए उसने राष्ट्रीय मुख्य धारा के साथ होना चाहिए।

प्रश्न: आप राष्ट्रीय मुख्य जीवनधारा की बात करते है, उससे आपका क्या तात्पर्य है? कृपया व्याख्या करें।

उत्तर: कई शताब्दियों से हम यहाँ राष्ट्रीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कुछ मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर हमारा राष्ट्रीय जीवन फलता-फूलता रहा है। हिंदू ऋषियों ने उन्हें उद्‌घोषित किया हुआ है। वही राष्ट्र

की मुख्य धारा है। हम चाहते हैं कि लोग अपनी पहचान न खोते हुए भी इस राष्ट्रीय प्रवाह में सम्मिलित हों।

प्रश्नः पहचान से आपका क्या आशय है?

उत्तरः मुसलमान को सच्चा और ईमानदार मुसलमान बनना चाहिए। सच्चा और ईमानदार बनने के लिए हम मदद करेंगे। दुनिया के विभिन्न स्थानों से आए लोगों ने इस देश में ठहरने और रहने की इच्छा प्रकट की। यहाँ के आदर्श और जीवन-दर्शन को उन्होंने अपनाया। यहाँ के जीवन से अपने को समायोजित किया। मुख्य धारा को समृद्ध करने हेतु उन्होंने अपना योगदान भी दिया, किंतु दुर्भाग्य से मुसलमानों ने स्वयं को इस प्रक्रिया से दूर रखा।

प्रश्नः आज की अवस्था क्या है? क्या वे अलग ही हैं?

उत्तरः कोई और क्या कह सकता है? अन्यथा मजहबी दंगे होते ही नहीं, भारत विभाजित नहीं होता, लाल किले पर मुस्लिम झंडा फहराने की बातें नहीं होतीं। दुःख की बात है कि ऐसी मनोवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाता है।

प्रश्नः आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि मुसलमान अलग हैं?

उत्तरः हम उन्हें अलग नहीं समझते। वे स्वयं अपने को अलग समझते हैं।

प्रश्नः यही बात वे भी कहते हैं?

उत्तरः यह गलत है। अलगाववादी प्रवृत्तियाँ किन्होंने प्रारंभ कीं?

प्रश्नः मुसलमान और ईसाई धर्म में इतनी बड़ी संख्या में लोग परिवर्तित क्यों हो रहे हैं?

उत्तरः इसका एक कारण उनकी बर्बरता, धोखाधड़ी और बरजोरी है। इसके अलावा अपने समाज का एक वर्ग यह सोचता है कि यदि शासक-वर्ग का धर्म (मुसलमान या ईसाई) अपना लिया तो उन्हें शासक-वर्ग के विशेषाधिकार प्राप्त हो जाएँगे।

११. राष्ट्र, समाज व देश

प्रश्नः हमारे राष्ट्र की मूल व्याधि क्या है?

उत्तरः राष्ट्रीय चेतना का अभाव और उसके परिणामस्वरूप अलगाव-वाद की प्रवृत्ति में वृद्धि।

प्रश्न: हमारी समाज-व्याधियों के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग औषधि सुझाता है। एक सर्वमान्य उपाय कैसे खोजा जाए?

उत्तर: प्रत्येक ने सुधार की अपनी पद्धति अपनाने में कोई हानि नहीं है, बशर्ते वह प्रामाणिक हो।

प्रश्न: हिंदू कोड बिल के संदर्भ में आपके विचार क्या हैं?

उत्तर: समाज की स्वाभाविक प्रगति के कालक्रमानुसार कायदे कानूनों का निर्माण स्वाभाविक रूप से होता है और वे निर्धारित होते जाते हैं। सत्ता उनकी मान्यता निर्धारित करती है। यही विकास की गति है। सरकार का कार्य मान्यता देने का है, न कि पथ-प्रदर्शन का। पथ-प्रदर्शक तो व्यवहारी दुनिया से ऊपर उठे हुए लोग ही होने चाहिए। वे पूर्वाग्रह से अलिप्त और जनहितचिंतन में संलग्न हों। प्राचीनकाल में हमारे देश में जंगलों में रहनेवाले ऋषि-मुनि ऐसे ही थे। वे ही समाज के पथ-प्रदर्शक थे। राजा केवल उनके मार्गदर्शन को क्रियान्वित करनेवाला होता था। आज के अनेक राजनैतिक दल अपने विचारों के अनुसार समाज को ढाल रहे हैं। उनका कार्य राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित होता है।

प्रश्न: हिंदू कोड बिल पर आपको और कोई आपत्ति है?

उत्तर: हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष है, उसमें केवल हिंदुओं के लिए कानून बनाना सर्वथा अनुचित है।

प्रश्न: क्या शारदा कानून (बाल-विवाह पर प्रतिबंध) उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ?

उत्तर: क्या उपयोगी है? जहाँ तक मेरी जानकारी है, उसे जिनके लिए बनाया गया है, उनपर उसका ना के बराबर प्रभाव है और जिनके लिए उसकी आवश्यकता नहीं थी, उनकी उसके बिना कोई हानि नहीं। कुछ गाँवों में अभी भी बाल-विवाह संपन्न हो रहे हैं। शिक्षित समाज में तो इस कानून की आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि उनमें बालविवाह की प्रथा ही नहीं है।

बहुत सी बातों का समाज की आवश्यकता के अनुसार उद्भव होता है। उदाहरण के लिए– नागपुर और पड़ोस के क्षेत्र में बुनकर समाज में बहुपत्नीत्व की प्रथा चल पड़ी है। इन बुनकरों को काम के लिए अधिक मजदूर चाहिए, किंतु उन्हें मेहनताना देने

लायक उनकी आर्थिक स्थिति नहीं है। इसलिए वे सोचते है कि बहुपत्नीत्व उनके लिए आवश्यक है।

प्रश्न: हमारी सरकार हर युद्धकालीन संकट के समय प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता एवं समाजवाद की रक्षा के नाम पर लोगों का आह्वान करती है। क्या वह आह्वान लोगों के लिए हृदयस्पर्शी होता है?

उत्तर: हिंदू-परंपरा में प्रजातंत्र का ऊँचा स्थान है। बोलने की, सोचने की और कर्म के अधिकार की जितनी स्वतंत्रता हिंदू-परंपरा में है और कहीं नहीं। संप्रदायनिरपेक्षता का अर्थ यदि यह है कि राज्य किसी विशेष मजहब के प्रचार-प्रसार से न जुड़े और सभी धर्मों का समान आदर करे, तो वह हिंदू दर्शन ही है। पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता के विचार से वह अधिक श्रेष्ठ है। वहाँ मात्र सहनशीलता की बात कही गई है। सभी धर्म समान रूप से पवित्र हैं, यह हिंदू दर्शन है। यदि समाजवाद का अर्थ आर्थिक विषमताएँ दूर करना है, तो हिंदू धर्म और व्यवहार ही सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्रभावी गारंटी है।

लोगों के मन में विभिन्न प्रकार की धारणाओं को प्रस्थापित करने में हिंदू-परंपरा और हिंदू राष्ट्रवाद ही सहायक हो सकता है। वे युगों से हिंदू के रक्त में हैं। त्याग और वीरता जैसे परंपरागत सद्गुणों के पोषण का मुख्य प्रेरणास्रोत इसी में विद्यमान है, जो लोगों को युद्ध जैसे राष्ट्रीय संकट के समय सर्वस्व न्योछावर करने के लिए उद्यत करता है।

प्रश्न: व्यक्ति के विकास का भारतीय दृष्टिकोण क्या है?

उत्तर: पश्चिम सामान्यतः दो पद्धतियों पर निर्भर है– एक लोकतंत्र की और दूसरी साम्यवाद की। लेकिन अनुभव यह है कि प्रजातंत्र लोगों में स्वार्थीपन की भावना का पोषण करता है। एक व्यक्ति को दूसरे के विरोध में खड़ा करता है। ऐसे में व्यक्ति के मन से शांति गायब हो जाती है, फिर आध्यात्मिकता के बढ़ने की कोई संभावना नहीं रहती। चुनाव के समय होनेवाली स्वप्रशंसा और परनिंदा के कोलाहल से आध्यात्मिक विचारों का ह्रास ही होता है।

साम्यवाद व्यक्तित्व स्वातंत्र्य समाप्त कर उन्हें एक लकड़ी से हाँकता है, किंतु मनुष्य केवल पशु नहीं है कि खाने पीने व बच्चे

पैदा करने में संतोष कर ले। उसमें कुछ ऐसी प्रेरणाएँ हैं, जो भौतिक वस्तुएँ उपलब्ध करा कर संतुष्ट नहीं की जा सकतीं।

हमारी भारतीय समाज-रचना में व्यक्ति स्वतंत्रता और समाज-व्यवस्था– दोनों का समन्वय स्थापित किया गया था। व्यक्ति आर्थिक दासत्व से मुक्त था। वह अपने व्यवसाय के प्रति जन्म से ही आश्वस्त रहता था। व्यक्ति सांसारिक आवश्यकताओं की चिंता से मुक्त हो और ईश्वरप्राप्ति का मार्ग उसके लिए सरल हो सके, इसकी व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में सभी जातियों में उच्च अध्यात्ममार्गी संतों ने जन्म लिया। आध्यात्मिक आधार के प्रजातंत्र का यह श्रेष्ठरूप है। पश्चिम के दार्शनिकों ने अब इस दिशा में विचार करना प्रारंभ कर दिया है।

प्रश्न: राज्य की भारतीय धारणा की विशेषता क्या है?

उत्तर: पश्चिम में राज्यों का उत्तरदायित्व लोगों की भौतिक उन्नति की चिंता करना ही माना गया है। इसके विपरीत हमारी धारणा यह है कि राज्य न केवल व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं के लिए उत्तरदायी है, बल्कि व्यक्ति को सद्गुणसंपन्न बनाना भी उसकी जिम्मेदारी है।

प्रश्न: 'हिंदू' शब्द की ठीक परिभाषा क्या है?

उत्तर: कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिन्हें हम बिना परिभाषा के ही समझ सकते हैं। 'हिंदू' उनमें से एक है। 'हिंदू' शब्द से एक समाज-विशेष का बोध होता है। हम उसे उसी प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

प्रश्न: स्वामी दयानंदजी ने तो कहा है कि 'हिंदू' नाम विदेशियों द्वारा दिया हुआ है जिसका कि अर्थ है 'डाकू'?

उत्तर: मैं इतिहासज्ञ होने का दावा तो नहीं करता, किंतु 'हिंदू' शब्द को हम केवल इसलिए स्वीकार करते हैं कि वह प्रचलित है तथा लोगों ने उसे अपना भी लिया है।

प्रश्न: आपके मतानुसार 'हिंदू' शब्द किस बात की ओर संकेत करता है?

उत्तर: 'हिंदू' शब्द समाज-विशेष की ओर संकेत करता है। प्रचलन में भी शब्द का यही अर्थ है।

प्रश्न: क्या 'हिंदू' शब्द हमारे शास्त्रों में कहीं पाया जाता है?

उत्तर: क्यों नहीं? 'हि' हिमालय से लिया गया और 'इंदू' इंदु सरोवर (दक्षिण महासागर) से। इसमें हमारी मातृभूमि के संपूर्ण विस्तार का वर्णन आया है। 'बृहस्पति आगम' में भी उल्लेख है–

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम्।
तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्ष्यते।।

प्रश्न: 'हिंदू' के बजाए 'आर्य' क्यों नहीं?

उत्तर: निःसंशय आर्य गौरवशाली और प्राचीन नाम है। किंतु गत हजार वर्ष से वह प्रचलन से बाहर हो गया है। ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों के दुष्टतापूर्ण प्रचार से हम लोगों के मन में आर्य-द्रविड़ विवाद के विषाक्त विचार प्रसारित किए गए। इस प्रकार 'आर्य' शब्द से हमारे देश और लोगों का संपूर्ण चित्र नहीं आता।

प्रश्न: 'हिंदू' शब्द के स्थान पर 'भारतीय' क्यों नहीं?

उत्तर: निःसंशय प्राचीन काल से भारतीय शब्द भी हमसे जुड़ा हुआ है। वह हमारा नाम हैं। किंतु उस शब्द के संदर्भ में गलत धारणा बनी है। सामान्यतः इसे 'इंडियन' शब्द के अनुवाद के रूप उपयोग में लाया जाता है, जिसमें विभिन्न समुदाय, जैसे– मुस्लिम, ईसाई आदि, जो इस भूमि में रहते हैं, का अंतर्भाव होता है। जब हम विशिष्ट हिंदू-समाज इंगित करना चाहते हैं तब 'भारतीय' शब्द से भ्रम उत्पन्न होने की संभावना है। 'हिंदू' शब्द ही ऐसा है जो हमारे भावों को पूर्ण व स्पष्टता से व्यक्त करता है।

प्रश्न: क्या भारत नाम प्राचीन काल से प्रचलन में है?

उत्तर: हाँ। संकल्प करते हुए हम कहते हैं– 'जम्बू द्वीपे भरत खंडे'।

प्रश्न: तब क्यों कर आप अपनी प्रार्थना में 'हिंदू भूमि' का उल्लेख करते हैं?

उत्तर: आप भूलते हैं कि प्रार्थना के अंत में हम 'भारत माता' की जय की घोषणा करते हैं।

प्रश्न: आपने हमेशा 'भारतीय राष्ट्र' को 'हिंदू राष्ट्र' ही समझा है। यह कहाँ तक सही है?

उत्तर: हिंदू राष्ट्र संबंधी धारणा स्पष्ट करने दो। हिंदू शब्द सांप्रदायिक नहीं है। यह 'लोगों' और उनके श्रेष्ठ जीवनमूल्यों की ओर इंगित करता है। हम कुछ आधारभूत बातों पर विशेष जोर देते हैं–

मातृभूमि के प्रति भक्ति, सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति निष्ठा, प्राचीन इतिहास के प्रति अभिमान, अनन्य श्रेष्ठ पूर्वजों का सम्मान और वैभवशाली व सुरक्षा की भावना से ओतप्रोत सामान्य जनजीवन-निर्माण का संकल्प। इन सब बातों का 'हिंदू राष्ट्र' की धारणा में अंतर्भाव होता है। व्यक्ति की उपासना-पद्धति से इस धारणा का कोई संबंध नहीं है।

प्रश्न: क्या आप 'हिंदू राज्य' चाहते हैं?

उत्तर: 'हिंदू राज्य' शब्द से दूसरे संप्रदायों को समाप्त करनेवाले मजहबी राज्य का गलत अर्थ अनावश्यक रूप से लगाया गया है। एक तरह से हमारा वर्तमान राज्य हिंदू राज्य ही है। जब बहुसंख्य जनसंख्या हिंदू ही है, तब लोकतंत्रीय पद्धति से राज्य हिंदू ही है। यह संप्रदायनिरपेक्ष भी है। जो अहिंदू हैं, उन्हें यहाँ रहने का समान अधिकार है। जो लोग यहाँ रहते हैं उनमें से किसी को भी उँचे पद पर विराजमान होने से राज्य वंचित नहीं रख सकता। इस परिस्थिति में इस राज्य को 'हिंदू' या 'सेक्युलर' नाम देना अनावश्यक है।

प्रश्न: विभिन्न प्रकार के पंथ, जातियाँ, भाषाएँ, प्रथाएँ और लोगों की आदतें होते हुए आप इसको एक समाज कैसे कह सकते हैं? आप जिसे 'हिंदू' नाम से पुकारते हैं, वह एक जीवन-पद्धति कहाँ है?

उत्तर: हिंदू जीवन-पद्धति को ऊपरी तौर से देखने के कारण ही यह प्रश्न उपस्थित होता है। वृक्ष का उदाहरण लें– एक वृक्ष के विभिन्न अंग– शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल, जड़ आदि होते हैं, लेकिन उनका रंग रूप और आकार में कोई संबंध नहीं होता। सब एक-दूसरे से पृथक दिखाई देते हैं। किंतु विषमता बाह्य होती है। सब एक ही वृक्ष के विविध आविष्कार हैं। वृक्ष के अंगों में एक ही जीवन-रस प्रवाहित होता है, उन्हें पोषित करता है। इसी प्रकार वैविध्यपूर्ण समाज हमारे सामाजिक जीवन की विशेषता है।

प्रश्न: 'हिंदू संस्कृति' की परिभाषा आप क्या करेंगे?

उत्तर: इतने अल्प समय में 'संस्कृति' की परिभाषा करना कठिन है। संस्कृति केवल नृत्य, वाद्य गान आदि कलाओं में सन्निहित नहीं है और न इसका मापदंड मनुष्यों का भौतिक ऐश्वर्य या साधन ही है।

किसी जाति या राष्ट्र का नैतिक विकास और महत्ता ही उसकी संस्कृति के द्योतक हैं। संघ का कार्य केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में ही सीमित है।

प्रश्न: उस वस्तु का क्या उपयोग, जिसकी व्याख्या नहीं कर सकते?

उत्तर: वैद्यकीय विज्ञान की प्रगति का विकास जीवन को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से हुआ है। किंतु आधुनिकतम वैज्ञानिक भी 'जीवन क्या है'– इसकी व्याख्या करने में समर्थ नहीं है, मगर उससे मेडिकल साईन्स की उपादेयता में कोई रुकावट नहीं आती। उसका जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव ही उसकी वास्तविक उपादेयता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होता है। यद्यपि संस्कृति सत्य है और उसका हमारे जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, पर हम उसको परिभाषित नहीं कर सकते।

प्रश्न: धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक राज्य में यह सांस्कृतिक प्रश्न क्या उलझन पैदा नहीं करेगा?

उत्तर: धर्मनिरपेक्ष राज्य में संस्कृति एक पृथक विषय है। जो लोग सांस्कृतिक कार्य में लगे हैं, उनका क्षेत्र उनसे बिल्कुल अलग है, जो लोग राज्य कार्य में संलग्न हैं। अतः संघर्ष की कोई आशंका नहीं है।

प्रश्न: आर्थिक सुधार के बिना सांस्कृतिक कार्य कैसे हो सकता है?

उत्तर: यद्यपि आर्थिक प्रश्न मानव मात्र के लिए महत्त्वपूर्ण है, तथापि यह आवश्यक नहीं कि यह उसी पर अवलंबित रहे। अभी तक के इतिहास से तो यही पता चलता है कि सांस्कृतिक कार्य जहाँ सफलतापूर्वक हुआ है, वहाँ आर्थिक समस्या हमेशा मुँह बाए खड़ी रही। आर्थिक प्रश्न के कारण सांस्कृतिक कार्य में कभी बाधा नहीं आई।

प्रश्न: क्या आप यह नहीं मानते कि सांस्कृतिक धारणाएँ देशकालानुरूप बदलती रहती हैं?

उत्तर: मूलभूत धारणाएँ तो कभी नहीं बदलतीं, उनका बाह्य स्वरूप ही बदला करता है। हम उनको ग्रहण करते हैं, जो समान हैं, जो भेदमूलक हैं, उन्हें त्याग देते हैं।

प्रश्न: इस देश के लिए 'भारत' नाम ही क्यों चुना है?

उत्तर: हमारे प्राचीन साहित्य में प्रचलित यही अंतिम महत्त्वपूर्ण नाम है।

प्रश्न: क्या आपका ऐसा विश्वास है कि हिंदू संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ है।

उत्तर: 'सर्वश्रेष्ठ' का उत्तर देने के लिए अन्य संस्कृतियों से तुलना करना आवश्यक हो जाता है। पर मुझे तो बाहरी संस्कृतियों की कोई जानकारी नहीं है। मैं केवल हिंदू संस्कृति के बारे में ही जानता हूँ।

प्रश्न: अक्सर हिंदू संस्कृति को प्रगतिविरोधी, समानताविरोधी, धनाढ्यों व शोषणकर्ताओं को आश्रय देनेवाली के रूप में चित्रित किया जाता है?

उत्तर: उपनिषद् के एक सर्वज्ञात श्लोक 'ईशावास्यमिदं सर्वं .....' में घोषणा गई है कि संपूर्ण सृष्टि में ईश्वर का वास है। ईश्वर को अर्पित कर केवल शेष का भोग करो। दूसरे के धन की इच्छा मत करो। हम जो भी धन अर्जित करें, उसमें से बहुत थोड़ा अपने लिए उपयोग में लाएँ, शेष संपूर्ण समाज को अर्पित कर दें। मनु ने कहा है कि उससे अधिक पर अधिकार जताना या उससे अधिक का स्वयं के लिए उपयोग करना चोरी करने के तुल्य है।

प्रश्न: जिस सांस्कृतिक अर्थ में आप 'हिंदू' शब्द का उपयोग करते हैं, क्या मुस्लिम, ईसाई आदि स्वयं का धर्म न छोड़ते हुए हिंदू बन सकते हैं?

उत्तर: आपके प्रश्न में ही अलगाव स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। जब कोई स्वयं को हिंदू घोषित करता है, तब हिंदू आचरण उसके लिए अवश्यंभावी होना ही चाहिए।

प्रश्न: यदि आचरण ही एकमात्र कसौटी है और जो हिंदू खान-पान, रहन-सहन आदि में मुसलमान व ईसाइयों के समान जीवन-पद्धति अपनाते हैं, पर उनको हिंदू माना जाता है। तब मुसलमान व ईसाइयों को क्यों नहीं मानते?

उत्तर: देशभर में प्रवास करने के पश्चात् मैंने हिंदू समाज की अंतर्भूत एकता का अनुभव किया है। सभी दृश्य विविधताएँ केवल बाह्य स्वरूप की हैं। उस एकता ने ही हमें वस्तुस्थिति की ओर देखने का विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान किया है। हजारो वर्षों की गुलामी के

बावजूद वह किसी न किसी रूप में अभी भी विद्यमान है।

प्रश्न: क्या आप यह नहीं मानते कि समय के अनुसार संस्कृति में परिवर्तन होता है?

उत्तर: आधारभूत बातों में परिवर्तन नहीं होता। केवल बाह्य स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है।

प्रश्न: हिंदू संस्कृति का एकाध स्वरूप, जिसपर आप जोर देना चाहते हैं, बता सकते हैं?

उत्तर: सभी हिंदू एक हैं और समान हैं।

प्रश्न: क्या आपको नहीं लगता कि संस्कृति से रोटी का महत्त्व अधिक है?

उत्तर: ईसा ने कहा है– 'मनुष्य केवल रोटी के सहारे नहीं जीता।'

प्रश्न: हिंदू संस्कृति के विकास से क्या मिली-जुली संस्कृति की प्रगति में बाधा उत्पन्न नहीं होगी?

उत्तर: आवश्यक नहीं। 'मिली-जुली संस्कृति' नाम की कोई चीज होगी भी तो वह दुर्बल और अक्षम घटकों में नहीं पनप सकती। संस्कृति की मूल धारा अन्य सांस्कृतिक प्रवाहों को आत्मसात करते हुए भी स्वतः की अलग पहचान रख सकती है।

प्रश्न: क्या हिंदू संस्कृति के संवर्धन में वर्ण-व्यवस्था की पुनर्स्थापना निहित है?

उत्तर: नहीं। हम न जातिप्रथा के पक्ष में हैं और न ही उसके विरोधक हैं। उसके बारे में हम इतना ही जानते हैं कि संकट के कालखंड में वह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई थी और यदि आज समाज उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं करता, तो वह स्वयं समाप्त हो जाएगी। उसके लिए किसी को दुःखी होने का कारण भी नहीं है।

प्रश्न: क्या वर्ण-व्यवस्था हिंदू समाज के लिए अनिवार्य नहीं है?

उत्तर: वह समाज की अवस्था या उसका आधार नहीं है। वह केवल व्यवस्था या एक पद्धति है। वह उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है अथवा नहीं, इस आधार पर उसे बनाए रख सकते हैं अथवा समाप्त कर सकते हैं।

प्रश्न: क्या देशों के आपसी विवाद हल करने के लिए हिंदू धर्म युद्ध करने की आज्ञा देता है?

उत्तर: नहीं। हमारा धर्म युद्ध को सबसे अंतिम उपाय बताता है। प्रारंभ में ही क्षोभ में आकर बिना विचार किए आक्रमण करने की अनुमति धर्म नहीं देता।

प्रश्न: क्या सामाजिक जीवन में हिंसा के लिए कोई स्थान है?

उत्तर: हाँ। सर्जन के चाकू की तरह इसका उपयोग होना चाहिए। मरीज का जीवन बचाने के उद्देश्य से उसके शरीर के दूषित अवयव को हटाने के लिए डाक्टर चाकू का प्रयोग करता है। उसी प्रकार किसी सामाजिक बीमारी को दूर करने के लिए अथवा किसी असाधारण परिस्थिति में शल्यक्रिया रूपी हिंसा की आवश्यकता पड़ सकती है। मगर दूसरी अन्य शर्तें पूरी होनी चाहिए। जो भी हिंसा का सहारा ले, उसे उसपर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। कब, कहाँ, किस मात्रा में उसका प्रयोग हो, इसका पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे कब रोकना है और उसके द्वारा होनेवाली क्षति की पूर्ति करने की योजना भी चाहिए।

प्रश्न: पुनर्जन्म पर विश्वास करने के लिए कोई सशक्त प्रमाण है?

उत्तर: निश्चय ही हैं। पश्चिमी विद्वान भी इस संबंध में प्रमाण एकत्रित करते घूम रहे हैं। पूर्वजन्म का हमें स्मरण नहीं है- केवल यही तथ्य इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। क्या हम स्मरण कर सकते हैं कि किसी निश्चित दिन हमने क्या खाया था? हम प्रमाण न दे सकते हों, पर यह तो सत्य है कि हमने खाया था। प्रमाण न दे सकने के कारण वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता।

कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें अपने पिछले जीवन का स्मरण है। मेरा स्वयं का एक अनुभव है। कुछ वर्ष पूर्व संघ-कार्यक्रम के लिए एक देहात में गया था। प्रथम बार ही मैं उस देहात में गया था। जिस घर में मेरे निवास की व्यवस्था थी, वहाँ मुझे ले जाया गया। वह मकान लगभग सौ वर्ष पुराना होगा। मैं जैसे ही वहाँ गया, सीधे उस कमरे में चला गया जिसमें मेरे रुकने की व्यवस्था की गई थी। यह देख कर मकान मालिक स्तंभित रह गया। मैंने उसे बताया कि मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे मैं इस घर और इस कमरे में रह चुका हूँ।

प्रश्नः क्या संघ के कार्यकर्ता शाकाहारी होते हैं?

उत्तरः नहीं। हमारे शास्त्रों ने इस विषय में कोई नियम नहीं बनाया हुआ है। हाँ, शाकाहार की प्रशंसा अवश्य की है, उसे श्रेष्ठ बताया है। भगवान मनु ने कहा है—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।

(मनुस्मृति ५-५६)

मांसभक्षण, मद्यपान और मैथुन में दोष नहीं है। मनुष्यों में यह गुण प्रकृति प्रदत्त हैं, किंतु इनसे निवृत्ति लेना अधिक श्रेष्ठ है। हमारे शास्त्रों में सकल जगत् का व्यापक विचार किया गया है। विभिन्न व्यक्तियों की रुचि व मानसिक स्थिति का विचार कर उसके अनुसार विभिन्न नियम बनाए गए हैं।

प्रश्नः शास्त्रों में शाकाहार की प्रशंसा तो की होगी?

उत्तरः हाँ, की है। किंतु सबके लिए किसी प्रकार का कड़ा नियम नहीं है।

प्रश्नः तब गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने के लिए कानून बनाने का आग्रह क्यों?

उत्तरः क्योंकि गाय की बात कुछ विशेष है। उसे अन्य पशुओं के वर्ग में नहीं रखा जा सकता। वेदों में गाय को 'अघन्य' कहा गया है, दूसरे जानवरों को नहीं।

प्रश्नः दूसरे जानवरों की हत्या पर प्रतिबंध लगाने की वकालत आप नहीं करेंगे?

उत्तरः नहीं। हमारे शास्त्रों की भावना को समझिए। वह दूसरे सांप्रदायिक मतों के समान नहीं है। वे हमें एक सँकरी गली से जाने की आज्ञा नहीं करते। उन्होंने सभी मानवीय दुर्बलताओं का विचार किया है। उदाहरण के लिए— काम, क्रोध, लोभ, परिग्रह से दूर रहकर ब्रह्मप्राप्ति को लक्ष्य बनाने के लिए कहा है। किंतु हर व्यक्ति को विवाह करने, सुखी और वैभवशाली जीवन व्यतीत करने को कहा। क्योंकि हर कोई ब्रह्म साक्षात्कारी नहीं हो सकता, पर उस श्रेष्ठ अवस्था का लक्ष्य सबके सामने रखा गया। यह हमारे धर्म की विशेषता है, जो सर्वव्यापक एवं अत्यंत व्यावहारिक है। इसलिए इसे 'धर्म' कहा गया और दूसरों को केवल 'मत' कहते हैं, जो सभी

को एक डंडे से हाँकते हैं।

प्रश्न : नम्रता, उपकार और मासूमियत की साक्षात मूर्ति गाय को संस्कृति का प्रतिरूप माना गया है। वहीं सिंह का जंगल के राजा के रूप में वर्णन किया गया है। उसे भी हमारा सांस्कृतिक चिह्न माना गया है। इन दो विरोधी बातों का समन्वय कैसे किया जाए?

उत्तर : हाँ। दोनों हमारे सांस्कृतिक चिह्न हैं। एक तरफ श्रीकृष्ण भगवद्गीता का उपदेश देते हैं और दूसरी ओर सुदर्शन चक्र धारण करते हैं। हमारी संस्कृति का आदेश है– इदमू ब्रह्म इदं क्षात्रम्।

प्रश्न : हिंदू संस्कृति में स्त्रियों के संबंध में विशेष क्या बताया गया है?

उत्तर : हिंदू स्वतः की पत्नी को छोड़कर सभी महिलाओं को माता के रूप में देखता है, जबकि दूसरे अपनी माता को छोड़कर सभी को भोग की वस्तु समझते हैं।

प्रश्न : महाभारत में क्या विशेषता हैं?

उत्तर : महाभारत मानव-जीवन की दृष्टि से संपूर्ण ग्रंथ है। उसमें धर्म के अंतर्गत समाज-व्यवस्था, अर्थ के अंतर्गत प्रशासन-व्यवस्था और संपत्ति, काम के अंतर्गत मानवी तृष्णा और उनकी तृप्ति का विज्ञान तथा मोक्ष के अंतर्गत सभी दर्शनों व संप्रदायों के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति का वर्णन समाहित है।

प्रश्न : हमारे धर्म-ग्रंथों के विषय में सामान्यतः यह धारणा है कि वे सामाजिक जीवन के स्थान पर व्यक्तिवादी जीवन का उपदेश देते हैं। इसमें कितनी सच्चाई है?

उत्तर : हमारा सर्वाधिक पुरातन एवं श्रेष्ठ धर्म-ग्रंथ है ऋग्वेद। उसमें सामूहिक, संगठित एवं वैभवशाली जीवन के लिए कुछ विशेष निर्देश सारांश रूप में दिए गए हैं। उसमें कहा गया है कि 'हमारे मन एक होने चाहिए, विचार समान होने चाहिए, एक-दूसरे की सहायता करते रहना चाहिए और सुखी व समृद्ध जीवन की कामना करना चाहिए।

प्रश्न : हिंदू जीवन-पद्धति की रचना ठोस आधार पर हुई है, इसका प्रमाण क्या है?

उत्तर : शक, हूण, मुस्लिमों जैसी विदेशी शक्तियों ने हम पर असंख्य

आक्रमण किए। हम पत्थर की तरह अडिग रहे। सामाजिक जीवन का ढाँचा बनाए रखते हुए हमने उनका सामना किया। उसके बाद पुर्तगाली फ्रेंच, डच और अंग्रेजों जैसे कुटिल यूरोपियन लोग आए। उन्होंने धूर्ततापूर्वक संस्कृति पर हमारे विश्वास को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इन विपरीत परिस्थितियों में भी हम उसी जीवन-पद्धति पर अवलंबित रहे तथा कठिन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की। इतिहास के प्रारंभ से ही हमारे यहाँ श्रेष्ठ संत और सम्राट हुए हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक भारत ने भी विवेकानंद, रामतीर्थ, महात्मा गाँधी समान नररत्नों को जन्म दिया है। क्या यह पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि हिंदू जीवन-पद्धति ठोस आधार पर बनी है।

प्रश्न: कोई मनुष्य जन्म से हिंदू, मुसलमान या ईसाई नहीं होता। भेद तो बाद में किया जाता है?

उत्तर: दूसरों के लिए यह सही होगा, किंतु हिंदू तो माता के गर्भ से ही प्रथम संस्कार पाना प्रारंभ करता है। अंत में मृत शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। जन्म के पहले से मृत्यु तक होनेवाले सोलह संस्कार उसको हिंदू बनाते हैं। वस्तुतः हम अपनी माँ के गर्भ से बाहर आने के पहले से ही हिंदू हैं। दूसरों ने तो इस संसार में केवल बिना नाम के मानव शिशु बनकर जन्म लिया है। उसके बाद सुन्नत या बप्तिस्मा होने पर वे मुसलमान या ईसाई बनते हैं।

प्रश्न: हिंदू मंदिरों में मुसलमान और ईसाइयों को जाने की अनुमति नहीं है, जबकि हिंदुओं के लिए मस्जिद या चर्च में प्रवेश की कोई रोक नहीं है। ऐसा क्यों?

उत्तर: हिंदू लोग चर्च और मस्जिद को पूजा का स्थान मानते हैं, इसलिए वे उनका सम्मान करते हैं। मुस्लिम और ईसाइयों की सोच वैसी नहीं है। वे मूर्तिपूजा को पाप समझते हैं। मुसलमान तो मूर्तिभंजन करने में गौरव अनुभव करते हैं। हमारे देश में अगणित भग्न मूर्तियाँ और उजड़े हुए मंदिर उनकी इस मनोवृत्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हिंदुओं की पूजा-पद्धति का उन्हें ज्ञान न होना कोई महत्त्व की बात नहीं है। यदि वे मंदिरों में आते हैं और अपनी भाषा में, अपनी पद्धति से घुटने टेककर प्रार्थना करते हैं, तो हमें कोई

आपत्ति नहीं होगी। किंतु शपथबद्ध दुश्मनी करने की मनोवृत्ति से मंदिरों में प्रवेश करना, उन्हें अपमानित व भ्रष्ट करने के समान ही है।

प्रश्नः इन दिनों आरामतलब और भोगविलासी जीवन के लिए सत्ता प्राप्ति एक साधन मात्र रह गया है। केवल लालबहादुर शास्त्री इसके अपवाद हैं। प्रधानमंत्री होते हुए भी उनका परिवार किराए के घर में रह रहा था।

उत्तरः यह हमारी परंपरा के अनुरूप ही हैं। चाणक्य विस्तृत मगध साम्राज्य का प्रधानमंत्री होकर भी राजधानी के बाहर छोटी सी झोंपड़ी में रहते थे। विजयनगर साम्राज्य की नींव डालने वाले मध्वाचार्य का आचरण भी ऐसा ही था। दिन के समय राजधानी मे रहकर प्रशासनिक कार्य करते और रात्रि में संन्यासी की कुटिया में लौट जाते थे।

प्रश्नः हमारे समाज जीवन के ढाँचे में संयुक्त परिवार की क्या भूमिका है?

उत्तरः संयुक्त परिवार सहकारिता-तत्त्व का निर्वाह करने वाली एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। किंतु संपूर्ण इतिहास-काल में यह कठोर अपरिवर्तन शील संस्था नहीं रही। आधुनिक काल में भी इसका रूप जैसा उत्तर भारत में है, वैसा मलाबार में नहीं है। आर्थिक और सामाजिक प्रभाव उसे नष्ट-भ्रष्ट करते रहे हैं। उसके बाह्य स्वरूप में परिवर्तन भले ही हों, पर व्यक्ति-व्यक्ति में प्रेम और सेवा का बंधन नहीं टूटना चाहिए।

प्रश्नः दूसरे धर्मों से हिंदू धर्म में प्रवेश का क्या आप स्वागत करेंगे?

उत्तरः यदि अहिंदू, हिंदू धर्म के श्रेष्ठ सिद्धांतों से आकर्षित होते हैं, तो वह स्वागत योग्य है।

प्रश्नः हिंदू किसे कहेंगे?

उत्तरः जो दूसरों पर आक्रमण न करते हुए अपने धर्म का पालन करे, वह हिंदू है।

प्रश्नः आज सभी महत्त्वपूर्ण आंदोलनों का आधार विश्वव्यापी है। चाहे वे पूँजीवादी व साम्यवादी आर्थिकव्यवस्था-संबंधी हो या इस्लाम और ईसाई धर्म-संबंधी हो। सभी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं। इनकी तुलना में हिंदुत्व सीमित और संकुचित नहीं लगता है?

उत्तरः उनकी अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि केवल दिखावा है, सत्य नहीं। प्रत्येक के

पीछे एक शक्तिशाली देश अथवा शक्तिशाली देशों का समूह है। जिनका उद्देश्य शेष विश्व को अपने अधीन रखना है। ये सभी विस्तारवादी और उद्दंडतापूर्ण राष्ट्रवादी हैं, प्रामाणिक अंतर्राष्ट्रीय नहीं। दुर्भाग्य से इस प्रकार के अति आत्मविश्वासी शक्ति के दिखावे से दुर्बल आँखोंवाला हिंदू चकाचौंध हो रहा है।

मेरे विचार में शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय सहजीवन के लिए केवल हिंदू जीवन-पद्धति ही उपयुक्त है। सभी प्रकार के आदर्शों, सिद्धांतों की अपेक्षा हिंदुत्व के पास अंतर्राष्ट्रीयता के लिए अधिक ठोस आधार है।

प्रश्न : हिंदुत्व में ऐसे कौन से गुण हैं, जो दूसरे धर्मों में नहीं हैं?

उत्तर : 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'- सत्य एक है ऋषियों ने उसका अपने अनुभव के आधार पर विविध प्रकार से वर्णन किया है। हिंदू धर्म का यह अद्वितीय सिद्धांत है। दूसरे लोग तो सुख को अपने बाहर खोजते हैं, पर हमारा दर्शन लोगों को स्वयं के अंदर झांककर आनंद की खोज करने को कहता है। यह आंतरिक आनंद ही सच्चा सुख है। इसे 'श्रेयस' नाम दिया गया है। यदि सबको आनंद उपलब्ध कराना हो, तो ऐसी समाज-व्यवस्था स्थापित होनी चाहिए, जिसमें हर किसी को 'श्रेयस' की प्राप्ति हो सके। उसके लिए प्रेरणा हमारी इस दार्शनिक धारणा पर आधारित है कि सभी में अवस्थित आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। भगवद्गीता में कहा गया है कि 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' सभी मनुष्यों की पहचान उनमें स्थित आत्मा के कारण है। इस प्रकार की स्पष्ट घोषणा अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जाती।

प्रश्न : कुछ लोग कहते हैं कि मोक्ष का सिद्धांत व्यक्ति को केवल स्वयं के बारे में विचार करने के लिए बाध्य करता है, सामाजिक दायित्वों तथा कर्तव्यों से दूर हटाता है। क्या यह सही है?

उत्तर : मोक्ष-संबंधी गलत धारणा के कारण ही ऐसा कहा जाता है। जिस आत्मतत्त्व का चिंतन करने के लिए कहा गया है, वह भौतिक नहीं है। वह सर्वांतर्यामी, सर्वातीत और सर्वव्यापी है। जब इस प्रकार से आत्मा का ध्यान लगता है, तब वह व्यक्ति अपने भौतिक क्षुद्र व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाता है।

प्रश्न : अक्सर कहा जाता है कि मोक्ष की धारणा नकारात्मक है। कई

प्रकार के दुःख और पीड़ाओं से मुक्ति को ही मोक्ष माना गया है। क्या ऐसा ही है?

उत्तर: सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाने के अर्थ मात्र में यह नकारात्मक धारणा है। किंतु यह तो इससे भी अधिक पूर्णमुक्ति की धारणा है, जो द्वेष और मोहजनित मानसिक विकारों तथा मन को भटकाती है। वह सांसारिक बंधनों से अलिप्त रहकर कर्म प्रवृत्त रहने की स्वाधीनता है।

प्रश्न: कभी-कभी तर्क दिया जाता है कि जब सामाजिक असंतुलन और अवनत अवस्था के कारण लोग एक-दूसरे की मदद नहीं करते थे और व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध नहीं थी, तब मोक्ष की धारणा ने जन्म लिया। क्या यह सही है?

उत्तर: सच तो यह है कि जब समाज समृद्धि के उच्च शिखर पर था, विजयी अवस्था में था, उसकी सेना और सेवाव्रती लोग चारों दिशा में फैले थे, तब मोक्ष की धारणा की उत्पत्ति हुई।

यह सही है कि किसी सीमा तक सामाजिक संतुलन, परस्पर सहयोग करने की इच्छा, एक-दूसरे के अनुरूप व्यवहार करने से दुःखों में कमी आती है, किंतु इससे संपूर्ण दुःखों की निवृत्ति नहीं होती। समाज की आदर्श अवस्था में भी लोग बीमारी, निराशा, हताशा, प्रियजनों के वियोग आदि के दुःख से दुःखी रहते ही थे। मानसिक क्लेश आदि का उपाय तो मौलिक सिद्धांतों के आधार पर ही किया जा सकता है।

प्रश्न: कुछ लोग राम व कृष्ण को पौराणिक काल के काल्पनिक पुरुष मानते हैं?

उत्तर: ऐसा मानें तो भी अंतर नहीं पड़ता। यदि श्रीराम को पौराणिक माने, तो रुस्तम को भी काल्पनिक ही मानना होगा। मुख्य बात यह है कि मुसलमान को यह अनुभव करना चाहिए कि वे इस देश के साथ एक हैं और उनकी नसों में एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है। वे न तो अरबी हैं, न तुर्क और न ही मंगोल। वे केवल भारतीय हैं, जिनका मजहब बदल गया है। इन भारतीय मुसलमानों के प्रति हिंदू इसलिए शंका की दृष्टि से देखता है, क्योंकि भारत का विभाजन करने में उन्होंने जोर डाला। आज भी ऐसे मुसलमान हैं जो भारत में 'पाकिस्तान जिंदाबाद' के नारे लगाते हैं। उनमें से

कितने ऐसे हैं, जो 'भारत माता की जय' का घोष करते हैं? मैं ऐसे भारतीय मुसलमानों को जानता हूँ, जिन्होंने ओलंपिक के दौरान हॉकी-मैच में पाकिस्तान के मुकाबले भारतीय टीम पराजित होने का समाचार सुनते ही अपने रेडियो-सेट पर पुष्पमालाएँ चढ़ाईं।

प्रश्न: भक्तों का दावा है कि उन्होंने राम, कृष्ण की दिव्यता के साक्षात् दर्शन किए हैं। यह केवल कल्पना, मानसिक अवस्था या मतिभ्रम तो नहीं?

उत्तर: निश्चय ही नहीं। देवता हमारी प्रार्थना और तपस्या का फल अवश्य देते हैं। उचित समय पर अपनी संपूर्ण कांति और तेज के साथ किसी भी रूप में भक्तों के सामने प्रकट होते हैं। हमारे देश में कई स्थानों पर इस प्रकार के उदाहरण हैं, जिनमें राम, कृष्ण, शिव, देवी आदि भक्तों के सामने भौतिक रूप में प्रकट हुए हैं। हम उन्हें देख सकते हैं, उनसे बात कर सकते हैं और उनकी उपस्थिति अनुभव कर सकते हैं। कई बार तो भक्तों के स्पर्श-मात्र से कुछ लोगों ने इसका अनुभव किया है।

प्रश्न: किंतु राम व कृष्ण तो ऐतिहासिक पुरुष थे?

उत्तर: हाँ। तो क्या हुआ? इस दुनिया से प्रस्थान के बाद भी वे अपने भक्तों को मार्गदर्शन करते हैं। अभी हाल ही में रामकृष्ण परमहंस हो चुके हैं। वे अपने भक्तों के सामने सशरीर प्रकट होकर आध्यात्मिक बातों में उनका मार्गदर्शन करते हैं।

प्रश्न: क्या 'मंत्र द्रष्टा' ने मंत्रों का निर्माण किया है? उन्हें मंत्रद्रष्टा क्यों कहा जाता है?

उत्तर: मंत्रों का अस्तित्व तो पहले से ही था। ऋषियों ने अपनी तपस्या के बल पर प्रकाश, उससे ध्वनि का उद्‌गम, ध्वनि से शब्दों का निर्माण होते देखा। जिन ऋषियों ने पहले-पहल मंत्रों की अनुभूति की और उन्हें बताया, वे 'मंत्रद्रष्टा' कहलाए।

प्रश्न: मानसरोवर, बद्रीनाथ तथा ऐसे ही अन्य स्थानों पर मन को शांति का अनुभव होता है। क्या यह सही है?

उत्तर: हाँ। ऊँचाई के स्थानों पर हमारी भावनाओं में परिवर्तन होता है। वातावरण में एक प्रकार की पवित्रता का अनुभव होता है। शांति और आंतरिक सुख की अनुभूति होती है।

प्रश्न: अपनी भौतिक आवश्यकताओं व सुविधाओं की प्राप्ति के लिए भगवान की प्रार्थना करना क्या गलत है?

उत्तर: हम भीख क्यों माँगें। क्या वह नहीं जानता कि हमें क्या चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि उसने जो कुछ दिया है, उसका सदुपयोग करें। दुर्गा सप्तशती में भक्त प्रार्थना करता है 'पुत्रं देहि, धनं देहि, सर्वकामकामांश्च देहि।' एक बार भीख माँगना प्रारंभ किया कि ईश्वर से शुरू कर हर किसी से भीख माँगने लगते हैं। हमारी ऐसी घृणित अवस्था हो गई है कि भीख का कटोरा लेकर चावल, गेहूँ, यंत्र-सामग्री, उन्हें चलानेवाले कारीगर और न मालूम किस-किस बात के लिए विदेशियों के दरवाजे खटखटा रहे हैं। इस कारण हमारी इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास समाप्त हो गया है। उत्पादन की शक्ति का ह्रास हो चुका है।

प्रश्न: नवयुवकों को 'संन्यास' की दीक्षा देने में क्या कोई आपत्ति है?

उत्तर: कोई आपत्ति नहीं, लेकिन संन्यास की दीक्षा देने का अधिकारी वही होता है जो दीक्षा की आकांक्षा रखनेवालों का भूतकाल, पूर्वजन्म, विद्यमान मानसिक झुकाव और भविष्य देख सकने की योग्यता रखता हो। अन्यों को इसका अधिकार नहीं है।

प्रश्न: क्या 'माया', 'मिथ्या' जैसे शब्द ही भ्रम निर्माण करते हैं?

उत्तर: नहीं। इन शब्दों के अंग्रेजी अनुवाद ही भ्रांतिमूलक हैं। 'माया' का अंग्रेजी अनुवाद 'भ्रम' बताया जाता है, किंतु यह सही नहीं है। सही शब्द के अभाव में ही इसका उपयोग किया गया। वैसे ही 'मिथ्या' शब्द का अनुवाद 'झूठा' किया जाता है।

एक बार दर्शनशास्त्र के दो छात्रों में चर्चा हुई कि संसार मिथ्या है, स्वप्न है। इन विषयों पर जोरदार विवाद छिड़ा। एक शंका निर्माण हुई कि यदि संसार मात्र स्वप्न है, तब वह सबको समान क्यों दृष्टिगोचर होता है। स्वप्न में तो हर किसी की अपनी स्वयं की दृष्टि होगी और दो व्यक्तियों की दृष्टि एक समान नहीं हो सकती। कारण यह है कि स्वप्न ईश्वर का है। उस स्वप्न में हम सभी ने हिस्सा लिया हुआ है। इसलिए जहाँ तक हमारा संबंध है, स्वप्न के सत्य होने का भास होता है और दृश्य सबके लिए एक समान ही रहता है। किंतु 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' ऐसा नहीं है, यह तो अनुभूति का विषय है।

प्रश्न: श्रेष्ठ पुरुष का फोटोग्राफ रखना क्या अनुचित है?

उत्तर: नहीं। परंतु वह उसके प्रति सच्ची श्रद्धा और उसका अनुसरण

करने की भावना से रखा जाए, केवल शौक या आत्मसंतुष्टि के लिए न रखा जाए। उस महापुरुष से मानसिक तादात्म्य होने पर उसका जिस रूप में चाहिए, उस रूप में साक्षात्कार हो सकता है।

प्रश्न: यह तो बड़ा कठिन है?

उत्तर: उस मार्ग पर जो नहीं चले हैं, उनके लिए कठिन है। जिन्होंने भक्ति का मार्ग अपनाया है, उनके लिए इष्ट देवता का दर्शन तो प्राथमिक सिद्धि के रूप में ही हो जाता है।

प्रश्न: उसके लिए बहुत अभ्यास की आवश्यकता है?

उत्तर: हर बात के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। शारीरिक बातों के लिए, साइकल चलाने के लिए क्या अभ्यास की आवश्यकता नहीं है?

कभी-कभी बाह्य साधन हमारी सहायता कर सकते हैं। किंतु वास्तविक प्रेरणाशक्ति हमारे अंदर ही होती है। बाह्य प्रतीक के रूप में कुछ भी पर्याप्त होता है। बुद्ध के स्मारक चिह्न के लिए स्तूप बनाए गए। यहाँ तक कि श्रेष्ठ पुरुष जिस स्थान पर चले हैं, वहाँ की धूल भी जीवन में मानसिक शक्ति बढ़ाकर श्रेष्ठ कार्य करने को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त होती है। सब कुछ इस पर निर्भर है कि उसका मानसिक झुकाव किस ओर है पर बाह्य साधनों पर नहीं।

श्रीराम और श्रीकृष्ण के साथ भी ऐसे लोग रहे हैं, जो जीवनभर साथ रहने पर भी उनसे अप्रभावित ही रहे। वे पापी ही बने रहे। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण के साथ सदा साथ रहनेवाले ने ही उन पर स्यमंतक मणि चुराने का आरोप लगाया।

प्रश्न: एक सामान्य भावना ऐसी बनी है कि अनुभूति और तर्क परस्पर विरोधी हैं?

उत्तर: नहीं। ऐसा नहीं है। अनुभूति तर्क का घनीभूत रूप है। वह तर्क की उत्तम अवस्था है। अनुभूति के क्षेत्र में उन कई बातों का समावेश होता है, जिनका तर्क से कोई संबंध नहीं होता।

प्रश्न: वे बातें कौन सी हैं?

उत्तर: उदाहरण के लिए स्थान, काल और कार्य-कारण भाव। विशेष परिणाम घटित होने के लिए कई बातें कारणीभूत होती हैं। किंतु तर्क द्वारा उन्हें समझा नहीं जा सकता। शेक्सपियर ने कहा है—

'दर्शनशास्त्र ने स्वप्न में जो कल्पना की होगी, उससे कहीं अधिक चीजें पृथ्वी और स्वर्ग में हैं।'

प्रश्न : दर्शन या विज्ञान?

उत्तर : उन्होंने दर्शनशास्त्र कहा था। पश्चिम का दर्शनशास्त्र कई बातों को समझने में असमर्थ रहा है। जो समस्याएँ तर्क द्वारा सुलझाई नहीं जा सकती, उनका आकलन अनुभूति से अधिक सरलता से किया जा सकता है।

प्रश्न : वैज्ञानिक विश्लेषण और प्रयोगों द्वारा जो समस्याएँ सुलझाई जाती हैं। क्या वही समस्या आध्यात्मिक साधना से सुलझाई जा सकती हैं?

उत्तर : प्रकृति, यहाँ तक कि निर्जीव सृष्टि में भी आत्मा है, जो ब्रह्म का अंश है। यदि उस ब्रह्म से कोई एकात्म हो, किसी प्रकार की संगति प्रस्थापित कर ले, तो उस अवस्था में वह इस प्रकार की समस्याएँ सुलझा सकता है। तब इस प्रकार की एकात्मता भी संभव है। प्रकृति के गूढ़ तत्त्वों के साथ जिन्होंने तादात्म्य स्थापित कर लिया है, उनके कार्य चिरस्थायी रहेंगे और आने वाले समय में लोकहित के रहेंगे। जो लोग प्रकृति के मूलतत्त्व के विरोध में कार्य करेंगे, उनके कार्य निष्फल सिद्ध होंगे। यहाँ तक कि हानिकर भी होंगे। उदाहरण के लिए सिंधु नदी पर बना सक्कर बाँध अनुपयोगी सिद्ध हुआ है। नदी ने बाँध का मार्ग छोड़कर एक अलग मार्ग अपना लिया, क्योंकि प्राकृतिक शक्तियाँ और उनकी दिशाओं का समुचित ज्ञान प्राप्त नहीं किया गया था। वहाँ प्रकृति की आत्मा को ही भुला दिया गया था। इसलिए फिर से बाँध बाँधने की आवश्यकता हुई। इसके विपरीत एक उदाहरण है। बंगाल में गंगा को ब्रह्मपुत्र से जोड़नेवाली एक नहर है– पद्मा। यद्यपि नदी प्रकृतिप्रदत्त नही हैं, मानवकृत है, किंतु उसका बहाव प्राकृतिक और स्थायी है। इसका अर्थ केवल यही है कि जिन्होंने उसकी योजना बनाई और क्रियान्वित किया, वे प्रकृति को देखने की गूढ़ अंतर्दृष्टि रखते थे।

प्रश्न : जब कोई किसी विशिष्ट विचार पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास करता है, तब नींद हावी होने लगती है। इसमें से बाहर निकलने का कोई मार्ग है?

उत्तर : यह सच है कि चिंतन और ध्यान करने की प्रक्रिया में वह एक बाधा है। जिसने आध्यात्मिक साधना में प्रगति की हो, ऐसे व्यक्ति

से मार्गदर्शन प्राप्त कर बाधा हटाई जा सकती है।

प्रश्न: क्या यह संभव नहीं है कि बिना गुरु के आध्यात्मिक दिशा में प्रगति की जाए?

उत्तर: संभव हो सकता है। प्रश्न यह है कि गुरु कौन है? व्यक्ति के समान ही कोई ग्रंथ भी गुरु हो सकता है। गुरु तो दिशानिर्देशक है, जिसके द्वारा हम अपनी प्रगति को टटोल सकते हैं। यदि कोई पानी के जहाज से प्रवास कर रहा हो और घनघोर अंधेरे के कारण उसका दिशाज्ञान नष्ट हो जाता है, तब वह आकाश में तारों और नक्षत्रों को देखकर दिशा निश्चित करता है। उस समय तारे ही गुरु हैं।

प्रश्न: क्या आध्यात्मिक प्रकाश पाने पर आचरण में परिवर्तन होता है?

उत्तर: होना ही चाहिए।

प्रश्न: आध्यात्मिकता और नैतिकता में क्या कोई संबंध है?

उत्तर: निःसंशय। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में जिस व्यक्ति ने प्रगति की है, वह श्रेष्ठ नैतिक स्तर का होगा ही।

प्रश्न: अध्यात्म के रास्ते पर चलनेवाले साधक के मार्ग में कौन-कौन सी बाधाएँ आ सकती हैं?

उत्तर: अध्यात्म के क्षेत्र में प्रगति कर रहे साधक को हमेशा अष्ट सिद्धियों के मोह का संकट बना रहता है। उसे उनसे सावधान रहना चाहिए।

प्रश्न: वह कौन सा मार्ग है जिसमें उसे संकट न हो?

उत्तर: समष्टि साधना में अष्ट सिद्धियों का कोई संकट नहीं है। हमारे एक कार्यकर्ता ने संन्यास लिया और गुरु की खोज में हिमालय गया। वहाँ अभी भी ऐसे योगी हैं, जो अध्यात्म क्षेत्र में ऊँचे स्थान पर विराजमान हैं, किंतु उनके उदासीन रंग-रूप को देखकर पहचानना सरल नहीं होता। हमारे उस कार्यकर्ता को तपस्यारत एक गोरा (विदेशी) संन्यासी मिला। कार्यकर्ता ने उससे निवेदन कियां कि आप मुझे अपना शिष्य बना लें। उस यूरोपीय संन्यासी ने उससे उसके पूर्व जीवन के बारे में पूछताछ की। इसने बताया कि वह सामाजिक कार्य में रत था। सामाजिक कार्य के बारे में पूर्ण जानकारी चाहने पर कार्यकर्ता ने बताया कि मैं संघ का कार्यकर्ता था। यह मालूम होने पर उस यूरोपियन संन्यासी ने कहा— 'तब

तुम उसे छोड़कर इतने दूर आए ही क्यों? साधना के लिए जिस मार्गदर्शन की तुम्हें आवश्यकता है, वह तो तुम्हें संघ में ही प्राप्त हो जाता। वही ऐसा अध्यात्म योग है, जिसमें कोई संकट नहीं।'

प्रश्न: क्या पांडित्य से स्वयं के अथवा दूसरों के जीवनप्रवाह में परिवर्तन नहीं हो सकता?

उत्तर: श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे– 'कोरे पांडित्य का क्या उपयोग? वह तो गधे की पीठ पर चंदन की लकड़ी का बोझा होने के समान है।'

प्रश्न: क्या सपने सच भी होते हैं?

उत्तर: सामान्य व्यक्तियों के कुछ स्वप्न भविष्यकालीन घटनाओं का संकेत दे सकते हैं। किंतु पवित्र हृदय के व्यक्तियों के सपने सच होते ही हैं। समर्थ रामदास जी ने कहा है कि जो भी उन्होंने सपने में देखा, वह घटित भी हुआ।

प्रश्न: धार्मिक अनुष्ठानों के लिए जो निर्देश दिए गए हैं, सामान्य जनों को अपने दैनिक जीवन में उनका पालन करना कठिन लगने लगा है। क्या किसी सरल पद्धति व सामान्य संस्कारों का निर्देश दिया जा सकता है?

उत्तर: मैं चाहूँगा कि उनके लिए कुछ साधारण से भक्तिपूर्ण संस्कारों में दीक्षा का प्रबंध किया जाए, जिसमें रामनाम या किसी अन्य भगवान का नाम लेना भी पर्याप्त हो। यह कहना अनुचित होगा कि उनका किसी पंथ या किसी विशेष मंत्र में औपचारिक दीक्षा का समारोह नहीं हुआ है, इसलिए वे भक्ति के अधिकारी नहीं हैं। हमारे समाज के सामान्य जनों में से ही ऐसे आध्यात्मिक अधिकारी पुरुष जन्मे हैं, जिन्हें तथाकथित उच्च जातियों से भी प्रेमपूर्वक सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होंने बहुत ही सामान्य कार्यक्रमों के द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार-प्रसार किया है। हमारे धर्मगुरुओं को चाहिए कि लोगों के पास जाएँ और उनमें जो सुप्त भक्ति और सद्‌गुण छिपे हुए हैं, उन्हें जागृत करें।

प्रश्न: सामान्यतः मठाधिपति अपने संप्रदाय में संलग्न रहते हैं। उनसे कैसे आशा की जा सकती है कि वे वैश्विक भ्रातृभावना का आदेश देंगे?

उत्तर: उन्हें प्रचलित प्रथाओं से सावधान होकर उनसे बचकर चलना होगा। जहाँ तक उनके स्वयं के मठ से संबंधित बातें हैं, उस

विशेष पारंपरिक उपासना-पद्धति का पालन करना उनका धर्म-कर्तव्य होगा। किंतु जब वे सामान्य जनों के संपर्क में आते हैं, उन्हें उन्हीं बातों पर जोर देने की आवश्यकता है, जो सबके लिए हितकारी हों। विशिष्ट दार्शनिक प्रणाली और ईश्वर के विशिष्ट नाम-रूप की उपासना और उपदेश कर दूसरों की निंदा करने से संपूर्ण हिंदू-समाज को संगठित अवस्था प्राप्त कराने का उद्देश्य सफल नहीं हो सकता।

प्रश्न: हमारे पास महिलाओं के लिए साक्षरता-अभियान चलाने की योजना हैं। आपके कोई सुझाव हैं?

उत्तर: सर्वप्रथम और अति महत्त्वपूर्ण है उनमें श्रेष्ठ संस्कार उत्पन्न करना। बाद में साक्षरता की बात सोचें। उनमें मातृभूमि के प्रति शुद्ध भक्ति, धर्म पर श्रद्धा और इतिहास पर गौरव की भावना उत्पन्न करने की प्रेरणा दें। पवित्र मातृभूमि की नदियाँ, पर्वत, तीर्थस्थल, देवालय, हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक का चित्र उनके सामने प्रस्तुत करें। उन्हें अपने राष्ट्रजीवन से संबंधित समृद्ध विविधताओं, जैसे– भाषा, साहित्य, कला, सामाजिक परंपराओं से परिचित कराइए। इस प्रकार उनमें राष्ट्र के अंगभूत होने का भाव विकसित करें।

प्रश्न: हर बात घर से प्रारंभ करने के लिए कहा जाता है, परंतु यह कैसे करें?

उत्तर: सर्वप्रथम ब्राह्म मुहूर्त में अपने घर में श्लोक, आरती आदि का पाठ करें और वातावरण पवित्र बनाएँ। हमारी माताओं का हमारे बचपन में किया हुआ भजन, श्लोक आदि का पाठ उनकी पवित्रता और मिठास के कारण आज भी हमारे कानों में गूँजता है। उसने हमारे जीवन को जितना रोमांचित किया हैं, उतना और किसी घटना ने नहीं।

जो भी हमारा जीवन है, उसपर राष्ट्रीय गौरव की छाप होनी चाहिए। घर के दैनिक उपयोग में आनेवाली वस्तुएँ देशी हों– यह प्रण करना चाहिए। इससे उनके राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होगा। यदि हमने चकाचौंध में पड़कर पाश्चात्य संस्कृति की नकल की, तो इस मिट्टी में जन्मी श्रेष्ठ महिलाओं ने जो पवित्र व अतुलनीय परंपराएँ स्थापित की हैं, वे नष्ट हो जाएँगी। इन सब बातों के

कारण ही चरित्र निर्माण होगा। साक्षरता-अभियान आदि कार्य भी सफल हो सकेंगे।

प्रश्न: संन्यासियों में भी गिरावट आई है?

उत्तर: इसका कारण यह है कि शास्त्रों के आदेश-पालन की चिंता कोई नहीं करता। एकांत में अभ्यास और चिंतन के उद्देश्य से चतुर्मास बनाया गया, किंतु इन दिनों बड़े शहरों में ये लोग उत्सव, प्रचार, प्रवचन आदि का आयोजन करते हैं।

आजकल जीवित संन्यासियों की भी जयंती मनाई जाती है, शास्त्रों में जिसकी व्यवस्था नहीं है। केवल मृत्युपरांत ही उनकी पुण्यतिथि मनाई जा सकती है। केवल आद्य शंकराचार्य की जयंती मनाई जाती है, जिन्हें ईश्वर का अवतार माना गया है।

प्रश्न: धर्म और आपद्धर्म के बीच भेद करनेवाली कोई रेखा है?

उत्तर: आजकल आपद्धर्म के नाम पर कुछ भी चलाया जाता है। कोई किसी प्रकार का भेद नहीं करता। सही आपद्धर्म क्या है- यह बताने के लिए एक कथा बताता हूँ। एक बार एक ब्राह्मण को कई दिनों तक खाने के लिए कुछ नहीं मिला। वह अन्न की खोज में अपनी पत्नी के साथ जा रहा था कि भूख व थकान के कारण रास्ते में ही गिर पड़ा। उसने अपनी पत्नी से कुछ खाने के लिए लाने को कहा। वहीं पास में एक महावत अपने हाथी को चना खिला रहा था। ब्राह्मणी ने महावत से अपने पति के खाने के लिए थोड़ा चना देने की प्रार्थना की। महावत ने बताया कि वह नीच जाति में जन्मा है और चना हाथी का उच्छिष्ट है। इतने पर भी उसने कहा कि कोई आपत्ति नहीं। तब महावत ने मुट्ठीभर चना दिया। उसे ब्राह्मण ने खा लिया तथा पुनः अपनी यात्रा प्रारंभ कर दी। महावत ने उसे जाते देखकर कहा कि पानी तो पीते जाओ। ब्राह्मण ने यह कहते हुए पानी पीने से मना कर दिया कि वह उसके हाथ का छुआ कुछ नहीं लेगा। महावत ने विस्मित होकर पूछा, 'अभी तो आपने मेरे हाथ का चना खाया, पर पानी पीने से क्यों मना कर रहे हो?' ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'वह मुट्ठीभर चना न खाकर संभवतः मैं अपनी यात्रा पूरी नहीं कर पाता, रास्ते में ही मर जाता। किंतु अब मैं पानी की खोज में जा सकता हूँ।' उस समय की प्रचलित प्रथा के संदर्भ में यह उदाहरण आपद्धर्म की

भावना भली-भाँति प्रकट करता है।

प्रश्न: समर्थ रामदास ने सामान्य जन के समक्ष हनुमान का आदर्श क्यों रखा?

उत्तर: हनुमान का शरीर वज्र के समान मजबूत था। उनमें अतुलनीय साहस और पराक्रम था। दूसरे सोच भी नहीं सकते, ऐसे कठिन कार्य वे कर सकते थे। किंतु उनमें सर्वश्रेष्ठ गुण था त्याग की भावना और आत्मसमर्पण की वृत्ति का। उसी कारण वे श्रीराम या ईश्वर को पा सके।

प्रश्न: मुसलमानों में मृत शरीर को दफनाने की प्रथा है, क्या इसका कुछ विशेष अभिप्राय है?

उत्तर: वस्तुतः सभी सेमेटिक मतों में यही प्रथा है, क्योंकि उन सभी का विश्वास है कि कयामत के दिन अंतिम न्याय होगा और कब्र में लेटा हुआ हर कोई न्याय सुनने के लिए उठ खड़ा होगा।

प्रश्न: क्या उनकी पौराणिक कथाएँ एक समान हैं?

उत्तर: हाँ। प्रारंभ में पुराना विधान (Old Testament) था। उसमें आधारभूत और मान्य पुराण कथाएँ थीं। कहानियाँ, चरित्र, घटनाएँ एक जैसी ही थीं। इब्राहिम, अब्राहम, इब्राहम एक ही है। ईसाइयों ने उसमें कुछ नई बातों का समावेश कर नया विधान बनाया। वस्तुतः विद्यमान बाइबिल ईसा के लगभग छः शताब्दी के पश्चात् अस्तित्व में आई। किसी ने भी ईसा के बारे में अधिकारिक रूप से कुछ नहीं कहा। उनके बारे में आज हम जो कुछ जानते हैं, वह उनके चार शिष्यों ने जो बताया, सिर्फ वही है। उनके कथन में काफी मतभेद और विरोधाभास हैं, किंतु चर्च की रचना का संपूर्ण श्रेय पॉल को है। इसी कारण उस क्षेत्र के कुछ विद्वान क्रिश्चेनिटी को चर्चेनिटी कहते हैं।

प्रश्न: ऐसा माना जाता है कि वेद अपौरुषेय हैं। तब ऐसा कैसे कह सकते हैं कि उन्हें वेदव्यास द्वारा चार शीर्षकों के अंतर्गत व्यवस्थित किया गया?

उत्तर: व्यास का अर्थ है 'वर्गीकरण करनेवाला।' यह काम करने के लिए पर्याप्त कारण विद्यमान थे। वैदिक ज्ञान का भंडार शताब्दियों से जमा हो रहा था। किसी एक व्यक्ति द्वारा उसे स्मरण रखना असंभव था। कुछ भाग विस्मरण के कारण पहले ही नष्ट हो चुका

था। इसलिए स्मरण रखने व पाठांतर करने का कार्य कुछ लोगों के जिम्मे आया। शेष बचे हुए ज्ञान को व्यास ने वर्गीकरण कर चार शीर्षकों के अंतर्गत व्यवस्थित किया।

प्रश्नः वेदों के संबंध में पंडित सातवलेकर जी का विशेष योगदान क्या है?

उत्तरः उन्होंने भारत के सभी प्रांतों से पंडितों को आमंत्रित कर प्रत्येक सूक्त के संबंध में चर्चा की। हर मंत्र को कहते समय होनेवाले उच्चारणों को सावधानी से रिकार्ड किया। इस कारण उनके द्वारा प्रकाशित किए हुए वेदों के अनुवाद को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त हुई। वेदों के उपलब्ध अनुवाद में वही सर्वाधिक अधिकृत अनुवाद है।

वेद-मंत्रों को शुद्ध रखने की अपनी विशिष्ट पद्धति है। उसको 'अष्ट विकृति' कहा जाता है। माला, रेखा, ध्वज, दंड, रथ, घन, जटा, शिखा आदि पद्धति से पाठांतर होने के कारण एक भी स्वर, व्यंजन, अक्षर इधर उधर नहीं जाता। इस पाठ-पद्धति का वेद मंत्रों को काल के प्रवाह से अविकृत रखते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंतरित करने में अप्रतिम योगदान रहा है।

सातवलेकर जी ने पंडितों से चर्चा कर उपलब्ध वेदों को संपादित कर प्रकाशित करने का महत्कार्य किया।

प्रश्नः क्या केवल वेदों का पाठ करना पर्याप्त नहीं है?

उत्तरः पिछली शताब्दियों में हमारा यह दोष रहा है कि वेदों का अर्थ न समझते हुए उनका पाठ करते रहे। वेदाध्ययन के अंतर्गत केवल उसका पाठ करना ही था, उसके अर्थ-चिंतन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। उसके कुछ सूक्तों में सैन्य विज्ञान के बारे में बताया गया है। हमारे विद्वान पंडित उसका अर्थ न जानते हुए केवल पाठ किया करते थे।

पेशवा वेद-पाठ पर प्रतिवर्ष लाखों रुपए खर्च किया करते थे, किंतु उनका अर्थ समझने के लिए एक लाख भी खर्च नहीं किया, अन्यथा सैन्य की व्यवस्था में उससे बहुत सहायता मिलती। इसलिए वेदों का अर्थ-चिंतन बहुत महत्त्व का है। उस ओर ध्यान दिया जाना अधिक आवश्यक है।

प्रश्नः आजकल ऐसा लग रहा है कि लोगों में धार्मिकता के प्रति उत्साह की लहर उमड़ पड़ी है। जिधर देखो, उधर ध्वनिवर्धकों से धार्मिक

प्रवचन प्रसारित किए जा रहे हैं। हर वर्ष गंगा में डुबकी लगाने लाखों लोग एकत्रित होते हैं। पुराण, हरिकथा, रामनवमी, सत्यनारायण पूजा, गणेशोत्सव मनाने बड़ी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। क्या यह अच्छा चिह्न नहीं है?

उत्तर: मुख्य प्रश्न यह है कि क्या इन कार्यक्रमों के द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त हो रहे हैं? क्या इनके कारण स्वकेंद्रित जीवन समाप्त करने और चरित्र, सेवा व त्यागमय जीवन अपनाने का श्रेष्ठ संकल्प उत्पन्न हो रहा है? मुझे स्पष्टता से अनुभव होता है कि इसका उत्तर 'नहीं' ही है।

क्षणिक भावनाओं के उद्रेक से चरित्र-निर्माण नहीं होता। भावनाओं के प्रवेग के कारण स्नायु-प्रणाली चूर-चूर होगी, व्यक्ति पहले की अपेक्षा कमजोर होगा और नैतिक दृष्टि से टूटा हुआ होगा। नशा उतरने के बाद शराबी जिस प्रकार गलित गात्र हो जाता है, इसकी भी वैसी ही अवस्था होगी।

चरित्र-निर्माण का कार्य धैर्य से प्रतिदिन संस्कार देने की प्रक्रिया का कार्य है।

प्रश्न: तेरह करोड़ 'राम-नाम जप' की पूर्णता का उत्सव बड़े धूमधाम और शान से मनाया गया। भगवान की भक्ति के प्रचार में क्या इससे सहायता नहीं मिलेगी?

उत्तर: शास्त्रों के अनुसार इस प्रकार के प्रदर्शन को तामसिक कहा गया है। इस पवित्र आयोजन के जन प्रदर्शन के कारण तपस्या की भावना दूषित हो गई। सर्वशक्तिमान ईश्वर के साथ मौन एकात्मता स्थापित होना आवश्यक हैं।

प्रश्न: क्या पहले कभी पश्चिमीकरण की लहर इससे अधिक प्रभावशाली रही है?

उत्तर: हाँ। कम से कम सन् १९४७ तक भावनाओं के स्तर पर पश्चिमीकरण का विरोध था, सैद्धांतिक आपत्ति थी। आज किसी भी क्षेत्र में इस प्रकार का विरोध दिखाई नहीं देता। जीवन के किसी भी पक्ष को देखो, यही पाओगे कि गंभीर और शीघ्र गति से परिवर्तन आ रहा है। राष्ट्रीय जीवन-प्रवाह से हम दूर होते जा रहे हैं। हमारा फिल्मी संगीत भारतीय और यूरोपीय संगीत का भयंकर मिश्रण बना हुआ है। राष्ट्रीय संस्कृति की कोई छाप हमारे

गृह, शिल्प, विद्या आदि पर दिखाई नहीं देती। उसकी धारणा या तो पश्चिमी है अथवा स्पष्टतः चरित्रहीन है। आज के आधुनिक घर में 'देवघर' के लिए कोई स्थान नहीं है। अभी तक लगभग सभी घरों में देवघर के लिए अलग कमरा रहता था। आज देव-प्रतिमाओं को घर के किसी कोने में बिठा दिया जाता है अथवा हटा दिया जाता है। घरों के नक्शों का हमारी परंपरा से कोई मेल नहीं है।

अपने यहाँ भवन बनाने में युगों से चूने का उपयोग होता था। ताजमहल, विजय-स्तंभ (कुतुब मीनार) और दक्षिण के स्मरणीय देवालयों में चूने के गारे का ही उपयोग किया गया था। उनकी मजबूती और सौंदर्य हमारे सामने है, किंतु अब ग्रामीण घर भी सीमेंट से बन रहे हैं। इसका परिणाम स्थानीय चूना उद्योग के नष्ट होने और भव्य सीमेंट कारखानों से शहरों में अधिक झोपड़पट्टियों के निर्माण व सीमेंट परिवहन का रेलवे पर दबाव के रूप में होगा। ईंट, गिट्टी और चूने का उपयोग हम क्यों नहीं करते? अधिक से अधिक ऊपर से सीमेंट का पतला आवरण चढ़ाया जा सकता है।

सीमेंट के उपयोग से हुई परेशानी यहीं समाप्त नहीं होती। सीमेंट के घर गर्मी के दिनों में गरम और ठंडी के दिनों में अधिक ठंडे रहते हैं। अभी हाल ही में सीमेंट से बनी एक बड़ी इमारत में गंभीर दरारें पड़ीं। ऐसा बताया जाता है कि लोहे और सीमेंट की सिकुड़न की गति अलग-अलग होने के कारण इस प्रकार की दरारें आती हैं। किंतु मुझे ऐसा लगता है कि सीमेंट को ढोने में जो समय लगता है, विशेषतः वर्षा ऋतु में, वह वातावरण की नमी सोख लेता है और पत्थर की तरह कठोर हो जाता है। ऐसे कठोर हुए सीमेंट को पुनः पाउडर बनाया जा सकता है। उसके रंग रूप में तो कोई अंतर नहीं आता, पर तब उसमें सीमेंट के गुण नहीं रहते।

प्रश्न: इस सारे पश्चिमीकरण का अंत क्या होगा? आपको क्या लगता है?

उत्तर: पेंडुलम वापस लौटेगा। मैं आशा करता हूँ कि हमारी संस्कृति प्राणयुक्त है और सत्य पर आधारित है। झूठे आकर्षणों से समाप्त होनेवाली नहीं है। यह पुनः संपूर्ण ओज के साथ प्रतिष्ठित होगी।

मैं केवल इतना चाहूँगा कि इसमें अनावश्यक शक्ति का प्रयोग न हो, अन्यथा हमने जो कुछ अच्छी चीजें पश्चिम से ग्रहण की हैं, वह नष्ट हो जाएँगी। राष्ट्रीय संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठापना का नमूना सिलोन में देखने को मिलता है। आज (सन् १९५८) कोलंबो में अंग्रेजी फुलपैंट को उतने आदर से नहीं देखा जाता। 'बुद्ध धर्म' की वापसी का नारा देकर ही श्री भंडारनायके सत्ता पर आए हैं। आयुर्वेद को राजमान्यता प्रदान किया जाना उनके दल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

प्रश्न: आजकल देहाती लोग भी ट्रांजिस्टर रखते हैं। क्या ऐसी चीजों के कारण वे अधिक सभ्य नहीं बन रहे हैं?

उत्तर: सत्य इसके एकदम विपरीत है। ऐसी कई आधुनिक वस्तुओं के कारण वे लोग संस्कृति और सभ्यता से दूर जाने लगे हैं। उदाहरण के लिए सभ्य आचरण का सार हमारे यहाँ बताया गया है कि दूसरों को कष्ट नहीं देना। आज हर कहीं रेडियो, ट्रांजिस्टर ऊँची आवाज में बजता मिलता है। आसपास के लोगों की इच्छा हो या न हो, उन्हें अनिच्छा से कष्ट सहना ही पड़ता है। निश्चय ही यह दूसरों को कष्ट देना है।

मैं सोच रहा था कि अमरीका जैसे देशों में क्या होता होगा? लोग बताते हैं कि वहाँ शहर शांत हैं। शहर की सीमा में कार के हॉर्न बजाना मना है। शहर की सीमा से बाहर निकलकर हॉर्न का उपयोग किया जा सकता है। रेडियो बजाना ऐसा होना चाहिए कि आसपास के घरों तक उसकी आवाज न पहुँचे। जोर से बजाने पर उसका लायसेंस निरस्त हो सकता है। बिना सोचे-विचारे अंधे बनकर आधुनिक वस्तुओं का उपयोग हमारे लिए विध्वंसकारी बन रहा है।

प्रश्न: हमारे देश के कुछ हिस्सों में गाय, जो हमारी संस्कृति का प्रतीक है, के प्रति आदर की भावना दिखाई नहीं देती। इससे कैसे निपटा जाए?

उत्तर: असम में उनके समक्ष यह समस्या उपस्थित हुई कि कुछ वनवासी जनजातियाँ गोमांस खाने की आदी हैं। पर इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उन्हें योग्य शिक्षा देने के बारे में हम शताब्दियों से गाफिल रहे। हममें से कुछ तो उन्हें हिंदू मानने को

ही तैयार नहीं हैं। मेरा कहना है कि उनके बीच जैसे-जैसे संस्कृति का प्रभाव बढ़ेगा, वे स्वयं होकर गोमांस खाना बंद कर देंगे। इस दिशा में उन्हें धीरे-धीरे शिक्षा दी जानी चाहिए।

वस्तुतः भूतकाल में उनके साथ सांस्कृतिक संबंध बनाए रखने की व्यवस्था थी। उस प्रांत के गोसाई लोगों का यही क़ाम था कि वे जनजातियों में घुलें-मिलें और सांस्कृतिक उत्थान के लिए उन्हें शिक्षित करें। पर अब स्थिति इसके विपरीत है। एक बार आचार्य शंकरदेव के पंथ के कुछ लोगों से मिलने का प्रसंग आया। उन्होंने कहा– 'हम ऐसे जंगली लोगों से कैसे घुल-मिल सकते हैं?' फिर कुछ चर्चा के पश्चात् वे इनके साथ बैठकर भोजन करने के लिए सहमत हुए। जनजातियों के जो नेता वहाँ उपस्थित थे, वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ऐसी बात हो सकती है। भोजन के लिए बैठने को कहने पर वे संकोच के साथ थोड़ी दूर पर जाकर खड़े हो गए। तब मैंने उनको आग्रहपूर्वक बुलाकर बिठवाया और उनके दो नेताओं को अपने दोनों तरफ बैठाया। असल समस्या यह है कि हम उनसे दूर रहने लगे और शिकायत करते हैं कि वे बुरे हैं।

प्रश्न: वे हमारी संस्कृति अपना लें, इसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर: हम उनसे समान स्तर से मिलें। अन्य किसी भाव से संपर्क करना व्यर्थ होगा। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि हम उनके समान स्तर के हैं और उनके बंधु हैं। उन्हें हमारे प्रेम और स्नेह का सच्चा अनुभव होना चाहिए, तभी वे हमारे प्रयत्न का अनुकूल प्रतिसाद देंगे। तब उनके मन में संस्कृति के प्रति आदर के भाव उत्पन्न होंगे।

हाल ही में उनमें सरकारी अफसरों से दूर रहने की प्रवृत्ति बढ़ी है। उसका कारण यह है कि कुछ नागा लोग मस्तक पर बालों की गठान बाँधते हैं, जो सींग के समान दिखती है। वे मानते हैं कि इससे उनकी सुंदरता व मान बढ़ता है। एक सरकारी अफसर, जिसपर इन जनजातियों की देखभाल करने की जिम्मेदारी थी, से मिलने एक जनजाति के नेता गए थे। उस अफसर में कल्पनाशक्ति और दूरदृष्टि का अभाव था। उसने एक नेता की चोटी पकड़कर उसे धक्का मारते हुए कहा– 'इसे कटवा डालो।

तुम्हें आधुनिक आदमी बनना चाहिए।' नागा नेता भौंचक्के रह गए। व्यावहारिक बुद्धि के अभाव के कारण उसने उनकी भावनाओं का आदर नहीं किया। इस प्रसंग के बाद वे लोग सरकारी अफसरों से दूर रहने लगे।

प्रश्न: जो कुछ प्राचीन है, उसके बारे में प्रगतिशील लोग बात करना भी पसंद नहीं करते। इसका क्या कारण हो सकता है?

उत्तर: हमारे जीवन-मूल्यों की प्राचीनता ही उनके विरोध का प्रमुख कारण है। इन नव-पैगंबरों में नव-उन्माद छाया है। उनके लिए जो कुछ पुराना है, वह सब खराब है। उनको लगता है कि उनके साधन समय की दृष्टि से अत्याधुनिक हैं, इसलिए वे अधिक उपयुक्त हैं। यह ऐसा है, मानो डाक्टर ही रोगी को मरने की सलाह दे रहा हो, क्योंकि कालक्रमानुसार मृत्यु जीवन के उपरांत है। यह कैसे हो सकता है कि सूर्य के स्थान पर ट्यूबलाईट का प्रयोग किया जाए, क्योंकि वह आधुनिक उपकरण है और सूर्य अति प्राचीन है। प्राचीन की अनावश्यक निंदा तो निकृष्टतम बौद्धिक गुलामी होगी, पर ये बौद्धिक गुलाम स्वयं को इस युग के 'प्रगतिशील' घोषित करते हुए प्रसन्न होते हैं। यह तो दुर्बल मन का संकेत है। साहस, समग्रता, स्वतंत्रतापूर्वक भावात्मक दृष्टि रखते हुए विचार करने की शक्ति का अभाव प्रगट होता है।

प्रश्न: सही नेतृत्व दृष्टिगोचर न होने का क्या कारण है?

उत्तर: लोगों में से ही उसका उदय हो सकेगा। लोगों को उचित शिक्षा और योग्य जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए। तब लोग ही नए और योग्य नेताओं का मार्ग प्रशस्त करेंगे। व्यक्ति के नाते वे चमक-दमक वाले न हों, पर ईमानदार हों। व्यावहारिक बुद्धि के हों, तो कुशल नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं।

प्रश्न: यदि मैं मानवता की धारणा आत्मसात नहीं कर पा रहा हूँ या नहीं कर सकता हूँ, उस स्थिति में मैं केवल अपने कुटुंब के बारे में क्यों न सोचूँ?

उत्तर: हमने जब 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के बारे में सोचा, हमारी राष्ट्रीय समृद्धि और आनंद धूल में मिल गया। जब हम व्यक्तिगत व कौटुंबिक जीवन की संकीर्णता में डूबे, तब पुनः हमारी वही अवस्था हुई। इसलिए दोनों अति, अर्थात् अव्याप्ति और अतिव्याप्ति

को त्याग कर राष्ट्र-विचार के मध्य मार्ग को अपनाना होगा। तभी संतुलन पाने में सफल होंगे।

प्रश्न: हमारे देश में सभी बातें मार्ग से भटक क्यों गई हैं?

उत्तर: हमारी वास्तविक समस्या यह है कि सामने कोई स्पष्ट लक्ष्य तथा ध्येयप्राप्ति का विचार नहीं है। उसके बिना कोई भी देश महान नहीं बन सकता। हमें केवल अपना अस्तित्व बनाए रखने के स्थान पर सार्थक जीवन जीना है। भारत का विश्व को संदेश है कि आध्यात्मिकता व्यावहारिक जीवन में बाधक नहीं है, वह तो उसे सार्थक बनाती है। एक राष्ट्र के रूप में जब तक इस सर्वश्रेष्ठ ध्येय को नहीं अपनाते और उसकी पूर्ति के लिए प्रयास नहीं करते, तब तक लोगों की आंतरिक शक्ति को गति नहीं मिलेगी और हम श्रेष्ठ उपलब्धियों को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

प्रश्न: बुराई को बढ़ते देखकर क्या यह समझा जाए कि समाज में अच्छे आदमियों की कमी है?

उत्तर: वर्तमान की शोकांतिका यह है कि देशभक्ति की भावना रखने वाले लोग निष्क्रिय हैं और अराष्ट्रीय प्रवृत्ति के लोग प्रचंड शक्ति के साथ काम कर रहे हैं। रावण ने सक्रिय होकर लड़ाई में तीनों लोक जीत लिए थे, जबकि जनक और दूसरे लोग बैठकर ब्रह्मचर्चा किया करते थे अथवा तपस्या में जीवन व्यतीत करते थे। धर्मात्मा श्री राम के अवतार लेने के बाद ही परिस्थिति बदली। इसका कारण उनकी आत्यंतिक सक्रियता थी। वनवास के नाम पर उन्होंने समूचे देश में भ्रमण किया और बड़ी सेना एकत्रित कर रावण को पराजित किया। इसका अर्थ यही है कि केवल अच्छे बने रहना ही पर्याप्त नहीं होता। हमें क्रियाशील, शक्तिवान बनना चाहिए, तभी बुराई को नियंत्रित किया जा सकता है।

प्रश्न: हम शारीरिक दृष्टि से दुर्बल हैं। पर्याप्त, पौष्टिक भोजन का अभाव है, ऐसी स्थिति में अधिक परिश्रम कैसे किया जा सकता है?

उत्तर: शारीरिक बल भोजन के स्तर पर निर्भर नहीं करता। साधारण रूखा-सूखा भोजन भी कठिन परिश्रमी व्यक्ति को शक्ति प्रदान करता है।

मुझे बचपन की एक घटना अभी भी याद है। एक बार पिताजी, माताजी और कुछ अन्य लोग बैलगाड़ी से पास के गाँव

को जा रहे थे। रास्ते में एक बड़ा नाला था, जिसमें छाती तक पानी बह रहा था। गाड़ीवाले ने बैलों को खोल दिया और जुआ अपने कंधे पर रखकर पूरे विश्वास के साथ नाला पार करने लगा। बाकी लोगों ने डगमगाते हुए पानी को पार किया। उस साधारण से ग्रामीण व्यक्ति में इतनी ताकत कहाँ से आई। निश्चय ही वह प्रतिदिन भोजन में घी, दही तो नहीं खाता था। वह गरीब आदमी था। नमक मिर्च के साथ ज्वार की रोटी खानेवालों में से था। केवल कठिन परिश्रम से उसने शक्ति जुटाई थी। परिश्रम से साधारण भोजन भी प्रचंड शक्ति में बदल जाता है। बिना कठिन परिश्रम के भोजन शरीर में जड़ता उत्पन्न करता है। जो लोग चर्बीयुक्त, स्वादिष्ट भोजन के आदि होते हैं, वे दुर्बल होते हैं। कठिन परिश्रम नहीं कर पाते।

प्रश्न: देश का भविष्य क्या है?

उत्तर: जो हम बनाएँगे, वही हमारा भविष्य होगा। सब इस पर निर्भर है कि हम चाहते क्या हैं और उसके लिए प्रयास क्या करते हैं। एक सुभाषित है–

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

केवल प्रयत्नों से ही फल प्राप्त होते हैं न कि इच्छा करने से। हिरण स्वयं होकर सोये हुए सिंह के मुँह में प्रवेश नहीं करते।

हमारा भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मेरे मन में जरा भी संशय नहीं है। समस्याओं और कठिनाई के बावजूद हम महान और सुसंगठित राष्ट्र के रूप में निखरेंगे। विश्व से सम्मान और स्नेह प्राप्त होगा।

१२. शिक्षा के विषय में

(अध्यापकों से वार्तालाप)

प्रश्न: अपने देश की प्रचलित शैक्षणिक स्थिति के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: पश्चिमी देशों में प्रचलित पद्धति की आधुनिकतम आधारभूत बातों का न तो इसमें समावेश है और न ही हमारी प्राचीन पद्धति का।

हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियों के इतिहास की जानकारी हमारे यहाँ के युवकों को नहीं है। छात्रों के समक्ष कोई महानतम दिव्य उद्देश्य न होने के कारण वे समय बिताने के लिए गंदा और भद्दा साहित्य पढ़ने में अधिक रुचि रखते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

प्रश्न: एक बार आपने कहा था कि इन दिनों अध्ययन करने की आदत बिगड़ गई है। वह किस प्रकार?

उत्तर: प्रमाणित लेखकों द्वारा लिखी पाठ्य-पुस्तकों और संदर्भ-पुस्तकों की छुट्टी कर दी गई है। कुंजियों और प्रश्नोत्तर की पुस्तकों का प्रचलन बढ़ा है। छात्रों को ट्यूशन क्लास द्वारा परीक्षा पास करने का आसान रास्ता उपलब्ध हुआ है। इन गलत बातों को अपनाने के कारण छात्रों में पहल करने की भावना, समझने की शक्ति, योग्यता और अंतःप्रेरणा नष्ट हो चली है।

प्रश्न: क्या किसी सीमा तक शिक्षकगण इसके लिए उत्तरदायी नहीं हैं?

उत्तर: हाँ। वास्तव में छात्रों द्वारा ट्यूशन की आवश्यकता अनुभव करने को शिक्षक ने स्वयं की अयोग्यता, कर्तव्य के प्रति लगन का अभाव मानकर अपमानित महसूस करना चाहिए। कुछ शिक्षक तो छात्रों पर इस बात के लिए दबाव डालते हैं कि वे उनके पास ट्यूशन पढ़ने के लिए आएँ। आगे चलकर यह छात्रों के नैतिक पतन का कारण बनेगा। ईमानदारी से पढ़ने की आवश्यकता न होने का विचार मन में आने पर वह परीक्षा में पास होने के लिए अन्य अनैतिक मार्ग अपनाने में संकोच नहीं करेंगे। नैतिक चरित्र के अभाव का यही परिणाम होगा।

प्रश्न: इस परिस्थिति को कैसे सुधारा जाए?

उत्तर: प्राथमिक पाठशाला से ही छात्रों को सही दृष्टिकोण दिया जाए। उनके मनों को सुसंस्कृत करें। अपने प्राचीन और आधुनिक साहित्य के भंडार पर हमें निर्भर रहना चाहिए, जिनमें श्रेष्ठ राष्ट्रीय महापुरुष और उनके जीवन की घटनाओं का वर्णन भरा पड़ा है। हम ऋषि-मुनियों की संतान हैं– इसका अभिमान हृदय में धारण करें। इसकी शिक्षा में व्यवस्था की जाए। हमें हिंदुओं की भाँति रहना चाहिए, हिंदुओं की भांति दिखना चाहिए। पूरे विश्व

ने हमको हिंदू अनुभव करना चाहिए।

प्रश्न: क्या इससे विश्व की नजरों में हमारे देश की विकृत प्रतिमा तैयार नही होगी?

उत्तर: नहीं। इसके ठीक उल्टा होगा। जब हम स्वयं का आदर करना सीखेंगे, तभी हम दुनिया के आदर के पात्र होने की आशा कर सकते हैं। असल में दुनिया चाहती ही है कि हम अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करें, न कि किसी ऐरे-गैरे की कॉर्बन कॉपी बनें।

एक बार एक फ्रेंच व्यक्ति मेरे पास आया। मैंने उसे भोजन के लिए निमंत्रण दिया। उसने हमारी तरह फर्श पर बैठ कर आनंदपूर्वक भोजन किया। काँटा, चम्मच, टेबल कुछ भी नहीं था। बाद में उसने कहा कि 'आज भोजन में बहुत मजा आया। यह भी कहा कि हम जब आपके यहाँ आते है, तब हमें आपके व्यवहार, आचरण, विशेषताओं आदि का ज्ञान और अनुभव होना चाहिए, अन्यथा इतने दूर आपके देश में आने का मतलब ही क्या?'

सन् १८७२ में 'एडनब्युरो रिव्यु' में प्रकाशित एक लेख में लिखा था कि 'विश्व में हिंदू सबसे प्राचीन राष्ट्र है और ज्ञान, दयालुता तथा पवित्रता में सर्वश्रेष्ठ है।' किंतु दुर्भाग्य से हम लोग विदेशी दुष्प्रचार के कारण स्वयं के इतिहास और श्रेष्ठ विरासत को भुला बैठे हैं। जिस वृक्ष की जड़ें जमीन से उखड़ जाएँ, उसका भविष्य अच्छा नहीं हो सकता।

प्रश्न: पाठशाला के वातावरण को सुधारने के लिए आपके पास कोई सुझाव है?

उत्तर: एक बार नासिक के एक स्कूल में गया था। गैलरी में दीवार पर कई फोटो टँगे थे। उनमें से एक भी हमारे इतिहास या महाकाव्यों में से नहीं था। मैंने हेडमास्टर से पूछा– 'आनेवाली पीढ़ी इन चित्रों से किस प्रकार सुसंस्कारित होगी? हल्दीघाटी, पानीपत जैसे ऐतिहासिक प्रसंगों के चित्र क्यों नहीं हैं।' उन्होंने उत्तर दिया– 'अपनी दृष्टि देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रखनी चाहिए।' ऐसा ही तर्क देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने मुझे कहा था कि 'सभी दिशा से हमें हवा के झोंके प्राप्त होने के लिए घर की खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए।' तब मैंने उन्हें उत्तर देते हुए कहा

था कि 'आज जो हो रहा है, वह खिड़कियाँ खुली रखना नहीं है, अपितु घर की दीवारों को ढहाने जैसा है। ऐसा होने पर तो छत ही हमारे सिर पर गिरेगी।' अंतर्राष्ट्रीयता की विकृत कल्पनाओं और तथाकथित आदर्शों को नई पीढ़ी के समक्ष रखने के कारण उनके मन पर विपरीत परिणाम हो रहे हैं।

ठोस राष्ट्रीय आधार के बिना मानवता और अंतर्राष्ट्रीय बातों में उलझना सभी दृष्टि से हानि के सिवाय कुछ नहीं है। जहाँ तक हमारी विरासत और राष्ट्रीय दर्शन का संबंध है, उसमें संपूर्ण मानवता का सर्वोच्च हित समाहित है। राष्ट्रीय संस्कारों के कारण मानवीय मूल्यों का संवर्धन ही होगा।

प्रश्न : क्या आधुनिक शिक्षा-प्रणाली निरुद्देश्य है?

उत्तर : मैंने एक पोस्टर पर विज्ञप्ति देखी थी 'सीखते हुए कमाओ।' लेकिन हमारा दृष्टिकोण एकदम इसके विपरीत है। हम कहते हैं 'कमाते हुए भी सीखते रहो।' हमारी धारणा जीवनपर्यंत छात्र रहने की है। यह तो इसपर निर्भर करता है कि हम अपने सामने जीवन का क्या उद्देश्य रखते हैं।

पश्चिमी देश तो भौतिकवाद से ऊपर उठकर आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रहे हैं, पर दुर्भाग्य यह है कि हमने श्रेष्ठतम मूल्यों के जीवन को तिलांजलि देकर भौतिकवाद को गले लगा लिया है।

प्रश्न : किसी विशेष धर्म की शिक्षा का प्रचार किए बिना हम शालाओं में धार्मिक शिक्षा का अंतर्भाव किस प्रकार कर सकते हैं?

उत्तर : कुछ मूलभूत बातों को मान्यता देनी होगी। इस ब्रह्मांड के चराचर में व्याप्त एकमात्र सत्‌तत्त्व में विश्वास रखकर उसकी अनुभूति करने को जीवन के परम लक्ष्य के रूप में अपनाया जाए।

प्रश्न : उसे प्राप्त करने के लिए कौन-सी पद्धति अपनाई जाए?

उत्तर : ऐसी कई हैं। मोटे तौर पर कहें तो मन पर नियंत्रण करना और बुरी बातों में रमने से रोकना, यही मूल आधार है। योग विद्या में सभी प्रकार के धार्मिक जीवन के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। शम दमादि षट्‌ संपत्ति (यम, नियम) आदि छात्र आत्मसात कर सकें, इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए। विद्यमान शिक्षा-पद्धति में केवल कुछ जानकारी दी जाती है और रोटी किस प्रकार कमाई

जाए, इसकी चिंता की जाती है।

प्रश्न: संस्कृत-अध्यापन की वर्तमान पद्धति में क्या कोई दोष है?

उत्तर: कई हैं। उदाहरण के लिए महाविद्यालय स्तर पर इस बात का कोई प्रयास नहीं किया जाता कि छात्र सरल संस्कृत में बोलें, जैसा अंग्रेजी के लिए किया जाता है। संस्कृत, जो कि हमारी देवभाषा है में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के लिए शोध-प्रबंध अंग्रेजी में लिखना पड़ता है। इस प्रकार से पी-एच.डी. प्राप्त करनेवाले संस्कृत के कुछ वाक्य भी नहीं बोल सकते। ऐसे एक डाक्टर ने मुझे बताया कि शोध-प्रबंध अंग्रेजी में लिखा होने पर ही कमेटी उस पर विचार करती है, अन्यथा नहीं। मैंने उनसे पूछा– 'अंग्रेजी के लिए शोधप्रबंध हमारी किसी भाषा में लिखा जाने पर उसे मान्यता दी जाएगी क्या?' उसने बताया कि ऐसी कल्पना करना भी कठिन है। उस मित्र ने बताया कि यदि किसी को इंग्लैंड की मूल भाषा लैटिन में डाक्टरेट प्राप्त करनी हो तो उसे उस भाषा में पढ़ना-लिखना और यहाँ तक कि वार्तालाप करना भी सीखना पड़ता है। कविता लिखना भी उसे आना चाहिए।

मुंबई में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों को विज्ञान या संस्कृत में से एक विषय का चुनाव करने के लिए कहा जाता है। स्वाभाविक है कि अच्छे छात्र विज्ञान विषय ही चुनेंगे। क्या यह संस्कृत के प्रचार का तरीका है? यूरोप की कई भाषाएँ लैटिन से अधिक प्रगत हैं, फिर भी लेटिन में अध्ययन भारत में संस्कृत के अध्ययन से अधिक है। संस्कृत शिक्षा का राष्ट्रीय एकात्मता के संदर्भ में जो मूल्य है, उसे समुचित मान्यता नहीं दी गई है। अपनी भाषाओं के विकास की इच्छा और उसके प्रति प्रेम की कमी ही हमारा मुख्य दोष है।

प्रश्न: पाठ्यपुस्तकों को लिखा जाना ही शायद बड़ी समस्या है?

उत्तर: नहीं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व एक समय राव बहादुर श्री केलकर मध्य प्रांत के शिक्षा मंत्री थे। जैसे ही वे मंत्री बने, उन्होंने शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी के स्थान पर मराठी और हिंदी करने के आदेश दिए। एक अंग्रेज, जो डी.पी.आई. था, बहुत क्रोधित हुआ। उसने उनके उस आदेश का विरोध किया, किंतु श्री केलकर अपने

विचारों पर दृढ़ थे। उन्होंने अंग्रेज से सीधे-सीधे कहा– 'तुम मेरे सहायक अधिकारी हो। तुम्हें मेरा आदेश मानना ही होगा।' दूसरे अधिकारियों ने भी कहा कि मराठी तथा हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों के लिखने में असंख्य कठिनाइयाँ हैं। किंतु श्री केलकर ने सभी आपत्तियों को ठुकराते हुए, नई नीतियों पर चलने का आदेश दिया। छात्रों ने उत्साहित होकर मराठी व हिंदी माध्यम से पढ़ना प्रारंभ किया। पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गईं। शिक्षा की नई नीति अत्यधिक सफल रही।

प्रश्न: किंतु आजकल तो डाक्टरेट प्राप्त करने के लिए हिंदी में शोध-प्रबंध लिखने की अनुमति दी गई है?

उत्तर: उसके लिए कुछ वर्ष पूर्व एक छात्र को न्यायालय में कानूनी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। उसने प्रबंध हिंदी में लिखा था और अस्वीकृत होने पर कोर्ट में आह्वान दिया कि उसके शोध-प्रबंध को मान्यता दी जाए। मैं समझने में असमर्थ हूँ कि हमारे शिक्षाविदों के मन में राष्ट्रीय भाषाओं के प्रति तिरस्कार क्यों भरा हुआ है। लैटिन बोलनेवाला आज कोई नहीं हैं। उसमें किताबें भी नही लिखी जा रहीं, किंतु डाक्टरेट की डिग्री के लिए उस भाषा को बोलना व सीखना आवश्यक है। इसके विपरीत संस्कृत जीवंत भाषा है। कई लोग उसे बोलते हैं। आज भी किताबें और लेख संस्कृत में प्रकाशित हो रहे हैं। यह सब होते हुए भी आज संस्कृत हेय है।

प्रश्न: क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि कभी सरकार द्वारा शिक्षा का नैतिक आधार धर्म को बनाने का प्रयास होगा?

उत्तर: केवल कल्पना करना ही पर्याप्त नहीं है। यदि सभी विचारशील व्यक्ति निश्चय कर लें, तो कल्पना भी साकार हो सकती है। सरकार तो लोगों के विचारों का प्रतिबिंब होती है। लोगों की जैसी योग्यता होगी, उन्हें वैसी सरकार मिलेगी।

प्रश्न: शिक्षा की आधुनिक प्रणाली की तुलना में हिंदू प्रणाली में क्या विशेषता है?

उत्तर: आधुनिक शिक्षा प्रणाली में व्यक्ति के विभिन्न सुप्त गुणों को मान्यता देकर उन्हें विकसित किया जाता है। इस दृष्टि से आधुनिक प्रणाली किसी मात्रा में सफल है। कला और विज्ञान के

क्षेत्र में सभी आधुनिक देशों में मनुष्य ने ऊँची सफलता प्राप्त की है। लेकिन हमारे देश में विद्यार्थी के दिमाग में केवल ठूँसकर जानकारी भरी जाती है, यह तो शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। शिक्षा की हिंदू धारणा इससे भी आगे जाती है। वह केवल इससे संतुष्ट नहीं कि व्यक्ति के अंदर की सुप्त भौतिक शक्तियों और बौद्धिक गुणों का विकास हो। हमारे लिए जीवन इच्छाओं और वासनाओं की गठरी मात्र नहीं है। हमारे अंदर परम सत्य के तत्त्व विद्यमान हैं। उसका जीवन में आविष्कार और अनुभूति ही हमारी शिक्षा प्रणाली का आधारभूत उद्देश्य है।

प्रश्न: किंतु कैसे?

उत्तर: हमारे श्रेष्ठ मुनियों ने इस प्रणाली को आगे बढ़ाने के लिए समुचित सूचनाएँ दी हुई हैं। उसे आचरण में लाने के लिए शिक्षक पर बड़ा उत्तरदायित्व सौंपा गया है। प्रारंभ में उसे छात्रों को यम और नियम के दस प्रकार के अनुशासन में संस्कारित करना होगा। वस्तुतः बाइबल के दस आदेश और कुछ नहीं बल्कि पाँच यम और पाँच नियम ही हैं। यदि स्कूल में अल्प मात्रा में भी छात्रों ने यम, नियम के अनुशासन का पालन किया, तो शीघ्र ही चारों ओर का वायुमंडल स्वस्थ बनेगा और समय रहते दूसरे भी उनका अनुकरण करेंगे।

इन संस्कारों के लिए बालकों को रोचक पद्धति से बताया जाना चाहिए। जब मैं माध्यमिक शाला में पढ़ता था, तब एक शिक्षक नियमित रूप से पढ़ाने के बाद हम लोगों को पुराणों से विभिन्न कहानियाँ रोचक पद्धति से सुनाते थे। वे उपदेशात्मक होती थीं। इसी प्रकार की कहानियों के सुनने के कारण ही उज्ज्वल परंपरा और श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण हुआ। वही फिर से लोगों को अप्रतिम श्रेष्ठता तक पहुँचाएगा।

प्रश्न: भारत की एकता की दृष्टि से क्या यह उचित नही होगा कि विभिन्न शास्त्रों की उच्चतम शिक्षा अंग्रेजी में प्रदान की जाए, जो कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा है? तब एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते समय उसे कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा? यदि उन्हें प्रांतीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान की गई तो कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है?

उत्तर : यह सोचना ही गलत है कि अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। गत वर्ष फ्रांस में आण्विक सम्मेलन हुआ था। विभिन्न देशों के वैज्ञानिक प्रतिनिधियों ने उसमें अपने विचार रखे थे, किंतु उनमें से केवल छः प्रतिनिधियों को ही अंग्रेजी का ज्ञान था, जिसमें इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत से प्रत्येक का एक तथा अमरीका के दो प्रतिनिधि थे। अभी हाल ही में दिल्ली में UNCTAD की बैठक में १५०० से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उनमें से कितनों को अंग्रेजी का ज्ञान था? बहुत ही कम संख्या थी। अच्छा यह होगा कि प्रांतीय भाषाओं के साथ हिंदी को आवश्यक रूप से पढ़ाया जाए। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्द हों, वे सभी प्रांतीय भाषाओं में समान हों। तब एक-दूसरे को समझने के लिए तकनीकी विषय का अध्ययन करने वालों की कठिनाई कम हो जाएगी।

प्रश्न : इन दिनों पाठशाला स्तर के छात्रों में भी अनुशासनहीनता और उपद्रव करने की प्रवृत्ति बढ़ रही हैं। इसका कोई विशेष कारण है?

उत्तर : मुख्य कारणों में से एक यह है कि मंत्री और दूसरे राजनैतिक नेता छात्रों में लोकप्रिय होने के लिए उन्हें शिक्षकों के विरोध में भड़काते हैं। शाला-निरीक्षकों में इस संबंध में निर्णय लेने का विवेक नहीं रहा। वे छात्रों के सम्मुख ही शिक्षकों के दोष बताते हैं। इससे छात्रों की नजरों में शिक्षक का सम्मान गिर जाता है। पुराने दिनों में शाला-निरीक्षक कक्षा के उपरांत प्रधानाध्यापक कक्ष में शिक्षक को बुलाकर उनके दोष बताते थे।

शिक्षक छात्रों को अच्छी तरह से पढ़ाने में कोई कसर बाकी नहीं रखते थे। प्राथमिक पाठशाला में एक ही शिक्षक सभी कक्षाओं की पढ़ाई की व्यवस्था देख सकता था। वह जब कभी बड़ी कक्षा के छात्र को पढ़ाने के लिए छोटी कक्षा पर भेज देता था, छात्र उसे भी शिक्षक के समान ही आदर देते थे।

यदि मन की लहरों को निश्चल किया जा सके, तो मनुष्य किसी बाहरी वस्तु की सहायता के बिना भी आनंद का आस्वादन कर सकता है।

— श्री गुरुजी

वार्तालाप

न्यूयार्क टाइम्स के संवाददाता श्री लूकस

(१३ मई १९६६, हैदराबाद)

श्री लूकस : 'न्यूयार्क टाइम्स' के मैगजीन सेक्शन में हम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के संबंध में एक लेख प्रकाशित करना चाहते हैं।

श्री गुरुजी : आप इन दोनों को एक में क्यों मिला रहे हैं? इस तरह तो आप पहले से उत्पन्न किए गए भ्रम को और अधिक बढ़ाएँगे। संघ और जनसंघ अलग-अलग हैं। संघ के स्वयंसवेक चाहे जिस राजनीतिक दल में जाने के लिए स्वतंत्र हैं।

श्री लूकस : तब आपके स्वयंसेवक कांग्रेस में क्यों नहीं दिखाई पड़ते?

श्री गुरुजी : ऐसा इसलिए है क्योंकि कांग्रेस ने संघ के स्वयंसेवकों के लिए अपने द्वार बंद कर रखे हैं। परंतु संघ ने कांग्रेसजनों के लिए अपने द्वार बंद नहीं किए हैं। अतः आपको यह प्रश्न कांग्रेस से करना चाहिए।

श्री लूकस : यह तो ठीक है कि आप अपने स्वयंसेवकों को चाहे जिस राजनीतिक दल में भाग लेने की छूट देते हैं, किंतु मुझे सूचना है कि वे बड़ी संख्या में जनसंघ में ही पाए जाते हैं।

श्री गुरुजी : कांग्रेस ने हम लोगों के लिए अपने द्वार बंद किए, उसके पूर्व हमारे अनेक कार्यकर्ता पक्के कांग्रेसी भी थे। हमारे संस्थापक स्व. डा. हेडगेवार भी कांग्रेस में थे।

श्री लूकस : क्या यह संघ के प्रारंभ होने के पहले था?

श्री गुरुजी : नहीं, उसके बाद भी। डाक्टरजी के कांग्रेसी कार्यकताओं से घनिष्ठ संबंध थे। किंतु संघ का कार्य प्रारंभ होने के बाद उन्होंने अपने आपको पूरी तरह संघकार्य में ही लीन कर दिया और

इसलिए वे कांग्रेस के काम में समय न दे सके। देश में कुछ भागों के स्वयंसेवक अच्छी संख्या में हिंदू महासभा में भी थे। कांग्रेस और हिंदू महासभा में जो भी राजनीतिक मतभेद रहे हों, संघ में उनकी बहुत अच्छी तरह निभती थी।

श्री लूकस : कांग्रेस ने संघ के लोगों के लिए अपने द्वार कब बंद किए?

श्री गुरुजी : सन् १९३७ या १९३८ में किसी समय, हमारे संस्थापक के जीवन काल में ही। किस कारण उन्होंने ऐसा किया, इसका ज्ञान मुझे नहीं है।

श्री लूकस : क्या आपके विचार से जनसंघ के अतिरिक्त अन्य राजनीतिक दलों में भी संघ के लोग पर्याप्त संख्या में हैं?

श्री गुरुजी : जनसंघ में अन्य राजनीतिक दलों की अपेक्षा अधिक स्वयंसेवक हो सकते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि कांग्रेस ने उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया तथा हिंदू महासभा शक्तिहीन हो गई और कई स्थानों पर तो उसका अस्तित्व ही नहीं है। किंतु ऐसे स्वयंसेवकों की संख्या, जो किसी भी राजनीतिक दल में नहीं है, पर्याप्त है। अधिकांश स्वयंसेवक किसी भी राजनीतिक दल में कार्य नहीं करते। हमारा कार्य सांस्कृतिक है। हमारी नीति स्पष्ट है। हमारा विश्वास है कि हमारे राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब समाज संगठित तथा एकता के सूत्र में आबद्ध हो और उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक संबंध अविच्छिन्न हों।

श्री लूकस : ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग सन् १९५० से संघ के रुख में कुछ परिवर्तन हुआ है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि प्रतिबंध काल में आप अपनी शक्ति को समवेत नहीं कर सके। अतः आपने जनसंघ की स्थापना की ताकि आपको एक राजनीतिक मंच मिल जाए। क्या यह सच है?

श्री गुरुजी : हमने सरकार से संघर्ष करने की इच्छा कभी नहीं रखी, यद्यपि हमारे साथ घोर अन्याय किया गया था। हमारे पास विपुल मानव-शक्ति थी। किंतु हम शासनारूढ़ अपने ही देशवासियों को ऐसे समय में जबकि राष्ट्र संकट काल से गुजर रहा हो, परेशानी में नहीं डालना चाहते थे। यदि हम चाहते तो अपनी उस शक्ति को एकत्र कर निश्चय ही प्रयुक्त कर सकते थे, किंतु हमने ऐसा नहीं किया। अनेक विचारशील व्यक्ति, जो कई बातों में हमसे

सहमत नहीं थे, यह अनुभव करते थे कि हमने बुद्धिमत्ता का कार्य किया। किंतु जब समझौते के सारे रास्ते बंद हो गए, तब हमें यह प्रयत्न करना ही था कि हम पर लगाया गया अन्यायपूर्ण प्रतिबंध समाप्त हो। यदि हमारे पास कोई और चारा न बचता तो निश्चय ही हम एक राजनीतिक दल की स्थापना करते। परंतु उसी समय प्रतिबंध उठा लिया गया।

अब जनसंघ पर आइये। इसकी स्थापना एक प्रादेशिक दल के रूप में बंगाल में स्व. डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा की गई थी। जब उनकी इच्छा जनसंघ के कार्य का विस्तार अन्य प्रदेशों में करने की हुई, तब वे इस संबंध में अनेक व्यक्तियों से मिले। वे सहयोग प्राप्ति की इच्छा से मेरे पास भी आए। मैंने उनके विचारों को सुना और उनसे कहा कि मैं एक सीमा तक आपकी सहायता कर सकता हूँ। मैं आपको अपने कुछ कार्यकर्ता दूँगा, परंतु जिन्हें हम जब चाहेंगे, वापस बुला लेंगे। ये कार्यकर्ता आपके दल के संगठन को खड़ा करने में आपकी सहायता करेंगे। यही मार्ग अपनाया गया, क्योंकि हम नहीं चाहते थे कि संघ किसी राजनीतिक दल का अनुचर बनकर रहे। ऐसा होना देश के सर्वोत्तम हित में नहीं है। हम स्वयं भी जनसंघ पर नियंत्रण रखना नहीं चाहते। यह उचित नहीं है। अतः लगभग आधे दर्जन कार्यकर्ता प्रारंभ में जनसंघ को दिए गए। वस्तुतः वे सब पुनः संघकार्य में वापस आने के लिए व्यग्र हैं। जनसंघ अब अपने काम का स्वयं विकास कर रहा है।

श्री लूकस : मुझे बताया गया है कि एक ही व्यक्ति एक साथ संघ और जनसंघ– दोनों का पदाधिकारी नहीं हो सकता।

श्री गुरुजी : मैं संघ के संबंध में बता सकता हूँ। हम लोगों ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि संघ के अधिकारी को किसी भी राजनीतिक दल का पदाधिकारी नहीं होना चाहिए। हमने यह नियम बनाया है, क्योंकि हम राजनीति से सर्वथा परे और दलगत राजनीति से दूर रहना चाहते हैं।

श्री लूकस : मैंने सुना है कि जनसंघ के नेताओं के बीच तथा संघ के नेताओं के बीच आपस में मतभेद हैं।

श्री गुरुजी : जनसंघ के नेता चाहे जैसी राय रख सकते हैं। मैं तो संघ के

संबंध में कह सकता हूँ। हमारे कार्य के कुछ विरोधी लोगों के मस्तिष्क में यह बात बैठाना चाहते हैं कि हम संघ के लोग सहयोगपूर्वक भली-भाँति कार्य नहीं कर पा रहे हैं। चलिए, थोड़ी देर के लिए संघ के अधिकारियों में आपसी मतभेद की बात मान लेते हैं। तब मैं पूछता हूँ कि इसमें आपत्ति क्या है? यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक की राय प्रत्येक मसले पर एक जैसी हो। जब तक हम लोगों में मौलिक बातों में मतैक्य है और हम सही मार्ग पर चल रहे हैं, तब तक कोई चिंता नहीं। यदि छोटे-छोटे मामलों में थोड़े-बहुत व्यक्तिगत मतभेद दिखाई भी दिए, तो आकाश फट पड़ने वाला नहीं है, किंतु मेरी राय तो यह है कि मतभेदों का होना स्वाभाविक और अच्छा है। छोटे-मोटे मतभेद होते हुए भी हमें सहयोगपूर्वक कार्य करना चाहिए और यही संगठन है।

श्री लूकस : मैंने सुना है कि आप स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री शास्त्री से बहुत अधिक सहमति रखते थे, किंतु महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के संबंध में ऐसा नहीं है। वास्तव में प्रोफेसर मधोक ने किसी अवसर पर यहाँ तक कहा है कि श्री शास्त्री वास्तविक अर्थों में प्रथम भारतीय प्रधानमंत्री थे।

श्री गुरुजी : निस्संदेह स्व. प्रधानमंत्री श्री शास्त्री से मेरा अनेक बातों में मतैक्य था। यदि मैं महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से मिला, तो मेरा विचार है कि हम दोनों में भी कुछ बातों में सहमति हो सकती है।

श्री लूकस : लोगों का कहना है कि वे (श्रीमती गाँधी) बहुतेरे मामलों में बिल्कुल अपने पिता पर गई हैं।

श्री गुरुजी : संभव है कि इनमें से (श्री नेहरू, श्री शास्त्री तथा श्रीमती गाँधी) प्रत्येक राष्ट्र-जीवन के किसी विशेष मुद्दे को अधिक महत्त्व देता हो। वे आदर्शवादी एवं गतिशील पुरुष थे और तदनुसार कुछ विशेष बातों पर उनका अधिक बल रहता था। शास्त्री जी अपने नेता (श्री नेहरू) का अनुसरण करते हुए भी स्थिति को यथार्थवादी दृष्टि से समझने का प्रयत्न करते थे। उनका यह यथार्थवाद अनेक व्यक्तियों को उचित प्रतीत होता था। वह हमें भी अच्छा लगता था। आदर्शवादी होना स्वप्नलोक में विचरने से

भिन्न बात है। हम यथार्थवादी होना अच्छा समझते हैं, न कि स्वप्नलोक में विचरण करना। यद्यपि श्री शास्त्री जी अपने नेता के समान ही जहाँ तक हो सके, बलप्रयोग से विरत रहने के पक्ष में थे, तथापि जब बलप्रयोग एकदम अपरिहार्य हो गया, तब उन्होंने बल का प्रयोग किया, इसी कारण वे सबकी नजरों में इतना ऊँचा उठे। मैं श्रीमती इंदिरा गाँधी के विषय में अधिक नहीं जानता। उनसे मिलने का कोई अवसर मेरे लिए नहीं आया। मैं जो कुछ भी उनके बारे में जानता हूँ, वह उनके संबंध में यत्र-तत्र पढ़कर ही जान पाया हूँ।

श्री लूकस : इंदिरा जी के अनेक विषयों में अपने निजी विचार होंगे, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि संघ के संबंध में उनकी धारणाएँ, उन्हें अपने पिता से उत्तराधिकार में मिली हैं। आपका क्या विचार है?

श्री गुरुजी : मुझे ज्ञात नहीं। हो सकता है ऐसा हो या न भी हो। पंडित नेहरू से मेरा मिलना बहुत कम हुआ। संभवतः केवल दो या तीन बार। किसी विषय पर उनकी पसंद या नापसंद बड़ी प्रबल होती थी। श्रीमती इंदिरा गाँधी के विषय में मैं कुछ भी कह सकने की स्थिति में नहीं हूँ, क्योंकि हमारी कभी भेंट ही नहीं हुई।

श्री लूकस : क्या आपकी भेंट श्री शास्त्री से बहुत बार हुई थी?

श्री गुरुजी : नहीं। हम तीन या चार बार ही मिले। हम सहमत हो सकें या नहीं, परंतु हमारे बीच मुक्त रीति से विचारों का आदान-प्रदान होता था।

श्री लूकस : संघ के प्रति सरकार के सामान्य रुख के विषय में आप क्या सोचते हैं?

श्री गुरुजी : कुछ विशेष नहीं। उसके कुछ कार्य ऐसे हो सकते हैं, जो हमें अप्रिय लगते हैं। आखिर सरकार को चलानेवाले मनुष्य ही तो हैं और उनकी भी अपनी कुछ दुर्बलताएँ होती हैं। इसके लिए हम उन्हें दोष नहीं देते। हम अपना कार्य करते रहते हैं, किंतु जब राष्ट्रहित की माँग होती है, तब हम सरकार की सहायता करते हैं।

श्री लूकस : क्या पाकिस्तान के साथ हो रहे युद्ध के दौरान आपके लोगों ने दिल्ली में यातायात-नियंत्रण के लिए स्वयंसेवक के रूप में

कार्य करके सरकार की सहायता की थी?

श्री गुरुजी : हाँ। हमने अपना संपूर्ण सहयोग प्रदान किया था। वहाँ नगरमहापालिका में जनसंघ है। उन्होंने हमारा सहयोग चाहा। हमने दिया। इसकी सूचना मुझे तो बाद में मिली, जब मैंने तत्संबंधी फोटोग्राफ देखे।

श्री लूकस : इसका तो यही अर्थ हुआ कि आपके लोग जनसंघ को उपलब्ध हुए?

श्री गुरुजी : ऐसे अवसर पर, जबकि राष्ट्रहित का स्थान सबसे पहले होता है, हम प्रत्येक को अपना सीधा सहयोग देते हैं। चाहे वह जनसंघ हो या सरकार हो। हमने सरकार को उनकी माँग पर तुरंत सहायता की।

श्री लूकस : मैं यह अच्छी तरह समझता हूँ कि आपकी संस्था राजनीतिक नहीं हैं। तो भी मैं भारत-पाक समस्या और ताशकंद समझौते के बारे में आपके दृष्टिकोण को जानना चाहता हूँ।

श्री गुरुजी : मैं अनेक अवसरों पर इन मामलों पर अपने विचार पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ। मेरे विचार से ताशकंद समझौता, समझौता है ही नहीं। यह बिल्कुल अर्थहीन है। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में पहले से जो कुछ कहा गया है, यह उस का पुनर्कथन मात्र है। घोषणापत्र में कहा गया है कि सदस्य राज्य अपने पारस्परिक विवादों को तय करने के लिए बल का प्रयोग नहीं करेंगे। भारत और पाकिस्तान दोनों ही राष्ट्र-संघ के सदस्य हैं। जब पाकिस्तान राष्ट्र संघ के इस घोषणा-पत्र का उल्लंघन करके हम पर आक्रमण करता है, तब हम यह कैसे कह सकते हैं कि वह इस समझौते का उल्लंघन नहीं करेगा। हमारे इस पड़ोसी की युद्धपिपासा अभी वैसी ही है और किसी भी समय संघर्ष छिड़ सकता है। समाचार है कि हमारे चारों ओर सशस्त्र सेना का भारी जमाव है और युद्ध भड़क सकता है, ताशकंद समझौता रहे या जाए।

श्री लूकस : इस लाइलाज समस्या 'पाकिस्तान' के लिए आपका हल क्या है?

श्री गुरुजी : हाँ, यह एक लाइलाज समस्या ही है। मेरी समझ में कोई और उपाय तो है नहीं। इसके अलावा कि दो अलग-अलग देश के स्थान पर दोनों को मिलाकर एक देश बन जाए। कुछ लोग

कहते हैं कि झगड़े की जड़ कश्मीर है और यदि कश्मीर पाकिस्तान को दे दें तो यह समस्या सदैव के लिए हल हो जाएगी। किंतु मेरा विचार तो यह है कि जो ऐसा कहते हैं, वे भी हृदय से ऐसा नहीं मानते। वे भोलेपन के कारण तो ऐसा कहते नहीं। इसके पीछे उनका कुछ अन्य उद्देश्य रहता है। एकमात्र हल यही है कि एक ही राज्य हो। हमें इसी के लिए कार्य करना चाहिए।

श्री लूकस : आप, बिना युद्ध के इस लक्ष्य की प्राप्ति किस प्रकार कर सकते हैं। यदि युद्ध छिड़ता है, तो इसके परिणामस्वरूप एक-दूसरे का विनाश हो जाएगा। अमरीकी दृष्टिकोण से ऐसी विभीषिका में अपने आपको डालना आपके लिए उचित नहीं होगा?

श्री गुरुजी : युद्ध एकमात्र उपाय नहीं है। यदि युद्ध अनिवार्य हो जाए तो उसका भी उपयोग एक-दूसरे के निकट आने में होना चाहिए। मुझे अमरीकी दृष्टिकोण का अधिक ज्ञान नहीं है। किंतु यदि अमरीकी गृहयुद्ध को लें, तो वह अमरीकी संघ-राज्य को सुरक्षित रखने के लिए ही लड़ा गया था। जब युद्ध समाप्त हुआ, तब विजेता और विजित का भाव अवशिष्ट नहीं रहा।

श्री लूकस : तो आपका कहना यह है कि महत्त्व भावना और उद्‌देश्य का है।

श्री गुरुजी : हाँ। किंतु सशस्त्र युद्ध एकमात्र मार्ग नहीं है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के अनेक मार्ग हो सकते हैं।

श्री लूकस : किंतु बिना शस्त्र उठाए आप इसे कैसे प्राप्त करेंगे? क्या आपके पास कोई हल है?

श्री गुरुजी : यही बात तो हमें भी चिंतित किए हैं। इस शीघ्रता के साथ बदलती हुई जागतिक-परिस्थिति में कोई न कोई मार्ग तो निश्चय ही हो सकता है। संभव है कोई अवसर स्वतः प्राप्त हो जाए।

श्री लूकस : क्या यह उचित होगा कि इस बात की प्रतीक्षा की जाए कि कोई न कोई अवसर आएगा ही?

श्री गुरुजी : कुछ समस्याओं के समाधान के लिए प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है। आखिर हम हल को आने के लिए बाध्य तो नहीं कर सकते। इसे अपने-आप, अपने तरीके से ही आने देना होगा। यदि वह युद्ध के रूप में भी आता है तो भी इस एकीकरण के पक्ष में वातावरण बन सकता है।

श्री लूकस : युद्ध तो अभी हुआ ही था। क्या आप सोचते हैं कि यदि युद्ध कुछ दिन और चलता रहता तो पाकिस्तान आपके अधिक निकट आ गया होता?

श्री गुरुजी : हाँ, उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि वे ऐसे व्यय साध्य युद्ध को अधिक दिन तक नहीं झेल सकते। वास्तव में पाकिस्तान में ऐसे लोग हैं, जो भारत में विलय चाहते हैं, किंतु पाकिस्तान सरकार उनका मुँह युद्ध से बंद कर देती है।

श्री लूकस : इससे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सद्भावनापूर्ण संबंधों के निर्माण में सहायता किस प्रकार मिलेगी? आप कहते हैं कि यदि मुसलमान यह स्वीकार कर लें कि प्राथमिक रीति से यह हिंदुओं का देश है, तो वे राष्ट्रीय बन जाएँगे। वर्तमान स्थिति में, जबकि भारत में केवल ५ करोड़ मुसलमान हैं, यह बात ठीक हो सकती है। किंतु यदि एक ही राज्य हो, तब तो संतुलन परिवर्तित हो जाएगा। वे १५ करोड़ लोग और आप लगभग ४० करोड़।

श्री गुरुजी : सारी कठिनाई यह है कि हिंदू और मुसलमान दो विरोधी गुटों के रूप में देखे जाते हैं। पिछले १५० वर्षों में यह सिद्धांत खड़ा किया गया है कि वे एक होकर साथ-साथ नहीं रह सकते। मेरा विश्वास है कि हम बहुत अच्छी तरह साथ-साथ रह सकते हैं। हमें उपर्युक्त अशुद्ध विचार को छोड़ना होगा और इस शुद्ध एवं सरल दृष्टिकोण को अपनाना होगा कि हम सब एक ही राज्य के नागरिक हैं। किसी को कोई विशेष सुविधाएँ प्राप्त नहीं होंगी। यदि विचार करने का यह दृष्टिकोण अपनाया गया तो सब ठीक हो जाएगा।

श्री लूकस : जनसंघ के जालंधर अधिवेशन में मैंने जुलूस में एक झाँकी देखी, जिसमें सभी प्रदेशों को दर्शाया गया था। उसमें मैंने केवल हिंदू महापुरुषों की ही झांकियाँ देखीं। आप कितने मुसलमान महापुरुषों को स्वीकार करते हैं?

श्री गुरुजी : पुनः मुझे कहना है कि यह सोचने का गलत ढंग है। मुसलमान इस देश में आक्रांता एवं विजेता के रूप में आए, जबकि हिंदू महापुरुषों ने मातृभूमि की रक्षा की जो उनकी देशभक्ति का परिचायक है।

श्री लूकस : मुसलमान अपने इतिहास का परित्याग किस प्रकार कर सकते हैं?

श्री गुरुजी : आप कहते हैं– 'मुसलमानों का अपना इतिहास'। इस देश से पृथक उनका इतिहास इस राष्ट्र के द्वारा गौरव के साथ नहीं देखा जा सकता। विशाल संख्या में हिंदुओं को बलात्कार द्वारा इस्लाम स्वीकार करने को विवश किया गया था। मैं उनके विचार करने के गलत ढंग के कुछ उदाहरण देता हूँ। वे रुस्तम को आदरपूर्वक स्मरण करते हैं। जब उनसे इसका कारण पूछा जाता है, तो वे कहते हैं कि वह हमारा बलशाली पूर्वज था। किंतु वह उनका पूर्वज नहीं था। वह पारसी था। वह तो मुसलमान भी नहीं था। वह जरथुस्त्र मतावलंबी था। उसका रक्त भारतीय मुसलमानों की धमनियों में नहीं बहता। उनकी धमनियों में तो भारत भूमि के महापुरुषों का रक्त प्रवाहित हो रहा है। वास्तव में मुसलमानों को भारतीय बलशाली महापुरुषों का अभिमान होना चाहिए।

श्री लूकस : क्या आप यह कहना चाहते हैं कि इन सभी लोगों को पुनः हिंदू बना लेना चाहिए?

श्री गुरुजी : हाँ, मैंने यह कहा है, किंतु मैं यह नहीं चाहता कि उन्हें हिंदू धर्म में वापस लाने का कार्य किसी दबाव के अंतर्गत किया जाए। सर्वोत्तम रास्ता यही है कि जो लोग बलात्कार से किसी समय मुसलमान बनाए गए थे, वे अपने मातृधर्म में पुनः लौट आएँ। किंतु जिन्होंने इस्लाम का स्वीकार उस धर्म के अध्ययन के उपरांत उसके प्रति रुचि के कारण किया है तथा जो यह अनुभव करते हैं कि इस्लाम मत उनके अनुकूल आता है अथवा इतने दीर्घकाल तक इस्लाम-मत में रहने के कारण जिन्हें उससे लगाव हो गया है, वे मुसलमान ही रहें। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अपनी आनुवंशिकता को ही खो बैठें, अपने पूर्वजों से ही संबंध विच्छेद कर लें। उन्हें अपने देशवासियों के साथ झगड़ा भी नहीं करना चाहिए। हम इस्लाम धर्म के विरुद्ध नहीं हैं। हिंदू अत्यंत उदार होता है। उसमें वैदिक अथवा अवैदिक सभी के लिए स्थान है। हम जिस बात के विरुद्ध हैं, वह इस देश के मुसलमान की मनोवृत्ति है। यदि कोई तीसरी शक्ति न होती, तो भी हम इस समस्या को बहुत अच्छी तरह सुलझा लेते। मुसलमान हिंदू धर्म के अंतर्गत उसी प्रकार स्थान ले सकते हैं, जैसे अन्य मतों के लोग।

श्री लूकस : सिखों की तरह?

श्री गुरुजी : हमारी दृष्टि में सिख हिंदू ही हैं। कोई सौ वर्ष पहले तक सिखों और असिख हिंदुओं में विवाह-संबंध भी होते थे। तीसरी शक्ति की उपस्थिति से ही इस प्रकार के झगड़े खड़े हुए हैं।

श्री लूकस : आपका तात्पर्य है कि मतांतर एवं झगड़ों के लिए अंग्रेज जिम्मेदार रहे हैं?

श्री गुरुजी : अंग्रेजो को दोष क्या देना? उन्होंने जो किया, स्वार्थवश किया। अपने स्वहितसाधन के लिए उन्होंने बहुत सी बातें कीं। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम समस्या को उग्र बनाया, हिंदुओं और सिखों में मतभेद उत्पन्न किए और ब्राह्मणों को अब्राह्मणों से लड़ाया। ऐसी अन्य अनेक बाते हैं जो उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए की। हमें उन बातों को समझना होगा।

श्री लूकस : अब आपके संगठन पर आया जाए। संघ की सदस्यता कितनी है?

श्री गुरुजी : इस संबंध में कुछ कहना कठिन है। संख्या तो घटती-बढ़ती रहती है। बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं, जो संघ की दैनंदिन शाखा में आकर कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। काफी लोग केवल कभी-कभी विशिष्ट अवसरों पर सम्मिलित होते हैं। उनसे भी बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जो साधारणतया हमारे कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाते। वे सभी हमारे सदस्य स्वयंसेवक हैं। अतः कोई संख्या बता पाना कठिन है।

श्री लूकस : क्या आपके यहाँ सदस्यता नाम की कोई वस्तु नहीं है?

श्री गुरुजी : हाँ। सदस्यता नाम की वस्तु है। किंतु सदस्यता शुल्क इत्यादि कुछ नहीं है। जो हमसे सहमत हो और हमारे कार्यक्रमों में भाग ले, संगठन का सदस्य मान लिया जाता है।

श्री लूकस : सन् १९५१ में आपसे भेंट करने के उपरांत एक लेख में लिखा गया था कि आपकी सदस्यता ६ लाख है?

श्री गुरुजी : उस लेख में ऐसी बहुत सी बातें लिखी गई थीं, जो मैंने कभी नहीं कही। उसे पढ़कर मुझे कष्ट हुआ था। संख्या के संबंध में कोई अनुमान या आकलन बहुत ही कठिन है। यह सब पतंगबाजी ही है।

श्री लूकस : ऐसा ज्ञात होता है कि पिछले १० वर्षों में आपके समर्थकों की संख्या बढ़ी है। आप इसका क्या कारण समझते हैं?

श्री गुरुजी : जैसे-जैसे लोग यह अनुभव करते जा रहे हैं कि हमारे कार्य का वह स्वरूप नहीं है, जैसा कि प्रायः विरोधियों द्वारा चित्रित किया जाता है तथा जैसे-जैसे लोगों को एक संगठित जीवन की आवश्यकता की प्रतीति होती जा रही है, वैसे-वैसे लोग हमारे दृष्टिकोण को अधिक समझने एवं ग्रहण करने लगे हैं।

श्री लूकस : मुझे बताया गया है कि आपकी स्थिति अधिकाशतः हिंदी भाषी प्रदेशों और महाराष्ट्र में सुदृढ़ है।

श्री गुरुजी : नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए विदर्भ और नागपुर को छोड़कर शेष महाराष्ट्र को लें। वहाँ हमारी ४५० शाखाएँ हैं, जबकि कर्नाटक में ६५० शाखाएँ हैं। आपको ऐतिहासिक कारणों का विचार करना होगा। हमारा कार्य सर्वप्रथम नागपुर में प्रारंभ हुआ, जहाँ हिंदी और मराठी बोली जाती है। अतः नागपुर के कार्यकर्ता सर्वप्रथम महाराष्ट्र एवं हिंदी भाषी राज्यों में भेजे जा सके। उन प्रदेशों में सामान्यतया हमारी संख्या अच्छी है। दूसरे प्रदेशों में भी हम बढ़ रहे हैं। बंगाल में भी हम तेजी से बढ़ रहे हैं। आंध्र में हमारी ३०० शाखाएँ हैं। बिहार में ४०० तथा उत्तरप्रदेश में २००० शाखाएँ हैं। सबसे अधिक शाखाएँ उत्तरप्रदेश में हैं। वास्तव में यह प्रदेश भी बहुत बड़ा है, ५४ जिलों का।

श्री लूकस : प्रथम आम चुनाव में बंगाल जनसंघ ने अन्य इकाइयों की अपेक्षा अधिक सीटें पाई थीं, किंतु अब स्थिति उल्टी है। मेरे विचार से इसका कारण यह था कि सन् १९४७ में हिंदुओं ने मुसलमानों के हाथों अनेक यातनाएँ पाई थीं। अब वैसा कोई प्रत्यक्ष विरोध-भाव नहीं रहा। अतः जनसंघ की क्षति हुई है?

श्री गुरुजी : मैं भिन्न रीति से विचार करता हूँ। जनसंघ की स्थापना सर्वप्रथम बंगाल में ही डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा की गई थी। उनका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावी था। उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण ही वहाँ जनसंघ को अधिक सीटें मिली थीं। डा. मुखर्जी की आकस्मिक मृत्यु से बंगाल में कोई ऐसा शक्तिशाली व्यक्तित्व नहीं रहा। आज भी उनके अभाव की पूर्ति करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता। अतः आप यह नहीं कह सकते कि उस समय जनता में हिंदू-मुस्लिम विरोधभाव व्याप्त

होने के कारण ही जनसंघ को अधिक मत और सीटें प्राप्त हुई थीं। मुझे बताया गया है कि जनसंघ में अनेक मुसलमान भी थे।

श्री लूकस : किंतु केवल मुट्ठीभर?

श्री गुरुजी : हाँ। परंतु कांग्रेस में भी कितने हैं?

श्री लूकस : भारत में पश्चिम-विरोधी भावना के संबंध में आपका क्या विचार है?

श्री गुरुजी : कुछ अंशों में यह भावना यहाँ है। प्राथमिक रूप से तो यह वामपंथी दलों द्वारा फैलाई गई है। इसके कारण राजनीतिक हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं, जो पश्चिम के हस्तक्षेप को अच्छा नहीं समझते। उनका पश्चिम-विरोध सांस्कृतिक कारणों से है। पश्चिम का बहुत अधिक प्रभाव देखकर उसके प्रति स्वाभाविक क्षोभ व्याप्त है। जो सांस्कृतिक कारण से विरोध करते हैं, वे राष्ट्रवादी हैं। मेरे विचार से वे ठीक हैं।

कोई भी राष्ट्र एकाकी नहीं जी सकता। औद्योगीकरण तथा ऐसी ही अन्य बातों से संबंधित प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकते। किंतु राष्ट्रीय स्वरूप को त्यागे बिना ही प्रगति की जा सकती है।

श्री लूकस : आपका कार्य उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में अधिक है। क्या यह एक पर दूसरे का परिणाम है?

श्री गुरुजी : ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। हमारा कार्य अन्य प्रदेशों में भी अच्छा है।

श्री लूकस : आपने अभी कहा कि आप बंगाल में भी कार्य-प्रसार का प्रयत्न कर रहे हैं। अब तक वहाँ कितनी प्रगति हो सकी है?

श्री गुरुजी : हमारे कार्य में इस वर्ष वृद्धि हुई है, परंतु यह बहुत अधिक नहीं है।

श्री लूकस : मुझे स्मरण आता है कि मैंने एक लेख में पढ़ा है कि उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में आपकी प्रगति इसलिए अधिक है कि इन प्रदेशों में पाश्चात्य-प्रभाव अपेक्षाकृत अल्प है। आपका क्या मत है?

श्री गुरुजी : अत्यंत रोचक खोज है। किंतु तथ्य इसके विपरीत है। पंजाब बहुत अधिक पश्चिमीकृत है। विभाजन-पूर्व काल में वहाँ हमारी बहुत अच्छी संख्या में शाखाएँ थीं।

श्री लूकस : क्या पंजाबी-सूबा आंदोलन के कारण आपकी शक्ति पंजाब में घटी है?

श्री गुरुजी : मेरा तात्पर्य पंजाब के विभाजन से नहीं है। मेरा संकेत देश के विभाजन से है। विभाजन के पश्चात् पंजाब का बड़ा भाग कटकर अलग हो गया है, अतः अब स्वभावतः शेष पंजाब में कम शाखाएँ हैं। अब पश्चिमीकरण पर आइए– सिंध प्रांत बहुत अधिक पश्चिमीकृत था। सिंधी और अंग्रेज के रहन-सहन में बहुत अंतर नहीं रह गया था। किंतु सिंध में हमारे कार्य-विस्तार का उदाहरण लें।

श्री लुकस : हाँ। वह प्रांत मुझे गड़बड़ में डाल देता है। यदि बिहार में आपकी शाखाएँ बड़ी संख्या में होतीं तो मेरे मन में कोई संदेह न रह जाता। यह हिंदीभाषी प्रदेश भी है?

श्री गुरुजी : बंगाल में पश्चिमी प्रभाव कम रहा, किंतु वहाँ हमारा काम अधिक नहीं बढ़ पाया।

श्री लूकस : क्या बंगाल पर पश्चिमी प्रभाव नहीं पड़ा? यह तो उन प्रांतों में से एक था, जिनमें अंग्रेजों का प्रवेश सर्वप्रथम हुआ था?

श्री गुरुजी : यह ठीक है कि बंगाल में अंग्रेज बहुत पहले आए, किंतु बंगाली बहुत भावनाशील होता है। वह ब्रिटिश प्रभाव को अस्वीकृत करने में प्रथम रहा। आप पाएँगे कि पश्चिमी प्रभाव सन् १९४७ के बाद ही बढ़ा है। इस समय बंगाल पर पर्याप्त पश्चिमी प्रभाव है। अतः पाश्चात्य प्रभाव की कमी और संघकार्य की अधिकता के बीच कोई अनिवार्य संबंध नहीं जोड़ा जा सकता।

श्री लूकस : क्या आपका कार्य शिक्षित वर्ग, मध्यम वर्ग तथा नगरों में अधिक है? उक्त लेख के लेखक का मत यही है। यह लेख सन् १९५१ में लिखा गया था?

श्री गुरुजी : ऐसा नहीं है। उत्तर प्रदेश को लें। इस प्रदेश में २००० शाखाएँ हैं। किंतु इस प्रदेश में नगर अधिक नहीं हैं। हम अच्छी संख्या में गाँवों में पहुँच गए हैं। किंतु हमारी शक्ति का सही-सही ज्ञान ऊपर-ऊपर से सतही तौर पर देखने वालों को नहीं हो सकता। गाँव की जनसंख्या थोड़ी होती है, अतः वहाँ हमारी सदस्य-संख्या भी थोड़ी दिखाई देती है। नगरों का मामला भिन्न है। नगरों में संख्या अधिक दिखाई देती है। उन्होंने अनचाहे तथ्यों को गलत ढंग से रखा है। अब शिक्षित मध्यम वर्ग पर आइए। यह वर्ग आम तौर पर समाज का नेतृत्व करता है। लगभग सन् १९३५

तक हमारे संगठन में शिक्षित मध्यम वर्ग के ही लोग अधिक थे। किंतु जैसे-जैसे हमारा कार्य ग्रामों में फैला, हमारे यहाँ कृषि तथा अन्य धंधों में लगे लोग भी काफी बड़ी संख्या में आए।

श्री लूकस : क्या आपका काम युवा लोगों के बीच अधिक है?

श्री गुरुजी : ऐसा भी नहीं कह सकते। किसी समय कार्यकर्ता युवा थे। किंतु अब वे प्रौढ़ हो चुके हैं। एक बात अवश्य है। हम १४ वर्ष से ऊपर और ४० वर्ष से कम के व्यक्ति को तरुण ही मानते हैं। में तो चाहता हूँ कि ऊपरी सीमा अब बढ़ाकर ६० वर्ष कर दी जाए, अन्यथा मेरी गिनती भी बूढ़ों में होने लगेगी।

समस्या इस प्रकार है कि हमारा एक दैनिक कार्यक्रम है और शारीरिक व्यायाम उस कार्यक्रम का अंग है। तरुण उस शारीरिक व्यायाम के श्रम को उठा सकते हैं। अतः दैनिक शाखा में तरुण ही अधिक दिखते हैं। किंतु प्रौढ़ एवं वृद्ध लोग भी हैं। किसी भी उत्सव या विशेष समारोह में वयस्क स्वयंसेवक पर्याप्त बड़ी संख्या में सम्मिलित होते हैं।

श्री लूकस : मैं आपका बहुत आभारी हूँ। मैंने आपका बहुत समय लिया।

श्री गुरुजी : यह मेरे लिए आनंद का विषय है। (श्री गुरुजी ने श्री लूकस से हाथ मिलाते हुए कहा 'मैं आपकी रीति के अनुसार आपका अभिनंदन करता हूँ।')

संपादक दैनिक नवाकाल

(दिनांक १ जनवरी १९६९, पुणे)

नवाकालः भारत के अल्पसंख्यकों का प्रश्न किस तरह हल किया जाए?

श्री गुरुजी : लोकसभा में किसी ने मुझ पर यह आरोप लगाया कि मैं सबको हिंदू बनने के लिए कहता हूँ। इसपर केंद्रीय मंत्री श्री यशवंतराव चव्हाण ने यह व्यंग्य किया कि यह प्रतिपादन 'बिना सोचे समझे' किया गया है। किंतु क्या यह सत्य नहीं है कि भारत के अधिकांश मुसलमान और ईसाई मूलतः हिंदू ही थे? उन्हें 'अपने परिवार में वापस आओ'– ऐसा कहने में कौन सी गैरजिम्मेदारी है? किंबहुना इस आह्वान को 'गैरजिम्मेदार' कहना दायित्वहीनता की बात है।

भारत के अल्पसंख्यकों को अपनी पृथकता की बात न करते हुए, राष्ट्रजीवन के साथ समरस होना ही चाहिए। यदि वे अपनी पृथकता की बात सोचते रहे, तो वह बढ़ती ही जाएगी। यह भी दिखाई देता है कि इस अलगाव को उकसाते रहने से वह बढ़ता ही गया और अब प्रत्येक प्रदेश में 'छोटे पाकिस्तान की' माँग जड़ पकड़ती जा रही है। राजनीतिक स्वार्थ के लिए सत्ताधारी और अन्य राजनीतिक नेता सभी अल्पसंख्यकों को 'अल्पसंख्यक' के रूप में सिर चढ़ा रहे हैं। इससे अलगाव को निरंतर बढ़ावा मिल रहा है, जो घातक है। राष्ट्र-जीवन के साथ समरस होने तथा पृथकता को सर्वथा त्याज्य मानने से अल्पसंख्यक राष्ट्रजीवन में पूर्णतः विलीन होंगे, यही इस समस्या का हल है।

यही कारण है कि अल्पसंख्यकों को मैं यह आह्वान करता हूँ कि वे हिंदू धर्म में वापस आएँ। उनके पूर्वज हिंदू ही थे और उनके अपने मूलधर्म में वापस आने से वे राष्ट्रजीवन के साथ सुगमता से समरस होंगे। आजकल शुद्धिकरण द्वारा अहिंदुओं को हिंदू धर्म में स्वीकार किया जाता है। किंतु भारत के अधिकांश अहिंदू मूलतः हिंदू रहने के कारण, मैं उसे शुद्धिकरण न कहकर केवल 'परावर्तन', अर्थात् 'स्वपरिवार में वापस आना' यही शब्दप्रयोग करता हूँ।

नवाकाल : क्या आपको ऐसा लगता है कि उन्हें हिंदू धर्म में स्वीकार करते समय 'शुद्धिकरण-विधि' की आवश्यकता नहीं है?

श्री गुरुजी : शुद्धिकरण विधि तो हो, किंतु वह केवल यह भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से हो कि हम हिंदू धर्म में आए हैं। वह एक भावनात्मक आवश्यकता मात्र है। किंबहुना मैं तो यह भी कहता हूँ कि गैरहिंदू, हिंदू धर्म में आने के बाद भी परमेश्वर की आराधना अपनी-अपनी रूढ़ पुरानी पद्धति के अनुसार ही करें। इसमें कोई आपत्ति नहीं। हिंदू धर्म ने परमेश्वर का अस्तित्व स्वीकार कर लेने के बाद उसकी पूजा की विविध पद्धतियाँ समाविष्ट कर ली हैं। अतः पुनः हिंदू धर्म में आनेवाले व्यक्तियों को आराधना की जिस पद्धति का अभ्यास पड़ गया है, उसे ही वे आगे भी चालू रखें। इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

तथापि राष्ट्र-जीवन में समरसता और एकात्मता निर्माण

करने के बजाय अलगाव और फूट को ही बढ़ावा दिया जाता है और इसके लिए जो लोग कारणीभूत हैं, वे अपने आपको जिम्मेदार कहते हैं। उर्दू भाषा का ही उदाहरण लें। भारत की जो राष्ट्रभाषा है, उसे स्वीकार करने के बजाय उर्दू के लिए राजमान्यता माँगी जा रही है। इस माँग का समर्थन करनेवाले राजनीतिक नेता ही हैं। तुर्किस्तान में तुर्की भाषा, पर्शिया में फारसी और अरबस्तान में अरबी भाषा ही है। सारांश यह है कि किसी भी प्रकार का अलगाव होना ही नहीं चाहिए। अलगाव रखने देना भी उचित नहीं। उर्दू भाषा को राजमान्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं तो यह भी कहता हूँ कि अल्पसंख्यकों ने अपने सामने रुस्तम का आदर्श रखना यह भी अलगाव ही है। रुस्तम अपने देश का तो था ही नहीं, वह मुसलमान भी नहीं था। वह अपने देश का श्रेष्ठ पुरुष नहीं था, इसलिए 'राष्ट्रपुरुष' को जो स्थान प्राप्त होता है, वह रुस्तम को प्राप्त नहीं होना चाहिए। रुस्तम के स्थान पर वे रामचंद्र का आदर्श रखें। जो अपने देश के आदर्श हैं, वे ही उदाहरण के रूप में सामने रखे जाने चाहिए। अब यहाँ से प्रारंभ कर राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण समरसता कैसी हो- यह बतलाने के लिए बुद्धिपुरस्सर मैंने यह एक उदाहरण दिया है। इससे संपूर्ण समरसता का अर्थ योग्य रीति से ध्यान में आएगा।

नवाकाल : विज्ञान बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है तथा उसे देखते हुए क्या धर्म-रूढ़ियाँ बदलनी नहीं चाहिए?

श्री गुरुजी : रूढ़ियाँ तो सदा बदलती ही रहती हैं। व्यक्तिगत व सामाजिक कारणों से जो रूढ़ियाँ निर्माण होती हैं, उनमें स्वाभाविकतः ही परिवर्तन होता है। यह अनिवार्य भी है, किंतु धर्म और रूढ़ि में संभ्रम नहीं होना चाहिए। धर्म-रूढ़ि का अर्थ, धर्म के मूलभूत और आधारभूत तत्त्वज्ञान से लेना चाहिए।

नवाकाल : एक स्थान पर आपने कहा है कि विज्ञान ने ईसाई मत का कीमा बना डाला है। तब फिर क्या विज्ञान से हिंदू धर्म को भी उच्छेदकारी आघात नहीं पहुँचेगा?

श्री गुरुजी : नहीं। यही हिंदू धर्म की महानता है। विज्ञान से ईसाई धर्म के तत्त्व ही उध्वस्त हो गए, जबकि वह विज्ञान हिंदू धर्म के तत्त्वज्ञान को उध्वस्त करने के बजाय, प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध कर रहा है।

इसका एक उदाहरण देता हूँ। अपने धर्म में कहा गया है कि यह विश्व मंडलाकार है। उसका कोई आदि नहीं। आज जो विज्ञान चंद्रमा पर पहुँच चुका है, वह 'अखंड मंडलाकार'– यही निष्कर्ष निकाल रहा है न? इस विश्व का कार्यकलाप शास्त्रयुक्त है और जो अणु में वही सर्वत्र, अर्थात् जो पिंड में वही ब्रह्मांड में –यह हजारों वर्ष पूर्व का हमारे धर्म का सिद्धांत अब विज्ञान के जरिये मान्य हो रहा है। फिर यही बात सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने ही तो कही है कि आदि और अंत से रहित, किंतु नियमबद्ध इस सृष्टि के लिए कारणीभूत कोई अलौकिक शक्ति है। उस शक्ति को आप परमेश्वर कहें या न कहें, विज्ञान के द्वारा इस सृष्टि के रहस्य का आकलन करते समय ही तो उन्हें यह प्रतीति हुई है। इसलिए यह कहना सत्य नहीं है कि विज्ञान हिंदू धर्म को हिला देगा या विज्ञान के प्रकाश में हिंदू धर्म में परिवर्तन आवश्यक है।

नवाकाल : विज्ञान के द्वारा जो धर्मरूढ़ियाँ कालबाह्य सिद्ध हो रही हैं और जिनके कारण धर्मश्रद्धाओं को आघात पहुँचता हो, क्या उन रूढ़ियों पर प्रहार की आवश्यकता नहीं है?

श्री गुरुजी : धर्मरूढियाँ स्वाभाविकतः ही बदला करती हैं और यह अनिवार्यतः होता ही है। आवश्यकता इस बात की नहीं है कि धर्मरूढ़ियों को कठोरता के साथ बलपूर्वक बदला जाए, अपितु आवश्यक यह है कि पुरातन हिंदू धर्म के तत्त्वज्ञान और आज के विज्ञान में ताल-मेल किस प्रकार बैठता है, यह समझाकर बताया जाए। धर्मगुरुओं को यह कार्य करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे सभी स्थानों का भ्रमण करते हुए यह प्रतिपादित करें कि श्रुति-स्मृतियों में जो धर्म बताया गया है, वह आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में किस प्रकार से शाश्वत है।

रूढ़ियाँ तो काल के अनुसार बदला ही करती हैं, परंतु बलपूर्वक उन्हें बदलने के प्रयास में प्राचीन परंपरा को भी आघात पहुँचता है और यह क्षति बहुत बड़ी है। रूढ़ियों में परिवर्तन इस प्रकार से हो, जिससे इस तरह कोई आघात न होने पाए। इसलिए आवश्यक यह है कि धर्म के मूलभूत तत्त्वज्ञान के शाश्वत स्वरूप का मंडन आधुनिक परिभाषा में किया जाए और उसी पर समाज को स्थिर किया जाए। रीति-रिवाजों को नैसर्गिकता पर छोड़ देना चाहिए।

नवाकाल : हिंदू धर्म में जो चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है, क्या उसमें परिवर्तन जरूरी नहीं है?

श्री गुरुजी : शंकराचार्य जी ने 'कल्याण' मासिक में जो लेख लिखा और जिसपर लोकसभा में प्रश्नोत्तर हुए, वही संदर्भ आपके मन में है न?

नवाकाल : जी हाँ।

श्री गुरुजी : लोकसभा में जो प्रश्नोत्तर हुए, वे पूर्णतः अज्ञान पर आधारित थे। मेरा मत है कि प्रश्न पूछनेवाले ने लेख पढ़ा ही नहीं और यदि पढ़ा हो, तो वह उसकी समझ में नहीं आया। उसी प्रकार उस प्रश्न का उत्तर देनेवाले ने भी वह लेख नहीं पढ़ा या फिर पढ़ने के बाद भी वह उनकी समझ में नहीं आया।

पाश्चात्य विचारक भी आज इस विचार की ओर मुड़ रहे हैं कि उनका जीवन स्पर्धा पर आधारित है और जब तक यह स्पर्धा रहेगी, तब तक भौतिक प्रगति चाहे कितनी हो, सुख संभव ही नहीं है। अब उनका यह मत बन रहा है कि स्पर्धा के बजाय सहकारी पद्धति होनी चाहिए। उससे सुख प्राप्त होगा। अपने धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था सहकारी पद्धति ही तो है। किंबहुना आज की भाषा में जिसे 'गिल्ड' कहा जाता है और पहले जिसे 'जाति' कहा गया, उनका स्वरूप एक-सा ही है।

नवाकाल : वर्ण चूँकि जन्म से प्राप्त होता है, अतः यह व्यवस्था क्या अनुचित सिद्ध नहीं होती?

श्री गुरुजी : जन्म से प्राप्त होनेवाली चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में अनुचित कुछ भी नहीं है, किंतु उसमें लचीलापन रखना ही चाहिए और वैसा लचीलापन था भी। लचीलेपन से युक्त जन्म पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था उचित ही है।

नवाकाल : किंतु उसमें व्यक्ति की रुचि और रुचि के अनुसार कर्म का चयन करने की छूट न होने से क्या अन्याय नहीं होगा?

श्री गुरुजी : 'अनासक्ति योग' अपने धर्म का एक मूलभूत विचार है। गाँधी जी ने उसका प्रतिपादन अच्छी प्रकार से किया है। कर्मफल की आशा न रखकर कर्म करें, यह कहने के बाद कर्म बदलने के लिए कोई कारण ही शेष नहीं रहता। समाज के स्थायित्व और उत्कर्ष के लिए यह व्यवस्था है। कर्मफल की आशा न रखना हिंदू धर्म का मूल तत्त्व ही है। इसलिए वह व्यवस्था स्वीकार करने में किसी को

कोई कठिनाई नहीं होती।

सेना में क्या होता है? सैनिक अपना काम क्या अपनी रुचि के अनुसार चुनता है? सेनापति के आदेश के अनुसार ही वह चलता है। किसी सैनिक को यह लगता भी हो कि वह सेनापति बन जाए और वह उस पद के लिए पात्र है, तो भी वह सैनिक ही रहता है। इसलिए उनका अत्यंत अनुशासित संगठन देश की रक्षा कर सकता है। अनुशासनबद्ध समाज-रचना के लिए कर्मफल त्याग पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था आवश्यक ही है, अर्थात् पहले जैसे लचीलेपन के साथ।

नवाकाल : हिंदू धर्म यदि कर्मठ नहीं है, फिर इसमें भी परिवर्तन क्यों न हो?

श्री गुरुजी : 'कर्मठ नहीं' का अर्थ वह रूढ़ि और रीति-रिवाजों के संबंध में कर्मठ नहीं है, परमात्मा के स्वरूप के आविष्कार और आराधना की पद्धतियों के विषय में कर्मठ नहीं है। हिंदू धर्म कितने ही देवताओं और कितनी ही पूजा-पद्धतियों को अपने भीतर समा लेता है, परंतु मूलभूत और स्थायित्व के लिए आवश्यक ऐसे धर्मतत्त्व में परिवर्तन कैसे स्वीकार किया जाएगा?

शिल्प-विज्ञान बताता है कि पत्थरों में भी चार वर्ण हैं। इन चार वर्णों के पत्थरों को एक साथ बैठाया जाए, तो जुड़ाई बहुत ही मजबूत होती है। पशु-पक्षियों में व इस सृष्टि की सभी वस्तुओं में चार वर्ण हैं। 'कल्याण' मासिक के लेख में कहा गया है कि कुत्तों-बिल्लियों में भी चार वर्ण हैं, परंतु इस प्रतिपादन को विकृत स्वरूप देकर कहा गया कि लेख में शूद्रों को कुत्ते-बिल्लियों की तरह माना गया है।

नवाकाल : किंतु चातुर्वर्ण्य रूढ़ि है या धर्म?

श्री गुरुजी : वह रूढ़ि नहीं, अपितु धर्म ही है। श्रुति-स्मृति ईश्वरनिर्मित है और उसमें बताई गई चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था भी ईश्वरनिर्मित है। किंबहुना वह ईश्वरनिर्मित होने के कारण ही उसमें तोड़-मरोड़ हो जाती है, तब भी हम चिंता नहीं करते। क्योंकि मनुष्य आज तोड़-मरोड़ करता भी है, तब भी जो ईश्वरनिर्मित योजना है, वह पुनः-पुनः प्रस्थापित होकर ही रहेगी।

नवाकाल : परंतु विज्ञान के बिना राष्ट्र टिक नहीं सकेगा और विज्ञान के

लिए तो बुद्धिनिष्ठा चाहिए। इस बुद्धिनिष्ठा के अनुरूप क्या कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है?

श्री गुरुजी : विज्ञान के लिए बुद्धिनिष्ठा चाहिए– यह सच है, परंतु उसमें से यदि यह ध्वनित होता हो कि धर्म में बुद्धिनिष्ठा नहीं रहा करती, तब तो वह असत्य है। अपना धर्म बुद्धिनिष्ठ ही है, इसलिए भगवद्गीता के प्रारंभ में ही कहा गया है कि 'बुद्धि की शरण लो।'

नवाकाल : हिंदू धर्म का चातुर्वर्ण्य मूलतः गुणकर्मशः अर्थात् गुण और चुने गए कर्म के अनुसार ही था और बाद में ही वह जन्माधिष्ठित हुआ?

श्री गुरुजी : गुणकर्मशः था– यह सच है, परंतु यह अर्थ गलत है कि गुण, याने पात्रता और कर्म, याने रुचि के अनुसार स्वीकार किया गया कर्म। गुण का अर्थ है सत्व, रज और तम। कर्म का अर्थ है पूर्वजन्म में किए गए कर्म। पूर्वजन्म के कर्मानुसार इस जन्म में वर्ण प्राप्त होता है और इस जन्म के कर्मों के अनुसार अगले जन्म में वर्ण प्राप्त होता है। हाल ही में मैंने एक लेख पढ़ा। उसमें कहा गया है कि इसी जन्म के कर्मों के अनुसार वर्ण बदला जा सकता है और चातुर्वर्ण्य के लचीलेपन की दृष्टि से वह गलत नहीं है। अब आप यदि यह पूछें कि यही अर्थ कैसे सही है, तो मै कहूँगा कि हिंदू धर्म का आधारभूत सिद्धांत 'पुनर्जन्म और कर्मानुसार पुनर्जन्म' स्वीकार कर लेने के बाद अपरिहार्य रूप से ही यही अर्थ निकलता है।

नवाकाल : अस्पृश्यता की समस्या कैसे हल होगी?

श्री गुरुजी : हरिजनों की अस्पृश्यता की समस्या अत्यंत विकट हो गई है, किंतु वह स्वयंमेव सुलझने के मार्ग पर है। वह जितना शीघ्र सुलझे, उतना ही उत्तम होगा। तथापि 'अस्पृश्यता निवारण अभियान' का ढिंढोरा पीटते हुए कदम उठाने से 'निवारण' के बजाय 'संघर्ष' ही बढ़ता है और दुराग्रह निर्माण होकर इष्ट हेतु साध्य होने के स्थान पर समस्या और भी अधिक जटिल हो जाती है।

इसलिए हमारा यह प्रयास है कि अस्पृश्य माने जानेवालों का शुद्धिकरण करने से भी अत्यंत सरल कोई विधि तैयार की जाए। धर्मगुरुओं द्वारा यह विधि बनाई गई और उसे स्वीकृति दे दी गई, तो उस विधि के पीछे प्रत्यक्ष धर्म की ही शक्ति खड़ी हो जाएगी

और विरोधकों का विरोध ढीला पड़ जाएगा।

नवाकाल : यह विधि कितनी आसान होगी?

श्री गुरुजी : इतनी सरल कि गले में माला डालकर प्रणाम और नामस्मरण कर लेना मात्र पर्याप्त होगा।

नवाकाल : यह कदम कब तक उठाया जाएगा?

श्री गुरुजी : बहुत शीघ्र ही। इस दिशा में मेरे प्रयास तेजी से जारी हैं। हरिजनों के उत्कर्ष के लिए विशेष प्रयत्न किए ही जाने चाहिए। अपने घर में यदि कोई बीमार हो जाए तो स्वयं कष्ट, क्लेश उठाकर भी हम सब कुछ करते ही हैं, वही न्याय यहाँ भी लागू है। अपने ही घर का व्यक्ति बीमार है ऐसा मानकर, त्याग-भावना से अन्य सभी लोगों को भरसक प्रयत्न करना पड़ेगा।

नवाकाल : आपने कहा है कि केवल विज्ञान ही नहीं तो अपना धर्म भी अत्यंत बुद्धिनिष्ठ है, किंतु बुद्धिनिष्ठा तो कहती है कि गाय केवल उपयोगी पशु है, जबकि धर्मनिष्ठा बताती है कि गाय गोमाता है।

श्री गुरुजी : गाय को गोमाता कहना बुद्धिनिष्ठा ही तो है। विचार करें, आठ-दस महीने जो हमें दूध पिलाती है, उसे हम माता मानते हैं, फिर जो हमें जीवनभर दूध देती है, वह क्या गोमाता नहीं है? अमरीका विज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत प्रगत देश है, किंतु वहाँ भी विशेषज्ञ इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि कृत्रिम खादों से भूमि का उर्वरापन समाप्त हो रहा है। ये अमरीकी विशेषज्ञ ही अब यह कहने लगे हैं कि गोबर और पत्तों की खाद ही श्रेष्ठ हैं। यह खाद भूमि का उर्वरापन नष्ट किए बिना ही उपज बढ़ाती है।

जापान में यह कहा जाने लगा है कि खेत की जुताई के लिए ट्रैक्टर की तुलना में बैल अधिक उपयोगी हैं। बैल सस्ता पड़ता है और मृत्यु के बाद भी उसका उपयोग होता है।

मुझे याद है, अपने यहाँ के 'आरा' के एक सज्जन ने बताया कि अन्य दुधारू पशुओं की तुलना में, उतने ही खर्च में गाय का दूध अधिक प्राप्त है। गाय सर्वगुणी है, वह गोमाता है। यदि हमेशा की तरह पाश्चात्यों को पश्चात् बुद्धि हो रही हो, तब फिर उनकी राह पर जाने से हमें क्या हासिल होगा?

नवाकाल : फिर भी, 'गोमाता' कहने के कारण गाय यदि बूढ़ी हो और आर्थिक दृष्टि से वह अलाभकर हो, तो भी मारी नहीं जा सकेगी। उसका क्या हो?

श्री गुरुजी : सबसे पहले यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जो गायें मारी जाती हैं, वे बूढ़ी नहीं होतीं। इसके साथ ही यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि अपनी अन्य उपयोगिताओं के कारण बूढ़ी गायें भी आर्थिक बोझ नहीं बना करती हैं। अब हत्या के विषय में बताना हो, तो सच यह है कि चमड़े के लिए बछड़े और मांस के लिए अच्छी हृष्टपुष्ट गायें ही मारी जाती हैं।

आज तो जहाँ पाबंदी है, वहाँ भी गोहत्या होती है, परंतु पहले रियासतों में गोहत्या नहीं होती थी। उस समय यह बात ध्यान में आई कि जहाँ गोहत्या होती थी, वहाँ बूढ़ी गायों का प्रमाण साढ़े सात प्रतिशत था और जहाँ गोहत्या नहीं होती थी, वहाँ यही प्रमाण आधा प्रतिशत था।

यह आँकड़े देखकर सर्वोच्च न्यायालय के एक भूतपूर्व न्यायमूर्ति आश्चर्यचकित रह गए। उक्त आँकडों का यह अर्थ उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि गोहत्या बूढ़ी गायों की नहीं, अपितु हृष्ट-पुष्ट गायों की ही हुआ करती है।

नवाकाल : धर्मगुरुओं से जो कार्य अपेक्षित है, उस दृष्टि से वर्तमान शंकराचार्यों के कार्य क्या असमाधानकारक प्रतीत नहीं होते?

श्री गुरुजी : कोई भी संस्था चिरकाल तक अच्छी नहीं रहा करती। फिर भी यह भाग्य की बात है कि शंकराचार्य के पीठों का कार्य एक हजार वर्ष तक अच्छा चलता रहा।

नवाकाल : तात्पर्य यह कि पिछले २०० वर्ष से ठीक नहीं हैं।

श्री गुरुजी : ज्योतिर्मठ के पीठ पर तो विगत १५० वर्ष तक शंकराचार्य थे ही नहीं। वह पीठ रिक्त ही था। इसलिए मैंने कहा कि हजार वर्ष तक ठीक चला।

नवाकाल : शंकराचार्य को निश्चित रूप से कौन-सा कार्य करना चाहिए?

श्री गुरुजी : सदाचार और धर्म के ही एक अंग, अर्थात् शुद्ध राष्ट्र-भावना का जनता में प्रसार करना चाहिए व जागृति करनी चाहिए। आधुनिक जीवन के दृष्टिकोण से अपने धर्म के मूल तत्त्वज्ञान का मंडन करना चाहिए। विज्ञान के साथ अपने धर्म का ताल-मेल किस प्रकार बैठता है, यह दर्शाते हुए व इसका प्रचार करते हुए, इसपर प्रवचन देते हुए देश के कोने-कोने में उन्हें भ्रमण करना चाहिए। इससे समाज की धारणा उत्तम और स्वस्थ बनने में सहायता मिलेगी।

नवाकाल : सबको समान अवसर प्राप्त हो, यह तत्त्व किस प्रकार अमल में लाया जाए?

श्री गुरुजी : सर्वप्रथम यह ध्यान में रखें कि समान अवसर का अर्थ 'नौकरी' नहीं है। अंग्रेजों के शासनकाल में बहुसंख्य ब्राह्मणवर्ग नौकरियों और रायबहादुरी की धुन में लग गया। याने स्वयं अकिंचन, किंतु स्वतंत्र व निस्पृह रहकर समाज के मार्गदर्शन का दायित्व जिस वर्ग पर था, उसी वर्ग ने दास्य स्वीकार कर समाज को आघात पहुँचाया। ब्राह्मणों के इस आचरण से समाज का बहुत बड़ा नुकसान हुआ।

प्रत्येक व्यक्ति को अपना कार्य करना चाहिए और शिक्षा ग्रहण कर उसे अधिक अच्छी तरह संपन्न करना चाहिए। किसान का लड़का शिक्षा प्राप्त करते ही खेती छोड़कर नौकरी के पीछे भागता है। इसमें किसका हित है? इससे देश की स्थिति असंतुलित हो रही है। शिक्षा केवल पेट भरने के लिए नहीं, अपितु प्रत्येक के व्यवसाय के लिए उपयोगी होनी चाहिए और वैसी शिक्षा प्राप्त करने का सबको समान अवसर मिलना चाहिए।

अंग्रेजों के राज्यकाल में नौकरी के पीछे लगकर ब्राह्मणों ने जैसा आघात पहुँचाया, वैसा ही आज के स्वतंत्रता-सेनानियों ने समाज को धक्का पहुँचाया है। जेल जाने व त्याग करने के कारण उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। परंतु इन्हीं लोगों ने सत्ता और स्वार्थ के पीछे पड़कर समाज को जबरदस्त आघात पहुँचाया। वास्तव में जो उदारमतवादी थे, फिर भी शासन चलाने की दृष्टि से योग्य थे, सत्ता उन्हीं के हाथों में सौंपनी चाहिए थी। ऐसा करने के बजाय जो लोग स्वतंत्रता के लिए जेल गए, जिन्होंने सत्याग्रह किया, वे ही सत्ता पर आ गए और स्वार्थ में डूबकर उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा भी खो दी। उन्होंने समाज के स्थायित्व के लिए ही खतरा पैदा कर दिया।

गाँधी जी ने कांग्रेस को विसर्जित करने की जो कल्पना प्रस्तुत की थी, वह बहुत ही अच्छी थी। शांतिकाल में युद्धकाल की सर्वश्रेष्ठ संरचना भी विसर्जित करनी जरूरी हो जाती है। गाँधी जी का सुझाव ठीक ऐसा ही था। उनकी अनासक्ति पर आधारित ट्रस्टीशिप की कल्पना भी उत्कृष्ट थी, परंतु उनकी बात किसी ने सुनी नहीं।

स्वयं मंत्री का रहन-सहन अत्यंत सादगीपूर्ण होना चाहिए।

आने-जानेवालों पर जो खर्च होता हो, सो तो होता ही है, परंतु मंत्रियों को गाँधी जी के समान ही झोपड़ियों में रहना चाहिए। विजयनगर के माधवाचार्य का उदाहरण लें या फिर आर्य चाणक्य का। दोनों भी वैभव में फकीर ही रहे। माधवाचार्य तो जंगल में एक झोंपड़ी में रहते थे। प्राणों का संकट है– ऐसी चेतावनी देने पर भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं दिया करते थे। इसके विपरीत हमारे मंत्री वैभव में रहे, आज भी रहते हैं। चारों ओर दारिद्रय रहते हुए भी उनका ऐश-आराम चलता है। समाज पर इन सब बातों से अनिष्ट आघात हुए हैं।

नवाकाल : एकात्मता कैसे स्थापित हो सकती है?

श्री गुरुजी : अल्पसंख्यकों के अधिकार और विशेष अधिकार के दृष्टिकोण से 'इंटीग्रेशन' का विचार करना, याने 'डिसइंटीग्रेशन' मोल लेना है और राजनीतिक नेता यह अनिष्ट कार्य कर रहे हैं। एक-एक जमात या प्रदेश की विशेषता बनाए रखने की बात भी उतनी ही घातक है। हैदराबाद की विशेषता, गोवा का वैशिष्ट्य– इनका अर्थ क्या है? इससे पृथकता प्रयत्नपूर्वक बनाई रखी जाएगी तथा कटुता और प्रतिस्पर्धा ही नहीं भड़केगी क्या? खैर समझिए कि दुर्बल मनुष्य की दुर्बलता का वैशिष्ट्य बनाए रखने का प्रयास करने नहीं चले हैं।

पचास प्रकार के कपड़े जोड़कर कश्मीरी दुशाला नहीं बनता, वह तो गुदड़ी बनती है। पृथकता की भावना से पूर्णतया विरहित और समरस घटकावयवों से ही भारत की एकात्मता का दुशाला हाथ आएगा।

ॐ ॐ ॐ

स्पष्टीकरण

(दैनिक समाचार-पत्र 'नवाकाल' में प्रकाशित साक्षात्कार से उठाए गए अनावश्यक विवाद के कारण निर्माण हुए संभ्रम को दूर करने के लिए श्री गुरुजी द्वारा ४ फरवरी १९६९ को एर्नाकुलम से दिया गया स्पष्टीकरण)

शहरों से लेकर ग्रामीण भागों तक और गिरि-कंदराओं से लेकर मैदानों तक फैले हुए हिंदू-समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति जाति-पाँति,

गरीबी, अमीरी, साक्षर, निरक्षर, विद्वान आदि का विचार न करते हुए सबको एकत्र लाना, यही संघ का कार्य है।

उपर्युक्त उद्‌देश्यों को व्याघात पहुँचानेवाली कोई भी बात मुझे कभी पसंद नहीं आ सकती। प्रगतिशीलपन की भाषा बोलने वाले राजनीतिज्ञ केवल अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए समाज में भय पैदा करनेवाले कार्य कर रहे हैं।

मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि अपने समाज में कुछ लोग अस्पृश्य हैं। संघ में स्पृश्यता-अस्पृश्यता का विचार ही नहीं होता, यह बताने की जरूरत नहीं है। किंतु अनुभव ऐसा आ रहा है कि अस्पृश्यता-निवारण का कोई कानून बना कर भी यह समस्या हल नहीं हो सकी है, इसके विपरीत उसका स्वरूप अनेक स्थानों पर अधिक उग्र हुआ है। ऐसी स्थिति में धर्मगुरुओं के समर्थन से कोई सरल विधि खोजकर लोगों की मानसिक बाधा दूर की जाए तो उसमें समाज का हित है। इस सरल मानसिक उपाय का अनुसरण करने में किसी को एतराज नहीं होना चाहिए।

हरिजन बांधवों को अगर आज की परिस्थिति से क्षोभ है, तो इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। उनके मन की कटुता दूर हो और वे अपने को समाज का गौरवपूर्ण अंग समझें, इस पद्धति से उनके साथ बर्ताव करना चाहिए।

यह मत गलत है कि हरिजनों को हिंदू-समाज का अंग होने के बारे में गर्व नहीं है या उन्होंने भारी संख्या में धर्म-परिवर्तन किया है। बंगाल का उदाहरण लें। नाम शूद्र कही जानेवाली जाति ने वहाँ धर्मरक्षा का प्राणपण से प्रयत्न किया और देश के विभाजन के बाद भी वे लोग अनंत यातनाएँ सहकर भी अपने धर्म से चिपटे रहे। वस्तुतः इन बंधुओं को सिरमाथे चढ़ाना चाहिए। राजस्थान के भील समाज ने भी अपूर्व देशभक्ति का अब तक परिचय दिया है, फिर भी आज उनकी दुःस्थिति को दूर करने की कोई चेष्टा नहीं होती, यह दुःख का विषय है।

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म विभागशः' का विचार किसी को दबानेवाला है, यह बात मुझे नहीं जँचती, प्रत्युत यह कर्म-सिद्धांत मानव के लिए प्रेरक ही सिद्ध होगा। इस सिद्धांत से तथाकथित भाग्यवादी प्रवृत्ति को प्रश्रय मिलेगा, यह भय निराधार है। अपने द्वारा जो भी अनिष्ट कर्म हुए हों, उनके परिणामों को धो डालने का सामर्थ्य मानव में है। अपना

धर्म-विचार इसमें श्रद्धा रखने को कहता है। चातुर्वर्ण्य, याने समाज में भेदभाव या ऊँच-नीच का भाव पैदा करने की पद्धति नहीं है। समाज सहकार्य से तथा अनावश्यक स्पर्धा को टाल कर प्रगति की ओर बढ़े, इसलिए यह व्यवस्था है। समाज का कोई अंग श्रेष्ठ या कोई अंग कनिष्ठ- ऐसा इस व्यवस्था में कहीं भी नहीं है। यदि वह विचार कहीं घुस गया हो तो वह विकृति है। इस विकृति का दोष इस मूलतः शास्त्रशुद्ध व्यवस्था के मत्थे मढ़ना ठीक नहीं है। मनुष्य का एक ही जन्म में वर्ण बदल जाता है। यह मैंने उस मूल भेंट के दौरान कहा ही था।

मूलतः चार वर्ण नहीं थे, केवल एक ही 'हंस' वर्ण था। इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। केवल एक ही वर्ण से समाज की धारणा सुचारु रूप से नहीं होती, यह अनुभव करने के पश्चात् ही कर्तव्यों का विभाजन हुआ।

भेंट के विवरण में यद्यपि 'श्रुति-स्मृति' शब्द-प्रयोग प्रकाशित हुआ है, तथापि 'स्मृति' ईश्वरनिर्मित है, यह मेरा अभिप्राय कदापि नहीं था और जातियों का भी उल्लेख मैंने किया नहीं था। 'वर्णधर्म' ऐसा प्रयोग मैंने किया था। अलग-अलग स्मृतियाँ समय-समय पर निर्माण हुईं, इसका स्पष्ट कारण यह है कि युगानुसार समाज के व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। कानून को परिस्थिति के अनुसार बदलना पड़ता है और निरुपयोगी सिद्ध हुआ तो रद्द करना पड़ता है, यह सदैव का अनुभव है। उसमें महत्त्व की बात यह है कि परिवर्तन करते समय मूल परंपरा का सूत्र खंडित नहीं होना चाहिए। इसलिए स्मृतिकारों ने वर्णधर्म को प्रमाण मानकर समाज के आचार-व्यवहार को नियमबद्ध करने का समय-समय पर प्रयत्न किया है।

उस भेंट की भूमिका शास्त्रीय चर्चा की है। वर्ण-व्यवस्था की शास्त्रशुद्धता के संबंध में बौद्धिक प्रामाणिकता को सुरक्षित रखकर चाहे जितनी चर्चा हो सकती है। ऐसी चर्चा सदा ही होती आई है। आज वर्ण-व्यवस्था व्यवहार में दिखाई नहीं देती, इस बारे में मुझे कुछ शिकायत नहीं है। उसे समाज पर थोपना चाहिए, ऐसा भी मेरा आग्रह नहीं है। जो शास्त्रीय और शाश्वत सत्य है, वह नष्ट नहीं होगा- यह मेरी धारणा है।

संपादक, साप्ताहिक 'आर्गनायजर'

('नवाकाल' में छपे साक्षात्कार के कारण उठे अनावश्यक विवाद के बाद आर्गनायजर द्वारा ८ मार्च १९६९ लिया गया साक्षात्कार)

आर्गनायजर : जातिव्यवस्था विषयक आपके कथित मत के विषय में विगत कुछ दिनों से काफी हंगामा हो रहा है। लगता है, उस विषय में कुछ भ्रांति है।

श्री गुरुजी : भ्रांति जैसी कोई बात नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जो मेरे प्रत्येक कथन को तोड़-मरोड़कर रखते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि देश को मटियामेट करने के उनके षड्यंत्रों में एकमेव संघ ही बाधक है।

आर्गनायजर : जाति के विषय में आपका निश्चित दृष्टिकोण क्या है?

श्री गुरुजी : संघ किसी जाति को मान्यता नहीं देता। उसके समक्ष प्रत्येक व्यक्ति हिंदू है। राष्ट्रीय एकात्मता की बातें करनेवालों ने ही अल्पसंख्यकों व बहुसंख्यकों, अनुसूचित जनजातियों व अनुसूचित जातियों व पहाड़ी जातियों तथा वन्य जातियों, पिछड़े वर्गों आदि में समाज को विभक्त कर रखा है। राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति यह एक सर्वाधिक अराष्ट्रीय दृष्टिकोण है। ये लोग नहीं जानते कि इस गरीब देश का अन्य कोई जितना गरीब है, उतना ही ब्राह्मण भी गरीब है। उनमें से ९० प्रतिशत लोगों को दो समय भरपेट भोजन भी नहीं मिलता।

आर्गनायजर : जाति के प्रति आपका दृष्टिकोण क्या है?

श्री गुरुजी : जाति अपने समय में एक महान संस्था थी। किंतु आज वह देश व कालबाह्य है। जो लचीला न हो वह शीघ्र ही प्रस्तरित वस्तु बन जाता है। मैं चाहता हूँ कि अस्पृश्यता कानूनी रूप से ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी समाप्त हो। इस दृष्टि से मेरी बहुत अधिक इच्छा है कि अस्पृश्यता-निवारण को धर्मगुरु धार्मिक मान्यता प्रदान करें।

मेरा यह भी मत है कि मनुष्य का सच्चा धर्म यही है कि उसका जो भी कर्तव्य हो, उसे बिना ऊँच-नीच का विचार किए, अपनी श्रेष्ठतम योग्यता के साथ वह करे। सभी कार्य पूजास्वरूप हैं और उन्हें पूजा की भावना से ही किया जाना

चाहिए। मैं जाति को प्राचीन कवच के रूप में देखता हूँ। अपने समय में उसने अपना कर्तव्य किया, किंतु आज वह असंगत है। अन्य क्षेत्रों की तुलना में पश्चिम-पंजाब व पूर्व बंगाल में जाति-व्यवस्था दुर्बल थी। यही कारण है कि ये क्षेत्र इस्लाम के सामने परास्त हुए। वह स्वार्थी लोगों द्वारा थोपी गई अनिष्ट बात है– ऐसी अज्ञानमूलक भर्त्सना करने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। अपने समय में वह एक महान संस्था थी तथा जिस समय चारों ओर अन्य सभी कुछ ढहता दिखाई दे रहा था, उस समय वह समाज को संगठित रखने में लाभप्रद सिद्ध हुई।

आर्गनायजर : वर्ण व जाति में क्या अंतर है?

श्री गुरुजी : वर्ण चार हैं, जातियाँ अगणित हैं। जाति का आधार व्यवसाय है और वर्ण का आधार अनुवांशिकता है। वर्ण-व्यवस्था मेन्डेल्स द्वारा प्रतिपादित आनुवंशिकता के आधुनिक सिद्धांत का ही प्राचीन रूप है।

हमारे प्राचीन ऋषियों के अनुसार मनुष्य, पशु, पेड़ और यहाँ तक कि पत्थर भी चार प्रकार की किरणों का उत्सर्जन करते हैं। इसका संबंध गुणों से है, न कि त्वचा के रंग से। इसलिए कोई ब्राह्मण काला हो सकता है और कोई शूद्र गोरा हो सकता है। उसी प्रकार जन्म-कुंडली के अनुसार किसी व्यक्ति का वर्ण उसके जन्मवर्ण से भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए मैं जन्म से ब्राह्मण हूँ, किंतु जन्मकुंडली से क्षत्रिय।

आर्गनायजर : यह वर्ण कैसे निश्चित होता है?

श्री गुरुजी : उसका निर्धारण पूर्वजन्मों के गुण व कर्म से होता है।

आर्गनायजर : आधुनिक मनुष्य का पूर्वजन्म पर विश्वास करना कठिन होता है।

श्री गुरुजी : पुरातन काल से यह श्रद्धा चली आ रही है और हिंदू उस पर विश्वास करते हैं। तथाकथित आधुनिक भारतीय की व्याधि यह है कि वह हजार वर्ष की गुलामी के कारण अपना विश्वास खो बैठा है। एक समय था, जब हिंदू अपने मापदंड से विश्व को मापता था। वे जो करते थे, वह सभ्य माना जाता था तथा जो समाज वर्ण को मानते नहीं थे, वे म्लेच्छ समझे जाते थे। आज वे स्वयं को विदेशी मापदंडों से मापते हैं। यह तो हमारे

अराष्ट्रीकरण का माप है। मुझे विश्वास है कि पश्चिम यदि वर्ण व जाति की सराहना करना प्रारंभ कर दे, तो ये ही लोग इन संस्थाओं की भर्त्सना करना बंद कर देंगे।

आर्गनायजर : जाति में दोष क्यों आए?

श्री गुरुजी : ब्राह्मण ने जब अपने धर्म का परित्याग कर दिया और नौकरियों के लिए उसने स्पर्धा प्रारंभ कर दी, उसने वर्ण का आधार ही समाप्त कर डाला। आज प्रत्येक व्यक्ति बाबू बनना चाहता है, कोई सोचता ही नहीं कि जिस काम को वह जानता है, उसे ही वह उत्तम रीति से करे। इसी मनोवृत्ति के कारण ग्रामीण लोग गाँव छोड़कर कुर्सी की आस में शहर की ओर जा रहे हैं। मेरा एक मालगुजार मित्र है। वह कृषि-प्रशिक्षण के लिए अमरीका गया था। वहाँ से वह कोई उपाधि लिए बिना ही लौट आया। इससे उसके मित्र आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने उसे बताया कि यदि वह कोई अमरीकी उपाधि से विभूषित होकर आता, तो उसे कृषि-विभाग में कोई बढ़िया नौकरी मिल जाती। किंतु उसने उत्तर दिया 'मैं खेती सीखने गया था और वह मैंने सीख ली है। अब मैं अपनी खेती में सुधार कर सकता हूँ और दूसरों को भी उनकी खेती सुधारने में मदद कर सकता हूँ। मेरे लिए इसका महत्त्व नहीं है कि डिग्री की पूछ है या नहीं', काम के प्रति सही दृष्टिकोण यही है।

आर्गनायजर : अभी-अभी एक समाचार पढ़ा है कि प्रयाग विश्वविद्यालय के एक छात्रावास में हरिजन छात्रों को प्रवेश की अनुमति नहीं दी गई।

श्री गुरुजी : मुझे दुःख होता है यह सुनकर। लगभग ४० वर्ष पूर्व जब मैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ता था, तब एक गरीब हरिजन विद्यार्थी ने अपनी भोजन की समस्या मुझे बताई। मैंने अपने भोजनालय के मित्रों से इस संबंध में बातचीत की, तो सबने अपने साथ उसे भोजन कराना सहर्ष स्वीकार कर लिया, वह भी निःशुल्क। यह व्यवस्था पूरे दो वर्ष तक चलती रही।

जाति-संबंधी उथली आलोचनाओं पर मैं विश्वास नहीं करता। मैं उसे सहृदयता से समाप्त करना अधिक पसंद करूँगा। पिछले ही सप्ताह, कोचीन में मैंने एक श्रेष्ठ नंबूद्री ब्राह्मण के साथ छोटी समझी जानेवाली जाति के एक इड़वा के यहाँ भोजन किया।

समस्या सुलझाने का यही तरीका है, हो-हल्ला मचाना नहीं। कुछ ही वर्ष पूर्व समाचार-पत्रों में समाचार प्रकाशित हुआ था कि आचार्य विनोबा जी के साथ एक हरिजन होने के कारण उन्हें बैद्यनाथ धाम में प्रवेश करने से मना किया गया। बाद में पूछताछ करने पर मुझे पता चला कि पंडों ने हरिजन के बारे में आपत्ति नहीं की थी, अपितु विनोबाजी के साथ जो मुसलमान और ईसाई थे, उन पर आपत्ति की थी। एक हिंदू के नाते हरिजन मंदिर में प्रवेश कर सकता है, उसे प्रवेश करना ही चाहिए, उसे कोई रोकनेवाला नहीं है। इसके विपरीत तू-तू, मैं-मैं करना या आह्वान देना कोई अच्छी बात नहीं है। उससे सनसनी निर्माण हो सकती है, परंतु समस्या हल नहीं होगी।

आर्गनायजर : गैरईसाइयों के गिरजाघर-प्रवेश पर ईसाईयों को कोई आपत्ति नहीं है, तब मंदिरों में अहिंदुओं के प्रवेश पर हमें क्यों आपत्ति होनी चाहिए?

श्री गुरुजी : हिंदू प्रत्येक धार्मिक स्थान में ईश्वर को देखता है। क्या मुसलमान या ईसाई हिंदू-मंदिर में ईश्वर को देखता है? यदि वह देखता है और तदनुसार आचरण करता है, तो उसका स्वागत ही है।

श्री शिरूभाऊ लिमये

('नवाकाल' में प्रकाशित साक्षात्कार से उठे विवाद के संदर्भ में गाँधीवादी समाजवाद के पुरस्कर्ता व 'जात-पात तोड़क मंडल', पुणे के अध्यक्ष श्री शिरूभाऊ लिमये के सम्मुख व्यक्त किये गए श्री गुरुजी के विचार)

श्री लिमये : अस्पृश्यता समाप्त करने का सरल मार्ग आपने सुझाया है, ऐसा आप कहते हैं। पर अस्पृश्य कौन है? यह मेरी धारणा है कि अस्पृश्यों को शुद्ध करने का अधिकार इन धर्माचार्यों को किसने दिया? हम इन्हें धर्माचार्य नहीं मानते।

श्री गुरुजी : कुछ बातों पर हमें विशेष ध्यान देना होगा। अस्पृश्यता केवल अस्पृश्यों का ही प्रश्न नहीं है। कौन कहाँ जन्म लेता है, यह किसी

के वश की बात नहीं है। मैं इसी कुल में जन्म लूँगा, यह कोई नहीं कह सकता। अतः अस्पृश्यता सवर्णों की संकुचित मनोभावना का नामकरण है। अतएव अस्पृश्यता समाप्त करना इसका तात्पर्य उस संकुचित भावना को समाप्त करना है। इसी प्रकार आप या मैं धर्माचार्यों को मानता हूँ या नहीं, इससे कोई संबंध नहीं है। जो अस्पृश्यता मानते हैं, वे धर्माचार्यों को भी मानते हैं। अतएव धर्माचार्यों के माध्यम से इस प्रश्न को सुलझाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विगत कई वर्षों से मेरे अनेक धर्माचार्यों एवं शंकराचार्यों से निकट के संबंध रहे हैं। जिससे मैं यह कह सकता हूँ कि धर्माचार्य यह कार्य अवश्य करेंगे। अर्थात् अस्पृश्यता समाप्त करने का कार्य अनेकों ने किया है। महात्मा गाँधी का इसमे गुरुतर सहयोग है। अस्पृश्यता निवारण में जो पचासों प्रयोग हो रहे हैं, उसमे मेरा भी एक योगदान है।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपना देश इंग्लैंड या अमरीका जैसा संवैधानिक विचारधारावाला (constitutional minded) नहीं हैं, अपितु वह धर्मानुरूप व्यवहार करनेवाला है। हम प्रायः देखते हैं कि अनेक स्थानों पर घरों मे भूमिपूजन, वास्तुशांति अथवा गृहप्रवेशादि अवसरों पर धार्मिक कार्य किए जाते हैं।

इस प्रकार धार्मिक कार्यों द्वारा सारे संकटों का, अनिष्टों का परिमार्जन होता है– ऐसी धारणा रूढ़ है। विवाहादि में भी यही देखा जाता है। स्त्री-पुरुष एकत्र आने पर उनके संसार नही चलेंगे अथवा संतान नहीं होंगी– ऐसी कोई बात नहीं है। परंतु समाज इसे स्वीकार नहीं करता। किंतु यदि समाज को ज्ञात हो जाए कि उनका विवाह हुआ है, उन पर धार्मिक संस्कार हुए हैं, तब समाज उन्हें सहज स्वीकार कर लेता है। अपने राज्य में भी यहाँ के समाजवादी मुख्यमंत्री ने कोयना बाँध-निर्माण कार्य पूर्व नाव से कोयना नदी की मुख्य जलधारा में खड़े होकर उसकी सौभाग्य द्रव्यों से विधिवत अर्चना की। इसका क्या अर्थ निकाला जाए? जब किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को सामाजिक मान्यता मिल जाती है, तब वह शंकातीत हो जाता है तथा यह धार्मिक मान्यता सर्वसामान्य समाज को संतुष्ट करती है।

दूसरा यह कि मैंने सुझाए गए उपाय में यह कहा है कि तथाकथित अस्पृश्य बंधुओं ने राम-नाम का उच्चारण करना

चाहिए एवं हिंदू धर्माचार्यों ने उन्हें माला पहनाना चाहिए। यद्यपि राज्य संविधान के अनुसार अस्पृश्यता समाप्त हो गई है– ऐसा हम मान भी लें, तब भी अनेकों के मन में आशंका या ऐंठ बनी रहे, तब धर्माचार्यों की इस कृति से इन अस्पृश्यों के पीछे धर्म की मान्यता ढाल बनकर खड़ी है, यह धारणा बनती है। यदि इक्का-दुक्का इस आशंका या ऐंठ से ग्रसित हो, तब चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

श्री लिमये : आप कहते कि चातुर्वर्ण्य ईश्वरनिर्मित है। इससे आपका क्या तात्पर्य है? क्या इस प्रकार की व्यवस्था ईश्वरनिर्मित हो सकती है?

श्री गुरुजी : समाचार-पत्रों में आनेवाले किसी एक वाक्य का अर्थबोध नहीं होता। इस कारण आपके मन में इस प्रकार का विचार आया है। कल्पना कीजिए कि आपके सामने दो तरुण खड़े हैं, जिनमें से एक ने शर्ट-पैंट पहना है और वह स्नातक है एवं दूसरा धोती-कुर्ते में है तथा अशिक्षित प्रतीत होता है। इन्हें देखकर आपके मन में अंतर आता है या नहीं?

शर्ट-पैंट पहना व्यक्ति सुशिक्षित है, वह कोई बात शीघ्र समझेगा तथा दूसरा अशिक्षित है, उसे समझने में विलंब लगेगा। दोनों की ग्रहण-क्षमता एवं अभिव्यक्ति में अंतर आ सकता है। उनकी अलग मर्यादाएँ होंगी। यह तो आप अनुभव करते होंगे?

मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह अंतर ईश्वरनिर्मित है अन्यथा एक शिक्षक ४० विद्यार्थियों को पढ़ाता है, किंतु उनमें से ४-५ प्रथम श्रेणी में एवं शेष तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं, ऐसा क्यों? अर्थात यह आकलन शक्ति के कारण होता है। यह अंतर भी ईश्वरनिर्मित है। इसी प्रकार १२-१५ वर्ष का कोई बालक बाल्यावस्था से ही दुर्बल तथा उसका समवयस्क हृष्टपुष्ट होता है। किसी को कम सुनाई देता है, किंतु दृष्टि तेज होती है। इस अंतर के कारण जो विषमता निर्माण होती है, इस विषमता को कम करने का मार्ग इस वर्ण-व्यवस्था में खोजना चाहिए।

वर्ण-व्यवस्था हमारे पूर्वजों ने पिछड़े एवं दलित बंधुओं को पृथक रखने के लिए निर्माण की, यह आपकी धारणा हो सकती है, पर मेरी नहीं। किसी एक व्यवस्था के आधार पर अपने ही बांधवों को शूद्र या दोयम समझते होंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता।

साप्ताहिक 'पांचजन्य' के संपादक श्री देवेंद्र

(६ अप्रैल १९७०, दिल्ली)

श्री देवेंद्रः संभवतः कुछ समय पूर्व आपने लखनऊ में कहा था कि पहले इन राजनीतिज्ञों का भारतीयकरण आवश्यक है?

श्री गुरुजी : हाँ। मैंने कहा था। जिन राजनीतिज्ञों को अपने राष्ट्र के 'स्व' का तनिक ज्ञान नहीं, जो अपने देश की प्रत्येक वस्तु को त्याज्य और विदेश की प्रत्येक वस्तु को शिरोधार्य मानते हैं; जो अर्थ, शिक्षा, संविधान, समाज-रचना, विदेशी-नीति आदि राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशों का अंधानुकरण करने की ओर प्रवृत हों; जो भारत का एक राष्ट्र के नाते नहीं, तो अपनी-अपनी भाषा, प्रांत, वर्ण, जाति, संप्रदाय आदि के रूप में ही विचार करते हैं और जो तुच्छ क्षणिक राजनीतिक स्वार्थवश भारत में भारतीयकरण जैसी इतिहाससम्मत माँग का भी विरोध कर रहे हैं, क्या उनका भारतीयकरण किया जाना सर्वप्रथम आवश्यकता नहीं है?

श्री देवेंद्रः किंतु, भारतीयकरण के विरोध में उनका मुख्य तर्क यह है कि यह एक सांप्रदायिक माँग है। यह मुसलमानों का धर्म-परिवर्तन कर उन्हें हिंदू बनाने का प्रयत्न है।

श्री गुरुजी : मुसलमानों का धर्म-परिवर्तन करने की बात किसने कही, कब कही? कम से कम मुझे तो उसका पता नहीं। मैंने सदैव कहा है कि विश्व में हिंदू ही एकमेव ऐसा समाज है, जो सब प्रकार की उपासना पद्धतियों का सत्कार करता है और उनका सम्मान करने के लिए प्रस्तुत है। क्योंकि हिंदू की ऐसी मान्यता है और यह उसके संपूर्ण आध्यात्मिक चिंतन का निष्कर्ष है कि भगवान तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। जो मार्ग जिसे जँचता है, वही उसके लिए अनुकूल और श्रेष्ठ भी है। अतः हिंदू-समाज ने अपने भीतर एवं बाहर उपासना करने की मनचाही पूर्ण स्वतंत्रता सदैव दी है, आगे भी देगा। केरल में ईसाई शरणार्थी के रूप में आए, वहाँ के हिंदू राजा ने उन्हें शरण दी। बसने के लिए सब प्रकार की सुविधाएँ दीं, किंतु क्या उनपर धर्म-परिवर्तन की शर्त लगाई। ७वीं-८वीं शती में अपनी मातृभूमि ईरान पर इस्लामी आक्रमण से आक्रांत पारसी बंधु स्वधर्म की रक्षा के लिए स्वदेश को त्यागकर

भारत की शरण में आए, भारत ने हृदय खोलकर उनका स्वागत किया। इस विशाल हिंदू जनसंख्या के बीच एक मुट्ठी भर संख्या में वे लोग आज भी अपने धार्मिक विश्वासों का पूर्ण स्वतंत्रता के साथ पालन करते हुए विद्यमान हैं। उन्हें किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है। क्या यह ज्वलंत उदाहरण ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि धर्म-परिवर्तन को बलात् लादने की बात हिंदू समाज के मन में आ ही नहीं सकती।

जहाँ तक भारतीय मुसलमानों का संबंध है, यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि यहाँ के अधिकांश मुसलमान हिंदुओं के वंशज हैं। बीच के कालखंड में आक्रमणकारियों के आततायी राज्यकाल में अपने प्राण बचाने के लिए अथवा किसी स्वार्थपूर्ति के लिए या किसी धोखे में आकर वे अपना हिंदुत्व छोड़कर मुस्लिम बन गए, लेकिन उनमें रक्त तो हिंदुओं का ही है। उन्होंने केवल धर्म बदला था। पूर्वज तो नहीं बदले थे। अब यदि अपने इन रक्त-संबंधियों को हम कहें कि अपनी पूर्वपरंपरा का स्मरण करो, आततायी लोगों का कालखंड दूर हो गया है, अतः पृथकता का भाव त्यागो। यदि भगवान की उपासना का इस्लामी ढंग ही तुम्हें भाता है, तो खुशी से करो, किंतु जैसे वैष्णव हैं, शैव हैं, शाक्त हैं, उसी प्रकार तुम भी इस्लामी उपासना पद्धति के अनुयायी होते हुए भी इस मातृभूमि और उसकी परंपरा के प्रति अनन्य अव्यभिचारी श्रद्धा को लेकर चलो। क्या यह आवश्यक नहीं? मेरी दृष्टि में भारतीयकरण या राष्ट्रीयकरण का यही वास्तविक अभिप्राय है।

क्या यह विचित्र बात नहीं कि भारतीय मुसलमान अरबी इतिहास के नामों को अपनाएँ। ईरान के ऐतिहासिक पुरुष रुस्तम और सोहराब को अपनाने में संकोच न करें। तुर्किस्तान के महापुरुषों के नाम पर अपने नाम रखें, किंतु अपने भारतीय पूर्वजों, जैसे– राम, कृष्ण, चंद्रगुप्त और विक्रमादित्य के नामों के प्रति घृणा रखें। आखिर इंडोनेशिया भी तो एक बड़ा मुस्लिम देश है। किंतु वहाँ के मुसलमानों ने अपनी ऐतिहासिक परंपरा, संस्कृ ति व भाषा से संबंध विच्छेद नहीं किया। वहाँ मुस्लिम होते हुए भी 'सुवर्ण' और 'रत्नादेवी' जैसे नाम हो सकते है। वहाँ की विमान सेवा का नाम भगवान विष्णु का वाहन 'गरुड़' हो सकता है, तो

क्या इससे वे मुसलमान नहीं रहे?

मैं तो यहाँ तक सोचता हूँ कि यदि भारतीय मुसलमान हजरत मुहम्मद के उपदेशों को ही उनके ऐतिहासिक सन्दर्भों में गहराई से समझने का यत्न करें, तो न वे केवल उनके अच्छे अनुयायी बन सकेंगे, अपितु स्वयं को 'अच्छे राष्ट्रीय एवं श्रेष्ठ भारतीय' भी बना सकेंगे।

कोई पैगंबर अपने से पहले के पैगंबरों को अस्वीकार नहीं करता। कोई नहीं कहता कि वही ईश्वर का प्रथम और अंतिम संदेशवाहक है। ईसा ने स्वयं कहा– 'मैं पूर्ति के लिए आया हूँ, क्षति के लिए नहीं।' हजरत मुहम्मद ने भी अपने से पहले पैगंबरों को मान्यता दी। केवल इतना कहा कि तुम अरबों को, तुम्हारी भाषा में अपना संदेश सुनाने के लिए ईश्वर ने मुझे भेजा है।

श्री देवेंद्र: किंतु भारतीयकरण के विरोधियों का कहना है कि इस सबकी जरूरत ही क्या है, क्योंकि मुसलमानों में भी तो देशभक्त पैदा होते हैं?

श्री गुरुजी: होते हैं। मैं कब कहता हूँ कि नहीं होते। पर कितने? मुहम्मद करीम छागला हैं, पर छागला जैसे कितने हैं? अशफाक उल्लाह और अब्दुल हमीद ने देश के स्वातंत्र्य के लिए प्राण दिए, पर ऐसे नामों की सूची कितनी बड़ी है। एकाध इधर-उधर के अपवाद बताने मात्र से संपूर्ण समाज मातृभूमि का पुजारी बना है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्या यह सत्य नहीं है कि भारत की वर्तमान सीमाओं के भीतर ही उत्तरप्रदेश एवं अन्य क्षेत्रों के रहनेवाले मुसलमानों ने ही मातृभूमि का विभाजन कर पाकिस्तान का निर्माण कराया था। क्या रातों-रात उनका हृदय-परिवर्तन हो गया।

श्री देवेंद्र: अभी पिछले दिनों बंगलौर में रोमन कैथलिकों ने अपनी पूजा-पद्धति का भारतीयकरण करने की योजना बनाई है। उसके बारे में आपका क्या मत है?

श्री गुरुजी: पूजा-पद्धति के भारतीयकरण से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है संपूर्ण चर्च का और ईसाई धर्म-प्रचारकों का भारतीयकरण। पूजा-पद्धति का भारतीयकरण तो धर्म-परिवर्तन की गति को तीव्र करने के लिए रणनीति भी हो सकती है। पहले भी ऐसा हो चुका है। १६वीं शती में रॉबर्ट-डी-नोबिली नामक एक यूरोपीय धर्मप्रचारक आया था।

उसने ब्राह्मणों का वेश धारण कर लिया था। वह यज्ञोपवीत भी पहनता था। स्वयं को ईसाई-ब्राह्मण कहता था। 'क्रिस्त वेद' का प्रचार भी करता था। यह सब उसने किया भोले-भाले धर्मनिष्ठ हिंदुओं को धर्म परिवर्तन के जाल में फँसाने के लिए। हो सकता है इस नए प्रयास के पीछे भी वही चाल हो। आवश्यकता तो यह है कि वे विदेशी धर्म प्रचारकों को आमंत्रित करना बंद करें। विदेशों से आर्थिक सहायता न लें और विदेशी सभ्यता व संस्कृति के प्रति अपनी भक्ति समाप्त करें। आखिर भारत में जहाँ-जहाँ ईसाई धर्म प्रचार सफल हुआ है, वहाँ-वहाँ पृथकतावादी आंदोलन क्यों खड़े होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर अपने मन में खोजना होगा।

श्री देवेंद्र : लोग पूछते हैं कि क्या हिंदुओं में देशद्रोही पैदा नहीं होते? क्या हिंदू-समाज में कोई खराबी नहीं? क्या हिंदू-समाज के भारतीयकरण की आवश्यकता नहीं?

श्री गुरुजी : इस प्रकार भारतीयकरण की बात चलने पर कुछ लोग कहते हैं कि क्या हिंदुओं में कोई खराबी नहीं है। हम मानते हैं कि खराबी अवश्य है। अगर कोई खराबी न होती तो हिंदू लोगों पर १२०० वर्षों से विदेशियों ने जो राज्य चलाया, वह कैसे चला पाते? इसलिए खराबी अवश्य है। किंतु हिंदुओं का भारतीयकरण अथवा राष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहिए- ऐसा किसने कहा है? हम लोग तो बिलकुल उल्टी बात कहते हैं कि अपने राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के मन में राष्ट्र के प्रति निष्ठा, राष्ट्र के स्थायी स्वरूप का स्पष्ट साक्षात्कार, राष्ट्र-कार्य करते समय लेन-देन या विशेषाधिकार का कोई भी विचार मन में उत्पन्न न होने देते हुए, निःस्वार्थ भाव से सर्वस्व समर्पण की भावना का जागरण होना ही चाहिए। यह तो हमारा सिद्धांत ही है। यह प्रबल सिद्धांत न रहा होता तो हमारे कार्य की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इसलिए राष्ट्रभाव से युक्त व्यक्ति-व्यक्ति को संस्कारित करने का लक्ष्य लेकर चलनेवाले हम लोगों को यदि कोई हिंदू-समाज की खराबी बताए, तो कोई नई बात हमें नहीं कही गई। यह तो इतना साफ है कि हिंदू-समाज में खराबी न होती तो इस संगठन-कार्य को खड़ा करने की आवश्यकता ही नहीं होती। हमारा कहना है कि सबका राष्ट्रीयकरण करना चाहिए।

डा. सैफुद्दीन जिलानी

(मूलतः ईरानी, परंतु वर्षों से भारत के निवासी व पत्रकार डा. जिलानी से ३० जनवरी १९७१ को कोलकाता में हुआ वार्तालाप)

डा. जिलानी : देश के समक्ष आज जो संकट मुँह बाए खड़े हैं, उन्हें देखते हुए हिंदू-मुस्लिम समस्या का कोई निश्चित हल ढूँढना, क्या आपको आवश्यक प्रतीत नहीं होता?

श्री गुरुजी : देश का विचार करते समय मैं हिंदू और मुसलमान– इस रूप में विचार नहीं करता, परंतु इस प्रश्न की ओर लोग इस दृष्टि से देखते हैं। आजकल सभी लोग राजनीतिक दृष्टिकोण से ही विचार करते दिखाई देते हैं। हर कोई राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर व्यक्तिगत अथवा जातिगत स्वार्थ सिद्ध करने में लिप्त है। इस परिस्थिति पर मात करने का केवल एक ही उपाय है और वह है राजनीति की ओर देशहित और केवल देशहित की ही दृष्टि से देखना। उस स्थिति में वर्तमान सभी समस्याएँ देखते ही देखते हल हो जाएँगी।

हाल ही में मैं दिल्ली गया था। उस समय अनेक लोग मुझसे मिलने आए थे। उनमें भारतीय क्रांति दल, संगठन कांग्रेस आदि दलों के लोग भी थे। संघ को हमने प्रत्यक्ष राजनीति से अलग रखा है, परंतु मेरे कुछ पुराने मित्र जनसंघ में होने के कारण कुछ मामलों में मैं मध्यस्थता करूँ इस हेतु से वे मुझे मिलने आए थे। उनसे मैंने एक सामान्य-सा प्रश्न पूछा– 'आप लोग हमेशा अपने दल का और आपके दल के हाथ में सत्ता किस तरह आए, इसी का विचार किया करते हैं। परंतु दलीय निष्ठा व दलीय हितों का विचार करते समय क्या आप संपूर्ण देश के हितों का कभी विचार करते हैं?' इस सामान्य से प्रश्न का 'हाँ' में उत्तर देने कोई सामने नहीं आया। समग्र देश के हितों का विचार सचमुच उनके सामने होता, तो वे वैसा साफ-साफ कह सकते थे, किंतु उन्होंने नहीं कहा। इसका अर्थ स्पष्ट है कि कोई भी दल समग्र देश का विचार नहीं करता। मैं समग्र देश का विचार करता हूँ। इसलिए मैं हिंदुओं के लिए कार्य करता हूँ, परंतु कल यदि हिंदू भी देश के हितों के विरुद्ध जाने लगें, तब उनमें मेरी कौन-सी रुचि रह जाएगी?

रही मुसलमानों की बात। मैं यह समझ सकता हूँ कि अन्य लोगों की तरह उनकी भी न्यायोचित माँगें पूरी की जानी चाहिए, परंतु जब चाहे, तब विभिन्न सहूलियतों और विशेषाधिकारों की माँगें करते रहना कतई न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। मैंने सुना है कि प्रत्येक प्रदेश में एक छोटे पाकिस्तान की माँग उठाई गई है। जैसा कि प्रकाशित हुआ है, एक मुस्लिम संगठन के अध्यक्ष ने तो लाल किले पर अपना झंडा फहराने की योजना की बात कही है। उन महाशय ने अब तक इसका खंडन भी नहीं किया है। ऐसी बातों से समग्र देश का विचार करनेवालों का संतप्त होना स्वाभाविक है।

उर्दू के आग्रह का विचार करें। पचास वर्षों के पूर्व तक विभिन्न प्रांतों के मुसलमान अपने-अपने प्रांतों की भाषाएँ बोला करते थे तथा उन्हीं भाषाओं में शिक्षा-ग्रहण किया करते थे। उन्हें कभी ऐसा नहीं लगा कि उनके धर्म की कोई अलग भाषा है।

उर्दू मुसलमानों की धर्म-भाषा नहीं है। मुगलों के समय में एक संकर भाषा के रूप में वह उत्पन्न हुई। इस्लाम के साथ उसका रत्ती-भर संबंध नहीं है। पवित्र कुरान अरबी में लिखा है। अतः मुसलमानों की अगर कोई धर्म-भाषा हो, तो वह अरबी ही होगी। ऐसा होते हुए भी आज उर्दू का इतना आग्रह क्यों? इसका कारण यह है कि इस भाषा के सहारे वे मुसलमानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करना चाहते हैं। यह संभावना ही नहीं तो एक निश्चित तथ्य है कि इस तरह की राजनीतिक शक्ति देशहित के विरुद्ध ही जाएगी।

कुछ मुसलमान कहते हैं कि उनका राष्ट्र-पुरुष रुस्तम है। सच पूछा जाए, तो मुसलमानों का रुस्तम से क्या संबंध? रुस्तम तो इस्लाम के उदय के पूर्व ही हुआ था। वह कैसे उनका राष्ट्रपुरुष हो सकता है? और फिर, प्रभु रामचंद्र जी क्यों नहीं हो सकते? मैं पूछता हूँ कि आप यह इतिहास स्वीकार क्यों नहीं करते?

पाकिस्तान ने पाणिनि की ५हजारवीं जयंती मनाई। इसका कारण यह है कि जो हिस्सा पाकिस्तान के नाम से पहचाना जाता है, वहीं पाणिनि का जन्म हुआ था। यदि पाकिस्तान के लोग गर्व

के साथ यह कह सकते हैं कि पाणिनि उनके पूर्वजों में से एक हैं, तो फिर भारत के मुसलमान (मैं उन्हें हिंदू मुसलमान कहता हूँ) पाणिनि, व्यास, वाल्मीकि, राम, कृष्ण आदि को अभिमानपूर्वक अपने महान पूर्वज क्यों नहीं मानते?

हिंदुओं में ऐसे अनेक लोग हैं, जो राम, कृष्ण आदि को ईश्वर के अवतार नहीं मानते। फिर भी वे उन्हें महापुरुष मानते हैं, अनुकरणीय मानते हैं। इसलिए मुसलमान भी यदि उन्हें अवतारी पुरुष न मानें, तो कुछ नहीं बिगड़नेवाला, परंतु क्या उन्हें राष्ट्रपुरुष नहीं माना जाना चाहिए?

हमारे धर्म और तत्त्वज्ञान की शिक्षा के अनुसार हिंदू और मुसलमान समान ही हैं। ऐसी बात नहीं कि ईश्वरी सत्य का साक्षात्कार केवल हिंदू ही कर सकता है। अपने-अपने धर्म-मत के अनुसार कोई भी साक्षात्कार कर सकता है।

श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य का ही उदाहरण लें। यह उदाहरण, वर्तमान शंकराचार्य के गुरु का है। एक अमरीकी व्यक्ति उनके पास आया और उसने प्रार्थना की कि उसे हिंदू बना लिया जाए। इस पर शंकराचार्य जी ने उससे पूछा– 'वह हिंदू क्यों बनना चाहता है' उसने उत्तर दिया कि ईसाई धर्म से उसे शांति प्राप्त नहीं हुई है। आध्यात्मिक तृष्णा भी अतृप्त ही है।

इस पर शंकराचार्य जी ने उससे कहा– 'क्या तुमने सचमुच पहले ईसाई धर्म का प्रामाणिकतापूर्वक पालन किया है? तुम यदि इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके होगे कि ईसाई धर्म का पालन करने के बाद भी तुम्हें शांति नहीं मिली, तो मेरे पास अवश्य आओ।'

हमारा दृष्टिकोण इस तरह का है। हमारा धर्म, धर्म-परिवर्तन न करानेवाला धर्म है। धर्मांतरण तो प्रायः राजनीतिक अथवा अन्य हेतु से कराए जाते हैं। इस तरह का धर्म-परिवर्तन हमें स्वीकार नहीं है। हम कहते हैं– 'यह सत्य है। तुम्हें जँचता हो तो स्वीकारो, अन्यथा छोड़ दो।'

दक्षिण की यात्रा के दौरान मदुरै में कुछ लोग मुझे मिलने के लिए आए। मुस्लिम-समस्या पर वे मुझसे चर्चा कर मुसलमानों के विषय में मेरा दृष्टिकोण चाहते थे। मैंने उनसे कहा– 'आप

लोग मुझसे मिलने आए, मुझे बड़ा आनंद हुआ। हमें यह बात हमेशा ध्यान में रखनी होगी कि हम सबके पूर्वज एक ही हैं। हम सब उनके वंशज हैं। आप अपने-अपने धर्मों का प्रामाणिकता से पालन करें, परंतु राष्ट्र के मामले में हम सबको एक रहना चाहिए। राष्ट्रहित के लिए बाधक सिद्ध होनेवाले अधिकारों और सहूलियतों की माँग बंद होनी चाहिए। हम हिंदू हैं, इसलिए हम विशेष सहूलियतों या अधिकारों की कभी बात नहीं करते। ऐसी स्थिति में कुछ लोग यदि कहने लगें कि 'हमें अलग होना है', 'हमें अलग प्रदेश चाहिए' तो यह कतई सहन नहीं होगा।'

ऐसी बात नहीं कि यह प्रश्न केवल हिंदू और मुसलमानों के बीच ही हो। यह समस्या तो हिंदुओं के बीच भी है। जैसे हिंदू-समाज में जैन लोग हैं, तथाकथित अनुसूचित जातियाँ हैं। अनुसूचित जातियों में कुछ लोगों ने डा. अम्बेडकर के अनुयायी बनकर बौद्धधर्म ग्रहण किया। अब वे कहते हैं– 'हम अलग हैं।' अपने देश में अल्पसंख्यकों को कुछ विशेष राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। इसलिए प्रत्येक गुट स्वयं को अल्पसंख्यक बताने का प्रयास कर रहा है तथा उसके आधार पर कुछ विशेष अधिकार और सहूलियते माँग रहा है। इससे अपने देश के अनेक टुकड़े हो जाएँगे और सर्वनाश होगा। हम उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। कुछ जैन-मुनि मुझे मिले। उन्होंने कहा 'हम हिंदू नहीं हैं। अगली जनगणना में हम स्वयं को जैन के नाम से दर्ज कराएँगे।' मैंने कहा– 'आप आत्मघाती सपने देख रहे हो।' अलगाव का अर्थ है देश का विभाजन और विभाजन का परिणाम होगा आत्मघात।

जब लोग प्रत्येक बात का विचार राजनीतिक स्वार्थ की दृष्टि से करने लगते हैं, तब अनेक भीषण समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, किंतु इस स्वार्थ को अलग रखते ही अपना देश एकसंघ बन सकता है। फिर हम संपूर्ण विश्व की चुनौती का सामना कर सकते हैं।

डा. जिलानी : भौतिकवाद और विशेषतः साम्यवाद से अपने देश के लिए खतरा पैदा हो गया है। हिंदू और मुसलमान दोनों ही ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखते हैं। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि दोनों मिलकर इस संकट का मुकाबला कर सकते हैं?

श्री गुरुजी : यही प्रश्न कश्मीर के एक सज्जन ने मुझसे किया था। उनका

नाम संभवतः नाजिर अली है। अलीगढ़ में मेरे एक मित्र अधिवक्ता श्री मिश्रीलाल के निवास-स्थान पर वे मिले थे। उन्होंने कहा– 'नास्तिकता और साम्यवाद हम सभी पर अतिक्रमण हेतु प्रयत्नशील हैं। अतः ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले हम सभी को चाहिए कि हम सामूहिक रूप से इस खतरे का मुकाबला करें।

मैंने कहा, 'मैं आपसे सहमत हूँ', परंतु कठिनाई यह है कि हम सबने मानो ईश्वर की प्रतिमा के टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं और हरेक ने एक-एक टुकड़ा उठा लिया है। आप ईश्वर की ओर अलग दृष्टि से देखते हैं, ईसाई अलग दृष्टि से देखते हैं। बौद्ध लोग तो कहते हैं कि ईश्वर तो है ही नहीं; जो कुछ है, वह निर्वाण ही है। जैन लोग कहते हैं कि सब कुछ शून्याकार ही है। हममें से अनेक लोग राम, कृष्ण, शिव आदि के रूप में ईश्वर की उपासना करते हैं। इन सबको आप यह किस तरह कह सकेंगे कि एक ही सर्वमान्य ईश्वर को माना जाए। इसके लिए आपके पास क्या कोई उपाय है?' मेरी यह धारणा थी कि सूफी ईश्वरवादी और विचारशील हुआ करते हैं, परंतु उस सूफी सज्जन ने जो उत्तर दिया, उसे सुनकर आप आश्चर्यचकित हो जाएँगे। उन्होंने कहा– 'तो फिर आप सब लोग इस्लाम ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते?'

मैंने कहा– 'फिर तो कुछ लोग कहेंगे कि ईसाई क्यों नहीं बन जाते? मेरे धर्म के प्रति मुझे निष्ठा है, इसलिए मैं यदि आपसे कहूँ कि आप हिंदू क्यों नहीं बन जाते, तब? याने समस्या जैसी की वैसी रह गई। वह कभी हल नहीं होगी।

इस पर उन्होंने मुझसे पूछा कि आपकी क्या राय है? मैंने बताया कि सभी अपने-अपने धर्म का पालन करें। एक ऐसा सर्वसारभूत तत्त्वज्ञान है, जो केवल हिंदुओं का या केवल मुसलमानों का ही हो, ऐसी बात नहीं है। इस तत्त्वज्ञान को आप अद्वैत कहें या और कुछ। यह तत्त्वज्ञान कहता है कि एक एकमेवाद्वितीय शक्ति है, वही सत्य है, वही आनंद है, वही सृजन, रक्षण और संहार करती है। अपनी ईश्वर की कल्पना उसी सत्य का सीमित अंश है। अंतिम सत्य का यह मूलभूत रूप किसी धर्म-विशेष का नहीं, अपितु सर्वमान्य है। यही रूप हम सबको एकत्रित कर सकता है। सभी धर्म वस्तुतः ईश्वर की ओर ही उन्मुख करते हैं।

अतः यह सत्य आप क्यों स्वीकार नहीं करते कि मुसलमानों, ईसाईयों और हिंदुओं का परमात्मा एक ही है और हम सब उसके भक्त हैं। एक सूफी के रूप में तो आपको इसे स्वीकार करना चाहिए।

इसपर उनके पास कोई उत्तर नहीं था। दुर्भाग्य से हमारी बातचीत यहीं समाप्त हो गई।

डा. जिलानीः हिंदू और मुसलमानों के बीच आपसी सद्भावना बहुत है, फिर भी समय-समय पर छोटे-बड़े झगड़े होते ही रहते हैं। इन झगड़ों को मिटाने के लिए आपकी राय में क्या किया जाना चाहिए?

श्री गुरुजी : आप अपने लेखों में इन झगड़ों का एक कारण हमेशा बताते हैं। वह कारण है गाय। दुर्भाग्य से अपने लोग और राजनीतिक नेता भी इस कारण का विचार नहीं करते। परिणामतः देश के बहुसंख्यकों में कटुता की भावना उत्पन्न होती है। मेरी समझ में नहीं आता कि गोहत्या के विषय में इतना आग्रह क्यों है? इसके लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता। इस्लाम-धर्म गोहत्या का आदेश नहीं देता। पुराने जमाने में हिंदुओं को अपमानित करने का वह एक तरीका रहा होगा। अब वह क्यों चलना चाहिए?

इसी प्रकार की अनेक छोटी-बड़ी बातें हैं। आपस के पर्वो-त्यौहारों में हम क्यों सम्मिलित न हों? होलिकोत्सव समाज के सभी स्तरों के लोगों को अत्यंत उल्लासयुक्त वातावरण में एकत्रित करनेवाला त्यौहार है। मान लीजिये कि इस त्यौहार के समय किसी मुस्लिम बंधु पर कोई रंग उड़ा देता है, तो इतने मात्र से क्या कुरान की आज्ञाओं का उल्लंघन हो जाता है? इन बातों की ओर एक सामाजिक व्यवहार के रूप में देखा जाना चाहिए। मै आप पर रंग छिडकूँ, आप मुझपर छिड़कें। हमारे लोग तो कितने ही वर्षों से मोहर्रम के सभी कार्यक्रमों में सम्मिलित होते आ रहे हैं। इतना ही नहीं तो अजमेर के उर्स जैसे कितने ही उत्सवों-त्यौहारों में मुसलमानों के साथ हमारे लोग भी उत्साहपूर्वक सम्मिलित होते हैं। किंतु हमारी सत्यनारायण की पूजा में यदि कुछ मुसलमान बंधुओं को हम आमंत्रित करें तो क्या होगा? आपको विदित होगा कि द्रमुक के लोग अपने मंत्रिमंडल के एक मुस्लिम मंत्री को रामेश्वर के मंदिर में ले गए। मंदिर के अधिकारियों, पुजारियों और अन्य लोगों ने उक्त मंत्री का यथोचित मान-सम्मान किया, किंतु उसे

जब मंदिर का प्रसाद दिया गया, तो उसने उसे फेंक दिया। प्रसाद ग्रहण करने मात्र से तो वह धर्मभ्रष्ट होनेवाला नहीं था। इसी तरह की छोटी-छोटी बातें हैं। अतः पारस्परिक आदर की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए।

हमें जो वृत्ति अभिप्रेत है, वह सहिष्णुता मात्र नहीं है। अन्य लोग जो कुछ करते हैं, उसे सहन करना सहिष्णुता है। परंतु अन्य लोग जो कुछ करते हों, उसके प्रति आदर-भाव रखना सहिष्णुता से ऊँची बात है। इसी वृत्ति, इसी भावना को प्राधान्य दिया जाना चाहिए। हमें सबके विषय में आदर है। यही मार्ग मानवता के लिए हितकारक है। हमारा वाद सहिष्णुतावाद नहीं, अपितु सम्मानवाद है। दूसरों के मत का आदर करना हम सीखें तो सहिष्णुता स्वयमेव चली आएगी।

डा. जिलानी : हिंदू और मुसलमानों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के कार्य के लिए आगे आने की योग्यता किसमें है— राजनीतिक नेता में, शिक्षाशास्त्री में या धार्मिक नेता में?

श्री गुरुजी : इस मामले में राजनीतिज्ञ का क्रम तो सबसे अंत में लगता है। धार्मिक नेताओं के विषय में भी यही कहना होगा। आज अपने देश में दोनों ही जातियों के धार्मिक नेता अत्यंत संकुचित मनोवृत्ति के हैं। इस काम के लिए नितांत अलग प्रकार के लोगों की आवश्यकता है। जो लोग धार्मिक तो हों, किंतु राजनीतिक नेतागिरी न करते हों और जिनके मन में समग्र राष्ट्र का विचार सदैव जागृत रहता हो। धर्म के अधिष्ठान के बिना कुछ भी हासिल नहीं होगा। धार्मिकता होनी ही चाहिए। रामकृष्ण मिशन को ही लें। यह आश्रम व्यापक और सर्वसमावेशक धर्म-प्रचार का कार्य कर रहा है। अतः आज तो इसी दृष्टिकोण और वृत्ति की आवश्यकता है कि ईश्वरोपासनाविषयक विभिन्न श्रद्धाओं को नष्ट न कर हम उनका आदर करें, उन्हें टिकाए रखें और उन्हें वृद्धिंगत होने दें।

राजनीतिक नेताओं के जो खेल चलते हैं, उन्हीं से भेदभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। जातियों, पंथों पर तो वे जोर देते हैं, साथ ही भाषा, हिंदू-मुस्लिम आदि भेद भी वे पैदा करते हैं। परिणामतः अपनी समस्याएँ अधिकाधिक जटिल होती जा रही हैं। जाति-संबंधी समस्या के मामले में तो राजनीतिक नेता ही

वास्तविक खलनायक हैं। दुर्भाग्य से राजनीतिक नेता ही आज जनता का नेता बन बैठा है, जबकि चाहिए तो यह था कि सच्चे विद्वान, सुशील और ईश्वर के परमभक्त महापुरुष जनता के नेता बनते। परंतु इस दृष्टि से आज उनका कोई स्थान ही नहीं है। इसके विपरीत नेतृत्व आज राजनीतिक नेताओं के हाथों में है। जिनके हाथों में नेतृत्व है, वे राजनीतिक पशु बन गए है। अतः हमें लोगों को जागृत करना चाहिए।

दो दिन पूर्व ही मैंने प्रयाग में कहा है कि लोगों को राजनीतिक नेताओं के पीछे नहीं जाना चाहिए, अपितु ऐसे सत्पुरुषों का अनुकरण करें, जो परमात्मा के चरणों में लीन हैं, जिनमें चारित्र्य है और जिनकी दृष्टि विशाल है।

डा. जिलानी : क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जातीय सामंजस्य-निर्माण का उत्तरदायित्व बहुसंख्यक समाज के रूप में हिंदुओं पर है?

श्री गुरुजी : हाँ। मुझे यही लगता है, परंतु कुछ कठिनाइयों का विचार किया जाना चाहिए। अपने नेतागण संपूर्ण दोष हिंदुओं पर लादकर मुसलमानों को दोषमुक्त कर देते हैं। इसके कारण जातीय उपद्रव करने के लिए अल्पसंख्यक समाज, याने मुस्लिमों को सब प्रकार का प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए हमारा कहना है कि इस मामले में दोनों को अपनी जिम्मेदारियों का पालन करना चाहिए।

डा. जिलानी : आपकी राय में आपसी सामंजस्य की दिशा में तत्काल कौन से कदम उठाए जाने चाहिए?

श्री गुरुजी : इस तरह से एकदम कुछ कहना बहुत ही कठिन है, फिर भी सोचा जा सकता है। व्यापक पैमाने पर धर्म की यथार्थ शिक्षा देना एक उपाय हो सकता है। राजनीतिक नेताओं द्वारा समर्थित आज जैसी धर्महीन शिक्षा नहीं, अपितु सच्चे अर्थों में धर्म-शिक्षा लोगों को इस्लाम व हिंदू धर्म का ज्ञान कराए। सभी धर्म मनुष्य को महान, पवित्र और मंगलमय बनने की शिक्षा देते हैं। यह लोगों को सिखाया जाए।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि जैसा हमारा इतिहास है, वैसा ही हम पढ़ाएँ। आज जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह विकृत रूप में पढ़ाया जाता है। मुस्लिमों ने इस देश पर आक्रमण

किया हो तो वह हम स्पष्ट रूप से बताएँ, परंतु साथ ही यह भी बताएँ कि वह आक्रमण भूतकालीन है और विदेशियों ने किया है। मुसलमान यह कहें कि वे इस देश के मुसलमान हैं और ये आक्रमण उनकी विरासत नहीं हैं। परंतु जो सही है, उसे पढ़ाने के स्थान पर जो असत्य है, विकृत है, वही आज पढ़ाया जाता है। सत्य बहुत दिनों तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। अंततः वह सामने आता है और तब उससे लोगों में दुर्भावना निर्माण होती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि इतिहास जैसा है, वैसा ही पढ़ाया जाए। अफजलखाँ को शिवाजी ने मारा है, तो वैसा ही बताओ। कहो कि एक विदेशी आक्रामक और एक राष्ट्रीय नेता के तनावपूर्ण संबंधों के कारण यह घटना हुई। यह भी बताएँ कि हम सब एक ही राष्ट्र हैं, इसलिए हमारी परंपरा अफजलखाँ की नहीं है। परंतु यह कहने की हिम्मत कोई नहीं करता। इतिहास के विकृतिकरण को मैं अनेक बार धिक्कार चुका हूँ और आज भी उसे धिक्कारता हूँ।

डा. जिलानी : भारतीयकरण पर बहुत चर्चा हुई, भ्रम भी बहुत निर्माण हुए। क्या आप बता सकेंगे कि ये भ्रम कैसे दूर किए जा सकेंगे?

श्री गुरुजी : भारतीयकरण की घोषणा जनसंघ द्वारा की गई है, किंतु इस मामले में संभ्रम क्यों होना चाहिए? भारतीयकरण का अर्थ सबको हिंदू बनाना तो है नहीं।

हम सभी को यह सत्य समझ लेना चाहिए कि हम इसी भूमि के पुत्र हैं। अतः इस विषय में अपनी निष्ठा अविचल रहना अनिवार्य है। हम सब एक ही मानवसमूह के अंग हैं, हम सबके पूर्वज एक ही हैं, इसलिए हम सबकी आकांक्षाएँ भी एक समान हैं– इसे समझना ही सही अर्थों में भारतीयकरण है।

भारतीयकरण का यह अर्थ नहीं कि कोई अपनी पूजा-पद्धति त्याग दे। यह बात हमने कभी नहीं कही और कभी कहेंगे भी नहीं। हमारी तो यह मान्यता है कि उपासना की एक ही पद्धति संपूर्ण मानव जाति के लिए सुविधाजनक नहीं।

डा. जिलानी : आपकी बात सही है। बिलकुल सौ फीसदी सही है। अतः इस स्पष्टीकरण के लिए मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

श्री गुरुजी : फिर भी मुझे संदेह है कि सब बातें मैं स्पष्ट कर सका हूँ या नहीं।

डा. जिलानी : कोई बात नहीं। आपने अपनी ओर से बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया है। कोई भी विचारशील और भला आदमी आपसे असहमत नहीं होगा। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि अपने देश का जातीय बेसुरापन समाप्त करने का उपाय ढूँढने में आपको सहयोग दे सकें, ऐसे मुस्लिम नेताओं की और आपकी बैठक आयोजित करने का अब समय आ गया है? ऐसे नेताओं से भेंट करना क्या आप पसंद करेंगे?

श्री गुरुजी : केवल पसंद ही नहीं करूँगा, ऐसी भेंट का मैं स्वागत करूँगा।

श्री. के. आर. मलकानी, संपादक

(अंग्रेजी समाचार-पत्र 'मदरलैंड' के संपादक श्री मलकानी से २३ अगस्त १९७२ को दिल्ली में हुआ वार्तालाप)

श्री मलकानी : राष्ट्रीयता की भावना के पोषण के लिए क्या आप समान नागरिक संहिता को आवश्यक नहीं मानते?

श्री गुरुजी : मैं नहीं मानता। इससे आपको या अन्य बहुतों को आश्चर्य हो सकता है, परंतु यह मेरा मत है और जो सत्य मुझे दिखाई देता है, वह मुझे कहना ही चाहिए।

श्री मलकानी : क्या आप यह नहीं मानते कि राष्ट्रीय एकता की वृद्धि के लिए देश में एकरूपता आवश्यक है?

श्री गुरुजी : समरसता और एकरूपता दो अलग-अलग बातें हैं। एकरूपता जरूरी नहीं है। भारत में सदा अपरिमित विविधताएँ रही हैं। फिर भी अपना राष्ट्र दीर्घकाल तक अत्यंत शक्तिशाली और संगठित रहा है। एकता के लिए एकरूपता नहीं, अपितु समरसता आवश्यक है।

श्री मलकानी : पश्चिम में राष्ट्रीयता का उदय, कानूनों की संहिताबद्धता, अन्य एकरूपता स्थापित करने का काम साथ ही साथ हुआ है?

श्री गुरुजी : यह नहीं भूलना चाहिए कि विश्व-पटल पर यूरोप का आगमन अभी हाल की घटना है और वहाँ की सभ्यता भी अभी नई ही

है। पहले उसका कोई अस्तित्व नहीं था और हो सकता है कि भविष्य में उसका अस्तित्व न भी रहे। मेरे मतानुसार, प्रकृति अत्यधिक एकरूपता नहीं चाहती। अतः भविष्य में ऐसी एकविधताओं का पश्चिमी सभ्यता पर क्या परिणाम होगा, इस संबंध में अभी से कुछ कहना बड़ी जल्दबाजी होगी। आज और अभी की अपेक्षा हमें बीते हुए सुदूर अतीत में झाँकना चाहिए और सुदूर भविष्य की ओर दृष्टि दौड़ानी चाहिए। अनेक कार्यों के परिणाम सुदीर्घ, विलंबकारी एवं अप्रत्यक्ष होते हैं। इस विषय में सहस्रावधि वर्षों का हमारा अनुभव है। प्रमाणित सिद्ध हुई समाज-जीवन की पद्धति है। इनके आधार पर हम कह सकते हैं कि विविधता और एकता साथ-साथ रह सकती हैं तथा रहती हैं।

श्री मलकानी : अपने संविधान के निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया है कि राज्य समान नागरिक संहिता के लिए प्रयत्न करेगा?

श्री गुरुजी : यह ठीक है। ऐसा नहीं कि समान नागरिक संहिता से मेरा कोई विरोध है, किंतु संविधान में कोई बात होने मात्र से ही वांछनीय नहीं बन जाती। फिर, यह भी तो है कि अपना संविधान कुछ विदेशी संविधानों के जोड़-तोड़ से निर्मित हुआ है। वह न तो भारतीय जीवन दृष्टिकोण से रचा गया है और न उसपर आधारित है।

प्रश्न : क्या आप यह मानते हैं कि समान नागरिक संहिता का विरोध मुसलमान केवल इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि वे अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं?

श्री गुरुजी : किसी वर्ग, जाति अथवा संप्रदाय द्वारा निजी अस्तित्व बनाए रखने से मेरा तब तक कोई झगड़ा नहीं है, जब तक कि इस प्रकार का अस्तित्व राष्ट्रभक्ति की भावना से दूर हटाने का कारण नहीं बनता।

मेरे मत से कुछ लोग समान नागरिक संहिता की आवश्यकता इसलिए महसूस करते हैं कि उनके विचार में मुसलमानों को चार शादियाँ करने का अधिकार होने के कारण उनकी आबादी में असंतुलित वृद्धि हो रही है। मुझे भय है कि समस्या के प्रति सोचने का यह एक निषेधात्मक दृष्टिकोण है।

वास्तविक समस्या तो यह है कि हिंदुओं और मुसलमानों के

बीच भाई-चारा नहीं है। यहाँ तक कि धर्मनिरपेक्ष कहलानेवाले लोग भी मुसलमानों को पृथक जमात मानकर ही विचार करते हैं। निश्चित ही उनके वोट-बैंक के लिए उन्हें खुश करने का तरीका अपनाया है। अन्य लोग भी उन्हें मानते तो अलग ही हैं, किंतु चाहते यह हैं कि उनके पृथक अस्तित्व को समाप्त कर उन्हें एकरूप कर दिया जाए। तुष्टिकरण करनेवालों और एकरूपता लानेवालों में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों ही मुसलमानों को पृथक और बेमेल मानते हैं।

मेरा दृष्टिकोण पूर्णतः भिन्न है। जब तक मुसलमान इस देश और यहाँ की संस्कृति से प्यार करता है, उसका अपनी जीवन-पद्धति के अनुसार चलना स्वागत योग्य है। मेरा निश्चित मत है कि मुसलमानों को राजनीति खेलनेवालों ने खराब किया है। कांग्रेस ही है, जिसने केरल में मुस्लिम लीग को पुनर्जीवित कर देश-भर में मुस्लिम सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया है।

श्री मलकानी : इन्हीं तर्कों के आधार पर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदू-कोड का निर्माण किया जाना भी अनावश्यक और अवांछनीय है?

श्री गुरुजी : मैं निश्चित रूप से मानता हूँ कि हिंदू-कोड राष्ट्रीय एकता और एकसूत्रता की दृष्टि से पूर्णतः अनावश्यक है। युगों से अपने यहाँ असंख्य संहिताएँ रही हैं, किंतु उनके कारण कोई हानि नहीं हुई। अभी-अभी तक केरल में मातृसत्तात्मक पद्धति थी। उसमें कौन सी बुराई थी? प्राचीन और आधुनिक सभी विधि-शास्त्री इस बात पर एकमत हैं कि कानूनों की अपेक्षा रूढ़ियाँ अधिक प्रभावी होती हैं, और यही होना भी चाहिए। 'शास्त्राद् रूढ़िर्बलियसी' शास्त्रों ने कहा है कि रूढ़ियाँ शास्त्रों से अधिक प्रभावी हुआ करती हैं तथा रीतियाँ स्थानीय या समूह की हुआ करती हैं। स्थानीय रीति-रिवाजों या संहिताओं को सभी समाजों द्वारा मान्यता प्रदान की गई है।

श्री मलकानी : यदि समान नागरिक कानून जरूरी नहीं है, तो फिर समान दंड-विधान की भी क्या आवश्यकता है?

श्री गुरुजी : इन दोनों में एक अंतर है। नागरिक संहिता का संबंध व्यक्ति एवं उसके परिवार से हैं। जबकि दंड-विधान का संबंध न्याय, व्यवस्था तथा अन्य असंख्य बातों से है। उसका संबंध न केवल व्यक्ति से है, अपितु बृहद् रूप में वह समाज से भी संबंधित है।

श्री मलकानी : अपनी मुस्लिम बहनों को पर्दे में बनाए रखना और बहुविवाह का शिकार होने देना क्या योग्य है?

श्री गुरुजी : मुस्लिम प्रथाओं के प्रति आपकी आपत्ति यदि मानवीय कल्याण के व्यापक आधार पर हो तब तो, वह उचित है। ऐसे मामलों में सुधारवादी दृष्टिकोण ठीक ही है। परंतु यांत्रिक ढंग से कानून के बाह्य उपचारों द्वारा समानता लाने का दृष्टिकोण रखना ठीक नहीं होगा। मुसलमान स्वयं ही अपने पुराने नियम-कानूनों में सुधार करें। वे यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बहुविवाह-प्रथा उनके लिए अच्छी नहीं है, तो मुझे प्रसन्नता होगी। किंतु अपना मत मैं उनपर लादना नहीं चाहूँगा।

श्री मलकानी : तब तो यह एक गहन दार्शनिक प्रश्न बनता प्रतीत होता है?

श्री गुरुजी : निश्चित ही यह ऐसा है। मेरा मत है कि एकरूपता राष्ट्रों के विनाश की सूचना है। प्रकृति एकरूपता स्वीकार नहीं करती। मैं, विविध जीवन-पद्धतियों के संरक्षण के पक्ष में हूँ। फिर भी ध्यान इस बात का रहना चाहिए कि ये विविधताएँ राष्ट्र की एकता में सहायक हों। वे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में रोड़ा न बनें।

श्री खुशवंतसिंह

('इलस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक श्री खुशवंत सिंह से मुंबई में १७ नवंबर १९७२ को हुई भेंट उन्हीं के शब्दों में)

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनको बिना समझे ही हम घृणा करने लगते हैं। इस प्रकार के लोगों में गुरु गोलवलकर मेरी सूची में सर्वप्रथम थे। सांप्रदायिक दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की करतूतें, महात्मा गाँधी की हत्या, भारत को धर्मनिरपेक्ष से हिंदू-राज्य बनाने के प्रयास आदि अनेक बातें थीं, जो मैंने सुन रखीं थी। फिर भी एक पत्रकार के नाते, उनसे मिलने का मोह मैं टाल नहीं सका।

मेरी कल्पना थी कि उनसे मिलते समय मुझे गणवेषधारी स्वयंसेवकों के घेरे में से गुजरना होगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ। इतना ही नहीं, तो जैसा मैंने समझा था, मेरी कार का नंबर नोट करनेवाला कोई मुफ्ती गुप्तचर भी

वहाँ नहीं था। जहाँ वे रुके थे, वह किसी मध्यम श्रेणी के परिवार का कमरा था। बाहर जूतों-चप्पलों की कतार लगी थी। वातावरण में व्याप्त अगरबत्ती की सुगंध से ऐसा लगता था, मानो कमरे में पूजा हो रही हो। भीतर के कमरों में महिलाओं की हलचलें चल रही थी। बर्तनों और कप-सासरों की आवाज आ रही थी।

मैं कमरे में पहुँचा। महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों की पद्धति के अनुरूप, शुभ्र धवल धोती-कुरते पहने १०-१२ व्यक्ति वहाँ बैठे थे। सब-कुछ एकदम साफ-सुथरा था। वहीं गुरु गोलवलकर भी बैठे थे। ६५ के लगभग आयु, इकहरी देह, कंधों पर झूलती काली-घुंघराली केशराशि, मुखमुद्रा को आवृत करती उनकी मूँछें, विरल भूरी दाढी, कभी लुप्त न होनेवाली मुस्कान, और चश्मे के भीतर से झाँकते उनके काले-चमकीले नेत्र! मुझे लगा कि वे भारतीय होची-मिन्ह ही हों। उनकी छाती के कर्करोग पर अभी-अभी शल्यक्रिया हुई है। फिर भी वे पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्नचित्त दिखाई दे रहे थे।

गुरु होने के कारण, शिष्यवत चरणस्पर्श की वे मुझसे अपेक्षा करते हों- इस मान्यता से, उनके चरण-स्पर्श करने के लिए मैं झुका। किंतु उन्होंने मुझे वैसा करने का अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने मेरे हाथ पकड़े, मुझे खींचकर अपने निकट बिठा लिया, और कहा- 'आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई! बहुत दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी।' उनकी हिंदी बड़ी शुद्ध थी।

"मुझे भी! खासकर, जबसे मैंने आपका 'बंच ऑफ लेटर्स' पढ़ा"- कुछ सकुचाते हुए मैंने कहा।

'बंच ऑफ थॉट्स'- उन्होंने मेरी भूल सुधारी। किंतु उस ग्रंथ पर मेरी राय जानने की उन्होंने कोई इच्छा व्यक्त नहीं की। मेरी एक हथेली को अपने हाथों में लेकर उसे सहलाते हुए वे मुझसे बोले- 'कहिये?'

मै समझ नहीं पा रहा था कि प्रारंभ कहाँ से करूँ। मैंने कहा।

प्रश्न : 'सुना है, आप समाचार-पत्रीय प्रसिद्धि को टालते हैं और आपका संगठन गुप्त है?

उत्तर : यह सत्य है कि हमें प्रसिद्धि की चाह नहीं, किंतु गुप्तता की कोई बात ही नहीं है। मुझसे जो चाहें पूछें।

प्रश्न : जेक-क्युरेन की पुस्तक आर.एस. एस. एंड हिंदू मिलिटिरिज्म में आपकी संस्था के विषय में मैंने पढ़ा है।

उत्तर: वह विवरण पूर्वाग्रहदूषित है। उसने मुझे और अन्य अनेकों को गलत ढंग से उद्धृत किया है। हमारे कार्य में फौजीपन को कोई स्थान नहीं है। अनुशासन को हम महत्त्व देते हैं, किंतु वह एक अलग विषय है।

प्रश्न: मैंने एक लेख पढ़ा है, जिसमें जेक-क्युरेन को यूरोप और अफ्रीका में सी.आई.ए. की कार्यवाहियों का सूत्रधार बताया गया है। मैं उसे २० साल से जानता हूँ और मैंने उस पर संदेह न किया होता?

उत्तर: इसमें किसी भी प्रकार का मुझे आश्चर्य नहीं है।

प्रश्न: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विषय में एक बात है, जो मेरे दिमाग को सताया करती है। वह बात है अल्पसंख्यकों, विशेषतः ईसाइयों और मुस्लिमों के प्रति आपके रुख के बारे में?

उत्तर: धर्मांतरित करने के उनके तरीकों को छोड़ दिया जाए, तो ईसाइयों से हमारा कोई विरोध नहीं है। बीमारों को दवाई या भूखों को रोटी देने जैसे कार्यों का उपयोग उन्हें अपने धर्म-प्रचार के लिए नहीं करना चाहिए। मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई कि भारतीय गिरजाघरों को रोम के नियंत्रण से मुक्त करने और उन्हें स्वायत्त बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

प्रश्न: मुस्लिमों के विषय में आपका क्या कहना है?

उत्तर: मुझे रंचमात्र संदेह नहीं है कि भारत और पाकिस्तान के प्रति मुसलमानों में जो दोहरी निष्ठा है, उसके लिए ऐतिहासिक कारण ही उत्तरदायी हैं और इस बारे में मुसलमान और हिंदू समान रूप से दोषी हैं। विभाजन के बाद उनपर जो आपत्तियाँ आईं और उनमें असुरक्षा की जो भावना निर्माण हुई, वह भी इसका एक कारण है। फिर भी कुछ लोगों की गलती के लिए संपूर्ण समाज को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

प्रश्न: हमारे यहाँ छह करोड़ भारतीय मुसलमान हैं। हम उन्हें समाप्त नहीं कर सकते। हम उन्हें निकाल बाहर भी नहीं कर सकते। उन्हें धर्मांतरित भी नहीं किया जा सकता। यह उनका घर है। इसलिए यह जरूरी है कि उनमें इस बात का भरोसा पैदा करें। उन्हें प्रेम के जरिए जीतें?

उत्तर: आपके सुझाव का क्रम बदलकर मैं चाहूँगा कि उनकी निष्ठाओं को प्रेम से जीतना ही मुसलमानों के प्रति एकमेव सही नीति है। जमात-ए-इस्लामी का एक प्रतिनिधि-मंडल मुझसे मिलने आया था।

मैंने उनसे कहा कि मुसलमानों को यह बात भूल जानी चाहिए कि उन्होंने भारत पर राज्य किया था। विदेशी मुस्लिम देशों को उन्होंने अपना घर नहीं समझना चाहिए और भारतीयता के मुख्य प्रवाह में उन्हें सम्मिलित हो जाना चाहिए।

प्रश्न : कैसे?

उत्तर : उन्हें सब बातें समझानी होंगी। मुसलमान जो कुछ करते हैं, उससे कभी-कभी क्रोध हो आता है, किंतु हिंदू-रक्त की प्रकृति में दुर्भाव दीर्घ काल तक नहीं रहा करता। समय में घावों को भरने की महान क्षमता है। मैं आशावादी हूँ और मुझे लगता है कि हिंदुत्व और इस्लाम एक-दूसरे के साथ रहना सीख लेंगे।

प्रश्न : धर्म के प्रति निष्ठा पर आप इतना अधिक जोर क्यों देते हैं, जबकि अधिकांश विश्व आज धर्महीनता और अनीश्वरवाद की ओर मुड़ रहा है?

उत्तर : हिंदू धर्म का आधार दृढ़ है, क्योंकि वह किसी खास मतवाद पर आधारित नहीं है। इसमें पहले भी अनीश्वरवादी हुए हैं। इसलिए अन्य किसी भी उपासना-पद्धति की अपेक्षा निधार्मिकता की लहर में जीवित रहने की उसमें अधिक क्षमता है।

प्रश्न : आप कैसे कह सकते हैं? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इसके विपरीत हैं। जो धर्म आज दृढ़तापूर्वक खड़े हैं या यों कहें कि जनता में अपना प्रभाव बढ़ा रहे हैं, वे तो साँचेबंद मतवाद पर ही आधारित हैं। कैथोलिक पंथ और उससे भी कहीं अधिक इस्लाम की भी यही स्थिति है।

उत्तर : यह एक तात्कालिक अवस्था है। इसलिए अनीश्वरवाद उनपर हावी हो जाएगा, हिंदू धर्म पर नहीं हो सकता। क्योंकि शब्दकोशीय अर्थ में हिंदू-धर्म कोई 'रिलिजन' नहीं। वह एक धर्म है, एक जीवन पद्धति है। अतः हिंदू-धर्म अनीश्वरवाद पर सहज ही विजय प्राप्त कर लेगा।

श्री मोहन रानडे से वार्तालाप

(गोवा के स्वतंत्रता-सेनानी श्री मोहन रानडे से नवंबर १९७२ में हुआ वार्तालाप)

श्री गुरुजी : पुर्तगाल में लंबी कैद के दिनों में तुम अवकाश का समय किस प्रकार व्यतीत करते थे?

मोहन रानडे : मैंने स्पेनिश, पोर्तुगीज और फ्रेंच भाषाएँ सीखीं। अब इन भाषाओं में धाराप्रवाह बोल सकता हूँ।

श्री गुरुजी : अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति और राजनैतिक संबंधों के दिनों में यह आवश्यक हो गया है कि हम जितनी अधिक से अधिक विदेशी भाषाओं को सीख सकें, सीखना चाहिए। केवल युवाओं को ही नहीं, बालकों को भी इस दिशा में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, किंतु अपने देश के साथ आत्यंतिक निष्ठा की आवश्यकता निःसंशय है। आवश्यकता निर्माण होने पर किसी भी त्याग की उनकी तैयारी रहनी चाहिए।

कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसा देश, जिसकी धूलि का एक–एक कण दिव्यता से ओतप्रोत है, हमारे लिए पावनतम हैं, हमारी पूर्ण श्रद्धा का केंद्र है। यह श्रद्धा की अनुभूति संपूर्ण देश के लिए है, उसके किसी एक भाग मात्र के लिए नहीं। शिव का भक्त काशी से रामेश्वरम् जाता है, और विष्णु के विभिन्न आकारों एवं अवतारों का भक्त इस संपूर्ण देश की चतुर्दिक यात्रा करता है। यदि वह अद्वैतवादी है तो जगद्‌गुरु शंकराचार्य के चारों आश्रम, जो प्रहरी के समान देश की चारों सीमाओं पर खड़े हैं, उसे चारों दिशाओं में ले जाते हैं। यदि वह शाक्त है– उस शक्ति के पुजारी की विश्व की जो दिव्य माँ है– की तीर्थयात्रा के लिए बावन स्थान हैं, जो बलूचिस्तान में हिंगुलाज से असम में कामाक्षी पर्यंत और कश्मीर में ज्वालामुखी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक फैले हुए हैं। इसका यही अर्थ है कि यह देश विश्व की जननी का दिव्य एंव व्यक्त स्वरूप है।

–श्री गुरुजी

दृष्टिकोण

१. संघ का कार्य और कार्यक्रम

(पत्रकारों के सम्मुख २४ अगस्त
१९४९ को दिल्ली में दिया गया भाषण)

हिंदू, अर्थात् भारतीय संस्कृति में जो कुछ भी सर्वोत्तम है, उसका पुनरुज्जीवन तथा उसकी दृढ़ नींव पर लोगों को बंधुत्व के दृढ़ सूत्र में बाँधने के हेतु संघ की स्थापना हुई और यही कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता आया है। हमारी एक समान परंपरा है तथा हमारी इन सभी बाह्य विभिन्नताओं के मूल में भी आंतरिक एकता है– इस सत्य की अनुभूति व्यक्ति-व्यक्ति को कराकर समाज की विघटनात्मक प्रवृत्तियों को नष्ट करते हुए संघ लोगों में परस्पर विश्वास, प्रेम, और आदरभाव तथा अपनी मातृभूमि भारत के प्रति लोगों के हृदय में अनन्य प्रेम निर्माण करने के हेतु प्रयत्नशील है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघ ने अपना एक दैनिक कार्यक्रम निर्धारित किया है। इससे व्यक्ति के शारीरिक विकास के साथ-साथ स्वार्थरहित भावना से स्थापित पारस्परिक संपर्क द्वारा समाज में बंधुत्व-भाव, अपनी मूलभूत एकता की जागृति एवं अपने साथी और अपने पड़ोसियों के लिए अपने सुखों को त्यागने की भावना निर्माण होती है। इस प्रकार लोगों का दृष्टिकोण विशाल होता है। समष्टियुक्त अनुशासित नागरिक जीवन का निर्माण करना भी इन कार्यक्रमों का उद्देश्य है।

संक्षेप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ मातृभूमि तथा अपनी संस्कृति के प्रति अनन्य श्रद्धा, सुदृढ़ चारित्र्य एवं अपनी मूलभूत एकता की अनुभूति के आधार पर लोगों में निःस्वार्थ सेवा की भावना निर्माण करना चाहता है।

वह भी कुछ कालविशेष अथवा किसी संकुचित उद्देश्यसिद्धि के हेतु या किसी नीति-विशेष के रूप में नहीं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सभी वर्तमान समस्याओं की ओर इसी दृष्टिकोण से देखता है। वह अनुभव करता है कि भाषा के आधार पर प्रांतों के पुनर्निर्माण तथा प्रांतों की स्वायत्तता के सिद्धांत के कारण, भारतवर्ष केवल विभिन्न घटक-प्रांतों का एक संघराज्य मात्र होगा। जिसके अनुसार प्रत्येक घटक यदि चाहेगा तो संघराज्य से पृथक भी हो सकेगा। इस सिद्धांत पर अत्यधिक बल देने से निश्चित ही तीव्र एवं कटु मतभेद उत्पन्न होने की आशंका है। यह विचार निश्चित ही ठीक न होकर गंभीर खतरे से पूर्ण है।

समाज के विभिन्न घटकों की मूलभूत एकता में संघ का पूर्ण विश्वास होने के कारण, आर्थिक विषमता को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर लोगों में आपसी फूट एवं कृत्रिम वर्ग-विशेष में सतत संघर्ष निर्माण करते रहने की नीति को संघ देश की भलाई व उन्नति के लिए किसी भी प्रकार उचित या हितकर नहीं मानता। परस्पर सहकार्य के आधार पर उद्योगों का निर्माण, लाभ का समुचित बँटवारा तथा उद्योगों पर राज्य का सूक्ष्म निरीक्षण रहने से देश में अधिक शांतिमय वातावरण निर्माण हो सकेगा। अपने ही स्वार्थ की सिद्धि की प्रबल प्रवृत्ति पर नियंत्रण से देश में सुख व शांति प्रसारित होगी। किंतु यह तभी संभव है, जब जनता समुचित रूप से शिक्षित एवं विशुद्ध चारित्र्य से युक्त हो।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए संघ सहज-स्वीकृत पद्धति से जनता को शिक्षित करते हुए अपनी वांछित स्थिति का निर्माण करने में विश्वास रखता है तथा इस बीच के काल में लोक-प्रतिनिधियों द्वारा की गई व्यवस्था को वह स्वीकार करता है। एक अच्छे और स्वतंत्र प्रजातंत्रवादी राज्य में लोगों द्वारा इस प्रकार की सार्वत्रिक स्वीकृति की आवश्यकता रहती है, अन्यथा राज्य में सदैव ही अशांति रहेगी तथा देश दुर्बल हो जाएगा। इस विषम स्थिति को सावधानीपूर्वक टालने की आवश्यकता है। इसलिए संघ शांतिमय एवं उत्तरोत्तर विकास में विश्वास करता है। उसका यह भी विश्वास है कि जो कुछ अवांछनीय एवं अहितकर बातें हमारे सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों में प्रवेश कर गई हों, फिर चाहे वे हमारी असावधानी के कारण हों अथवा एकांगी प्रचार या राष्ट्रजीवन के आधारभूत

सिद्धांतों के अपूर्ण ज्ञान के कारण हों, यथोचित समय आने पर वे समुचित प्रकार से शिक्षित जनमत के द्वारा शनैः-शनैः दूर हो सकती हैं और दूर होंगी ही।

२. पत्रकारों का दायित्व

(पटना में ४ सितंबर १९४९ को पत्रकारों के सम्मुख व्यक्त विचार)

पत्रकारों का दायित्व महान है। कर्तव्य महत्त्वपूर्ण और अत्यंत पवित्र है। ये शक्ति के स्रोत संगठन के साधन और राष्ट्र निर्माण के साधक हैं। इन्हें आधारहीन भ्रम, द्वेषमूलक तथा असंगत बातों के प्रचार से दूर रहना चाहिए। इसी में पत्रकारिता की प्रतिष्ठा, पत्रकार के पावन कर्तव्य का निर्वाह, राष्ट्र का कल्याण एवं समाज का हित है। राष्ट्र और समाज के हितसाधन को दृष्टि में रखते हुए किसी भी पक्ष की आलोचना, किसी सिद्धांत का खंडन, किसी दल, वर्ग अथवा संस्था की नीति का पर्यवेक्षण सदा आदरणीय होता है। मैं सदा समालोचना का स्वागत करता हूँ और करता रहूँगा परंतु यह भी चाहता हूँ और चाहता रहूँगा कि वह आलोचना निराधार न हो। भ्रम फैलाने के विचार से कुछ का कुछ न कहा जाए। सत्य का गला न घोंटा जाए और असत्य के आधार पर आक्षेप या आरोप न किया जाए। मुझे सच्ची आलोचना से प्रेरणा मिलेगी, त्रुटि को सुधारने का अवसर मिलेगा और अपने कर्तव्य-पथ को निश्चित करने में सहायता ही मिलेगी। लेकिन मुझे दुःख तब होता है, जब पत्रकारिता के मौलिक सिद्धांत के विरुद्ध बातें कही जाती हैं। मैं किसी पत्र-विशेष का अथवा पत्रकारिता का विरोधी नहीं, किंतु मुझे जो व्यक्तिगत अनुभव हुए हैं, उन्हें आप लोगों के सम्मुख प्रकट कर रहा हूँ, क्योंकि इसका संबंध केवल आप लोगों से है। मैं निराधार और भ्रमोत्पादक बातों का विरोधी हूँ और समझता हूँ कि किसी भी उत्तरदायी पत्रकार के लिए वह अशोभनीय है।

३. संघ की राष्ट्रीय प्रासंगिकता

(कोलकाता में पत्रकारों को संबोधन, ७ सितंबर १९४९)

मैं स्वयं को सौभाग्यवान समझता हूँ, क्योंकि यहाँ पर उपस्थित आप सभी लोगों का, जो मेरे विचार से देश की संपूर्ण जनता को शिक्षित करने वाली प्रभावी शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, अल्प सा ही क्यों न हो, किंतु मुझे साथ प्राप्त हुआ। वर्तमान काल में जनता में शिक्षा का प्रचार होना अत्यावश्यक है, क्योंकि आप सभी यह भली-भाँति जानते हैं कि बिना शिक्षित जन-समुदाय एवं शिक्षा के जनतंत्र उतना सफल नहीं होता, जैसा कि वास्तव में होना चाहिए। यह एक शक्ति है और इस उपकारक शक्ति के प्रसार का कार्य आप सतत करते रहेंगे- ऐसी मैं आशा करता हूँ।

अब जहाँ तक कि हमारे कार्य का संबंध है, मैं केवल कुछ ही शब्द आपकी सेवा में रखूँगा।

हमें भली-भाँति विदित है कि यह कार्य २४ वर्ष पूर्व (सन् १९२५ में) प्रारंभ किया गया था। उसी समय से वह शनैः-शनैः दृढ़तापूर्वक, किंतु प्रसिद्धि-पराङ्मुखता के साथ बढ़ता हुआ एक प्रांत से दूसरे प्रांत में फैलता जा रहा है। हमारा सारा प्रयत्न बिना ढिंढोरा पीटे होता रहा, किंतु आजकल ढिंढोरा न पीटना ही गुप्त कार्य माना जाता है। प्रतिबंध की इस १८ मास की अवधि में हम पर लगाए गए आरोपों में सबसे बड़ा आरोप यही था कि हम गुप्त रूप से कार्य करते थे। जैसा कि आप जानते हैं, हम उन कतिपय आदर्शों के अनुसार कार्य करते हैं, जो हमारी भारतीय सभ्यता ने समस्त मानव-समाज के सम्मुख अनुकरण के हेतु प्रस्तुत किए हैं। प्रसिद्धि से अलिप्त रहकर शांत रीति से कार्य करना उन आदर्शों में से एक है। यदि स्वयं होकर प्रसिद्धि प्राप्त हो तो भले ही होती रहे, किंतु उसके पीछे दौड़ना कदापि उचित नहीं। हमारी कार्यप्रणाली इसी प्रकार की रही है। इसलिए हमने अपने कार्य का ढोल अपने हाथों पीटने का कभी भी प्रयास नहीं किया। यद्यपि देश के कतिपय वृत्त-पत्रों ने हमारी सभाओं आदि के वृत्त प्रकाशित किए हैं। हम उसे भी अनुचित नहीं मानते और न हम उनके पास जाकर उस प्रकाशन को स्थगित करने की माँग ही करते हैं। हमारी शांत रूप से कार्य करने की इच्छा का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हमारे मित्रों के मुँह पर ताला ही लगा दिया जाए, तथापि हमारी हार्दिक

कामना यही थी कि हमारा कार्य प्रसिद्धि के बिना ही वृद्धिंगत होता रहे। लोगों को कार्य का परिचय तो कृति से हुआ करता है, केवल शब्दों से नहीं। स्वीकृत कार्य की ओर देखने का हमारा यही दृष्टिकोण था। अतएव हम चाहते हैं कि मौन कार्य तथा गुप्त कार्य में उन लोगों को तो अवश्य ही अंतर समझना चाहिए जो ठोस कार्य से प्रेम करते हैं। गुप्तता तो सर्वथा भिन्न वस्तु है। जैसा कि आप जानते हैं कि हमारा कार्य, भिन्न-भिन्न प्रांतों में बढ़ता रहा। इसके आबाल-वृद्ध, सभी वर्गों के, यहाँ तक कि ग्रामीण तक सदस्य रहे हैं तथा जिसमें विभिन्न प्रकार के सदस्यों की इतनी विशाल संख्या रही हो उसके बारे में गुप्तता की आशंका करना ही असंभव है। अतः सौम्य शब्दों में कहना हो, तो मैं कहूँगा कि यह आक्षेप वास्तव में देखा जाए तो विचारपूर्वक किया हुआ कदापि नहीं था। यही कारण (प्रसिद्धिपराङ्मुखता) था कि हम समाचार-पत्रों की शक्ति के संपर्क में नहीं आए। किंतु अब इस १८ मास की अवधि के पश्चात् इस कार्य का फिर से प्रारंभ हुआ है और हम उसे आगे बढ़ाने योग्य स्थिति को प्राप्त हुए हैं, हमारे सभी मित्रों की इच्छा है कि इस कार्य को भी प्रसिद्धिजन्य सभी सुविधाओं व असुविधाओं (जैसी भी परिस्थिती हो) का अवसर प्रदान किया जाए, जैसा कि अन्य सभी कार्यों को प्राप्त है। इसे मौन कार्य रखने की दृष्टि से कोई भी विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं। हमारे कार्य के प्रति सहानुभूति रखनेवालों का, जिनमें कुछ पत्रकार भी सम्मिलित हैं, इस विषय में एकमत देखकर ही उन्हें मुझे इस क्षेत्र में खींचने का मानो अवसर प्रदान किया है।

हमारा कार्य अपनी उस प्राचीन संस्कृति का पुनरुज्जीवन करना है, जिसे हमारे पूर्वजों ने प्रस्थापित किया और जो समय पाकर परिपक्व हो चुकी है। सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन को अनेक बार लोग प्रतिक्रिया के गलत अर्थ में समझ लेते हैं और इस विषय में सर्वाधिक प्रचलित शब्द को लेकर इस प्रकार के कार्य पर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप मढ़ा जाता है। मैं समझता हूँ कि अतीत का पुनरुज्जीवन तथा प्रतिक्रियावादी केवल उन्हीं कार्यों को कहा जा सकता है, जिनसे समाज अधोगति की ओर बढ़े और जिनका सूत्रपात कुछ समय पूर्व हो गया हो। यह कार्य प्राचीन है और इसका पुनरुद्धार एवं पुनरुज्जीवन, अर्थात् हिंदू संस्कृति का पुनरुज्जीवन स्थायी महत्त्व रखता है। इसकी चर्चा करनेवालों से लोग बहुधा इसकी परिभाषा पूछते हैं। परंतु यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसकी परिभाषा बताना

अत्यंत कठिन है। यहाँ पर लोग यदि यह प्रश्न पूछें कि इसकी परिभाषा किए बिना आप अपना कार्य कैसे करेंगे, तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जहाँ तक मनुष्य को आरोग्य प्रदान करने का संबंध है, हमारी समस्त प्राचीन वैद्यक औषधियाँ अत्यंत उत्तम, उपादेय एवं प्रभावी हैं, तथापि उनका प्रयोग करनेवाले वैद्य मानव जीवन के रहस्य को नहीं जानते अथवा उसकी परिभाषा बतलाने में असमर्थ हैं। मुझे नहीं लगता कि आगामी अनेक शताब्दियों तक भी कोई ऐसा कर सकेगा। यहाँ तक कि जो पदार्थ हमारे शरीर अथवा समस्त प्राणिमात्र के शरीरों को जीवन प्रदान करता है, उसको वैज्ञानिकों ने केवल 'प्रोटोप्लाज्म' कहकर छोड़ दिया है। प्राणिशास्त्र का विद्यार्थी होने के कारण मैं इस बात को जानता हूँ। फिर भी हमारा कार्य भली-भाँति चलता है। यह इस समस्या का केवल एक पक्ष है और वह भी अभावात्मक है।

भावात्मक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति में कुछ विशिष्ट गुण हैं, जैसे– त्यागवृत्ति, संपूर्ण जीवन को एक यज्ञ समझना आदि। यह एक बात हुई। दूसरी है समस्त जगत् को एक ही सर्वव्यापक शक्ति की अभिव्यक्ति मात्र समझना और इस प्रकार से सभी लोगों में पारस्परिक घनिष्ठ एवं अखंड संबंध सूत्र स्थापित करना। इस प्रकार की त्यागवृत्ति के लिए जीवन के दैनिक व्यवहार में स्वाभाविक रूप से निःस्वार्थ भावना का होना अत्यंत आवश्यक है। किसी प्रकार की प्रसिद्धि अथवा प्राप्ति की अपेक्षा किए बिना निःस्वार्थ सेवाभाव इसका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके अतिरिक्त जो एक और महत्त्वपूर्ण अंग है उसको सभी 'सहनशीलता' शब्द से व्यक्त करते हैं। मुझे यह शब्द पसंद नहीं। सहनशीलता तो मन की एक अवस्था हो सकती है, जो 'कष्ट-सहिष्णुता' का दूसरा नाम है। जब हम किसी बात को अनिच्छापूर्वक तथा उचित न मानते हुए भी सहन करते हैं, उस वृत्ति में अनेक कदम आगे जाते हैं, तब़ कहते हैं कि हम केवल सहनशील ही नहीं, अपितु धार्मिक किंवा अन्यान्य मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्त सत्य के अनुसार आचरण करते हैं और उसको मान्य करते हैं। इतना ही नहीं तो उनको सत्य समझकर तथा देवत्वप्राप्ति के योग्य मार्ग के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। अतः केवल सहनशीलता बहुत ही साधारण बात है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो यह शब्द उस भाव को प्रकट करने में असमर्थ है, जिसको हिंदू अपने हृदय में धारण करता है, अर्थात् सर्वपंथ समभाव।

धार्मिक आग्रह के अतिरिक्त यदि हम दैनिक जीवन को भी लें, तो हमें मालूम पड़ेगा कि हम कुछ भी कहें, किंतु प्रत्येक व्यक्ति के अपने विचार होना अवश्यंभावी हैं। साथ ही ऐसे जनसमुदाय भी मिल सकते हैं, जिनमें बहुत अधिक विचार-साम्य हो। इस प्रकार की समान विचारधारा रखनेवाले जनसमुदाय अपने-अपने दल बनाएँगे और ये दल जीवन के विभिन्न मार्गों का अनुसरण कर सकते हैं, परंतु हम अनुभव करते हैं कि देश में रहनेवाले तथा हृदय में उस देश का हित व गौरव धारण करनेवाले और विभिन्न मत रखनेवाले इन सब दलों एवं समुदायों को दूसरों के दृष्टिकोण को समझने में समर्थ होना चाहिए व परस्पर एक-दूसरे के निकट आना चाहिए। यदि चाहें तो वे आग्रह, विवाद एवं तर्क के द्वारा दूसरों का मत-परिवर्तन कर सकते हैं। परंतु मैं समझता हूँ कि इसके आगे किसी को भी नहीं बढ़ना चाहिए— यह भी हमारी संस्कृति का एक प्रमुख संदेश है।

दुर्भाग्य से हमारे व्यावहारिक जीवन में आज एक-दूसरे के प्रति इस सहिष्णुता के दर्शन नहीं होते। प्रत्येक दल यह अनुभव करता है कि कार्यक्षेत्र में आनेवाले अन्य दलों में कुछ ऐसी बात है कि उनको समूल नष्ट कर देना चाहिए। उनके प्रति किसी प्रकार की सहिष्णुता असंभव है। उनको अस्तित्व में ही नहीं आना चाहिए और यदि अस्तित्व में आ गए हैं, तो उनकी वृद्धि नहीं होनी देनी चाहिए। इसलिए उनको उखाड़ फेंकने के समस्त उचित अथवा अनुचित उपाय पूर्णरूप से ठीक माने जाते हैं। अंततोगत्वा मानव अपूर्ण है और उसकी अपूर्णता में साधारणतः उससे यह आशा नहीं की जाती कि वह प्रत्येक समस्या का ऐसा व्यापक दृष्टिकोण ग्रहण करेगा, जिससे वह समाज का नेतृत्व करने में समर्थ हो तथा दूसरे राष्ट्रों से प्रतिस्पर्धा कर सके। यदि यह बात मान ली जाए तो निश्चित रूप से हमें दूसरों के विचारों का पर्याप्त आदर करना चाहिए और इस बारे में समुचित रूप से विचार-विनिमय करना चाहिए कि समष्टिगत उन्नति के लिए हम क्या कर सकते हैं। किसी दल-विशेष के सत्तारूढ़ होने से हमारे इस दृष्टिकोण में कोई अंतर नहीं पड़ सकता। हम इस बात को तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। हम तो केवल यह जानना चाहते हैं कि क्या लोग सुखी हैं? क्या वे चरित्रवान हैं? क्या हम उन पर व्यक्तिशः भरोसा कर सकते हैं और विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि इस देश का सर्वसाधारण व्यक्ति संसार के किसी भी देश के सर्वसाधारण व्यक्ति से श्रेष्ठ है? इसलिए हम जो कार्य करते हैं, उससे हमारे किसी भी सदस्य के कोई

भी राजनैतिक अथवा अन्य विचारधारा रखने में तब तक बाधा नहीं पड़ती, जब तक वह यह समझता है कि अनेक भेद एवं विभिन्नताओं की ओर ध्यान न देकर दूसरों को समझने की दृष्टि से मुख्य कार्य पर ही अत्यधिक बल देना आवश्यक है। नवार्जित स्वतंत्रता के इस काल में आज हम अनुभव करते हैं कि देश की आंतरिक एवं बाह्य समस्याओं के हल के लिए एक सुदृढ़ संयुक्त मोर्चे की अत्यधिक आवश्यकता है।

हम एक नाम महात्मा गाँधी का ले सकते हैं, किंतु सर्वसाधारण की क्या स्थिति है? हमारे बड़े-बड़े नेता राष्ट्रहित के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं, किंतु क्या वे विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि उनके अनुयायी वर्ग में महात्मा गाँधी का शतांश चरित्र भी है? मैं समझता हूँ कि वे ऐसा नहीं कह सकते। यदि ऐसा है तो निश्चित रूप से देश को कोई लाभ नहीं पहुँचा। संसार की दृष्टि में हमारा सम्मान नहीं बढ़ा। हम चाहते हैं कि सर्वसाधारण व्यक्ति की अवस्था आज से अधिक उन्नत हो। इसके लिए देश की समस्त विभिन्नताओं में अंतर्निहित मूलभूत एकता को ध्यान में रखकर हम इस कार्य की सिद्धि के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति लगा रहे हैं। हम यह मानकर चलते हैं कि हमारी जीवनधारा एक है, कश्मीर से कन्याकुमारी तक समस्त देश एक है। देश के इतने विशाल होते हुए भी चारों ओर के वातावरण में साम्य है। हमें केवल इसी बात पर विचार करना है।

जहाँ तक मेरा संबंध है अथवा ऐसा कहिए कि जहाँ तक मुझे सौंपे गए कार्य का संबंध है, मेरे विचार में एक व्यक्ति चाहे वह पंजाब का हो अथवा केरल का, दोनों में पूर्ण एकात्मता है। सोचता हूँ कि उनमें कोई भी भेद नहीं है। मेरा तो ऐसा ही अनुभव है। ईश्वर की कृपा से मुझे आसेतुहिमाचल समस्त भारत की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं कश्मीर भी गया हूँ और कन्याकुमारी भी। मैंने अक्षरशः अनेक बार संपूर्ण देश का भ्रमण किया है। यहाँ तक कि देश के अंतस्थ छोटे से छोटे स्थानों तक सुदीर्घ काल के लिए प्रवेश किया है। एक प्रकार से मेरे लिए असंभव सा होता, तथापि मैने वहाँ सर्वसाधारण तथा अनपढ़ लोगों तक के जीवन का निकट परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि वास्तविक अर्थों में देखा जाए तो देश के व्यक्ति-व्यक्ति में भेद कुछ भी नहीं है। उनमें समान सामर्थ्य है और समान ही दुर्बलताएँ हैं। सभी दृष्टियों से वे एक समान हैं। अतएव जब कभी मैं किसी स्थान पर जाता

हूँ, तब यही अनुभव करता हूँ कि मैं अपने घर में ही हूँ। व्यक्ति से संबंध आने पर मैंने कभी भी इसके विपरीत अनुभव नहीं किया। फिर वह व्यक्ति चाहे तमिल भाषा-भाषी हो, चाहे मराठी, चाहे बंगला अथवा पंजाबी भाषा-भाषी हो। इस कार्य ने मुझे जो पाठ पढ़ाया है उसके द्वारा मेरी दृष्टि में वे मुझे पूर्णतया एकरूप ही प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार हममें यह एकात्मता है, हम चाहते हैं कि इसी वृत्ति-विशेष का निर्माण पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक अपने देश के कोने-कोने के सभी निवासियों में निर्माण हो। केवल यही कारण है कि भाषा के आधार पर प्रांतों की पुनर्रचना के प्रश्न को हमारे कार्य में तनिक भी महत्त्व नहीं दिया गया। हम इस दिशा में प्रयत्नशील हैं कि देश के कार्य की सुविधानुसार प्रांतों का विभाजन हो।

हमारे कार्य में भी अनेक स्थानों पर स्वाभाविकतया भाषा के आधार पर ही प्रांत की सीमाएँ निर्धारित होते हुए भी हममें किसी भी प्रकार की कटुता, शत्रुता अथवा विरोध का तनिक भी आभास नहीं है, जबकि हम आज इन्हीं दुर्भावनाओं को सर्वत्र प्रचुर मात्रा में देखते हैं। मैं इस प्रवृत्ति का केवल वहीं तक विरोध करता हूँ, जहाँ तक उसका संबंध कटुता, शत्रुता तथा प्रतिशोध से है। अन्य सभी दृष्टियों से उन सभी लोगों से सहमत होने में मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं, जो देश के शासन की सुविधा की दृष्टि से ही प्रांतों की भाषानुसार रचना करना चाहते हैं, किंतु इस कटुता की प्रवृत्ति को मैं कदापि सहन नहीं करता। विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करूँगा। एक सज्जन, जो अखिल भारतीय नेता हैं, ने किसी एक नगर-विशेष को किसी दूसरे प्रांत में सम्मिलित किए जाने के प्रश्न पर (इस प्रकार के दो नगर हमारे देश में हैं) यहाँ तक कहने का साहस कर डाला कि यदि यह नगर दूसरे प्रांत के अंतर्गत किया गया तो समस्त प्रांत में खून की नदियाँ बह निकलेंगी। मैं कहूँगा कि यह तो हमारे आदर्शों के ठीक विपरीत, हिंसा को प्रेरित करना ही है। मेरी दृष्टि से तो एक गुजराती या महाराष्ट्रीय का मुंबई में रहना अथवा एक आंध्र या तमिल व्यक्ति का चेन्नै में रहना किसी भी प्रकार से आपत्तिजनक नहीं है। सुविधा की दृष्टि से की जानेवाली किसी भी प्रकार की व्यवस्था से मैं असहमत नहीं हो सकता, किंतु यह शत्रुता का भाव प्रतिशोध पर आधारित है। इस कटुता को छोड़ते हुए यह विचार ठीक ही है, अर्थात् भाषानुसार प्रांत-रचना की इस माँग में निहित इन कठिनाइयों को यदि एक ओर रख दिया जाए,

तो इसके विरोध में कोई भी आवाज नहीं उठाएगा। ये कठिनाइयाँ कालांतर में स्वयं होकर नष्ट हो जाएँगी, अन्यथा वे हमें उसी अवांछनीय अवस्था में खींच ले जाएँगी, जिसमें हम एक हजार वर्ष पूर्व थे।

उसी प्रकार देश की समस्त समस्याओं की ओर सांस्कृतिक दृष्टि से देखते हुए वह समस्या, आज जो हमारे सम्मुख उपस्थित है तथा जिसपर इतना अधिक बल दिया जा रहा है, राष्ट्रभाषा-संबंधी है। मेरे विचार में आज जो उलझन निर्माण की गई है, वह केवल देश की अन्यान्य सभी भाषाओं को समान रूप से राष्ट्रीय न मानने के कारण ही है। चाहे वह तमिल हो अथवा बंगला, मराठी हो या पंजाबी सभी हमारी समान श्रद्धा की पात्र हैं। मैं तो यही चाहूँगा कि हममें से प्रत्येक को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त देश की अन्यान्य भाषाओं में से कम से कम एक और भाषा का अध्ययन अवश्यमेव करना चाहिए। हम अपनी विशिष्ट प्रणाली द्वारा इस कार्य को संपन्न करने में प्रयत्नशील हैं। यद्यपि मैं बंगला में आपके सम्मुख भाषण नहीं दे सकता, फिर भी उसे भली-भाँति समझ सकता हूँ। इसी प्रकार हिंदी का भी ज्ञान रखता हूँ, यद्यपि वह मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी इच्छा है कि हम लोग देश की एकाधिक भाषाओं को जानने में समर्थ हों, जो कि हम पर समान अधिकर रखती हैं। अतएव संपूर्ण समस्या के हल की दृष्टि से हमें आज हिंदी को ही प्रधानता देना उचित होगा, क्योंकि वही सुविधाजनक है। जहाँ तक मेरा स्वयं का संबंध है, मैं हिंदी के पक्ष में हूँ, विशेषकर उस हिंदी के पक्ष में, जो सर्वसाधारण सभी भारतीय भाषाओं के समान ही संस्कृतनिष्ठ एवं संस्कृतिजन्य है। यदि किसी बड़े मेले के अवसर पर हम काशी जाएँ अथवा कुंभ मेले के समय प्रयाग, जहाँ कि सुदूर उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम तक के लोग पवित्र गंगाजी में स्नान करने के हेतु एकत्रित होते हैं, तब हमारे ध्यान में एक बात आए बिना नहीं रहेगी कि वहाँ पर वे लोग किस प्रकार संभाषण करते हैं, किस प्रकार अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। अपनी सर्वसाधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु किस प्रकार वे एक-दूसरे के निकट आते हैं। यदि वहाँ रहा जाए तो हमें यह प्रतीत होगा कि टूटी-फूटी एवं अधूरी ही क्यों न हो, किंतु एकमात्र हिंदी में ही वे भाव व्यक्त करते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बाद में निर्माण की गई कटुता की ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए सभी प्रांतों ने यह स्वीकार कर लिया है कि अन्य भाषाओं की अपेक्षा सीखने की दृष्टि से हिंदी सर्वाधिक सरल है।

संस्कृत का त्याग करने के १००० वर्ष उपरांत वाली भाषाओं में वह सर्वाधिक सरल है। अतः यदि हम संस्कृत का विकास नहीं कर सकते, तो हिंदी का अवश्य ही करें। इस प्रकार की भीषण कटुता निर्माण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जबकि यह कटुता एक प्रकार के भाषा के साम्राज्यवाद के काल्पनिक भय की उपज है। मेरे विचार में अंग्रेजी शासनकाल में भी बंगला, मराठी एवं गुजराती ने असाधारण प्रगति की तथा ऐसे उच्च स्तर की रचनाओं का निर्माण करने में वे भाषाएँ सफल सिद्ध हुईं, जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा विश्व के महान साहित्यिकों ने भी की है। अब हमें इस प्रकार का भय मानने की तनिक भी आवश्यकता नहीं कि प्रांतीय भाषा के अधिकारों पर किसी प्रकार का अतिक्रमण होने जा रहा है। इस बात को कोई भी नहीं चाहेगा कि वे सारी भाषाएँ, जिन्होंने सदियों तक हमारे विचारों को इतने सुयोग्य ढंग से अभिव्यक्त किया है, नष्ट हों और उनमें से केवल कोई एक देशी भाषा जीवित रहे। फिर भी राष्ट्रभाषा के रूप में केवल उस एक भाषा को उपयोग में लाया जाए, जो कि सर्वसाधारण जन के लिए विचारों के आदान-प्रदान की दृष्टि से सुगम हो, जिसे 'हिंदी' कहते हैं।

मैं देश की अन्यान्य भाषाओं के साहित्यिक गुणावगुणों की चर्चा के झमेले में नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि मैंने इन सभी भाषाओं का उस दृष्टि से अध्ययन नहीं किया, जैसा कि एक भाषाशास्त्रज्ञ किया करता है। हमने एक आदर्श भाषा बनाने की दृष्टि से हिंदी को केवल इसलिए स्वीकार किया है कि वह सादी, सीखने की दृष्टि से सरल तथा विचारों के आदान-प्रदान के लिए सुविधाजनक मानी जाकर सर्वसाधारण जनता द्वारा अपनाई गई है। इस प्रांत के गवर्नर श्रीमान् डा. कैलाशनाथ जी काटजू ने इस विषय पर बोलते हुए मेरे कुछ भावों को कहीं अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। केवल इसी कारण से कि हमने राष्ट्रभाषा संस्कृत की उपेक्षा करते हुए प्रांतीय भाषाओं के विकास की ओर ही अपना संपूर्ण ध्यान केंद्रित किया, हमें भाषावार प्रांतों की रचना से उत्पन्न घातक प्रवृत्तियों का शिकार बनना पड़ा। यदि ऐसा न होता तो पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान का कार्य कहीं अधिक सरल होता तथा जिन कठिनाइयों का हमें आज सामना करना पड़ रहा है, उनके होते हुए भी हम अपने में वास्तविक, चैतन्यमय एवं पूर्ण एकात्मता का अनुभव करते। किंतु आज हमें प्रतीत होता है कि अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में उस भाषा को फिर से स्थान

देना बहुत कठिन है, किंतु जब तक हमारी यह कठिनाई दूर नहीं होती, क्या हम किसी विदेशी भाषा को अपनी श्रद्धा अर्पण करने जा रहे हैं? मेरे विचार में हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। इन २, ३ या ५ वर्ष की संक्रमण-काल की अवधि में उसे अनिवार्य मानकर ही हमें सहन करना होगा। किंतु तत्पश्चात् हमें अपना संपूर्ण ध्यान इस बात पर केंद्रित करना होगा कि उस विदेशी भाषा के स्थान पर एक ऐसी देशी भाषा को प्रस्थापित किया जाए, जो कि विभिन्न प्रांतों के लोगों के पारस्परिक विचारों के सुगमतापूर्वक आदान-प्रदान की आवश्यकता की पूर्ति कर सके तथा एक साधारण भाषा के नाते सभी को पूर्ण एकता के सूत्र में आबद्ध करे।

लिपि, देश का नाम आदि प्रश्नों के संबंध में वाद-विवाद का तूफान खड़ा करने की तनिक भी आवश्यकता संघ अनुभव नहीं करता, क्योंकि हिंदी के साथ स्वाभाविक रीति से सबसे अधिक पूर्ण लिपियों में से एक नागरी लिपि हमारी राष्ट्रलिपि होनी चाहिए। वैसे ही देश का नाम 'भारत' होना ही युक्तियुक्त है। वह हमारी ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार है तथा 'भारतीय नाट्य' 'भारतीय कला' जैसे वाक्य प्रयोगों से उसे हम अपने व्यावहारिक जीवन में अप्रत्यक्ष रूप में मान्य भी कर चुके हैं। यह संज्ञा हमें अपने वैभवशाली अतीत का स्मरण कराकर उज्ज्वल भविष्य के निर्माण हेतु प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देती है।

देश के सम्मुख आज प्रमुखता से उपस्थित रहनेवाले अन्यान्य प्रश्नों में से ये कुछ प्रश्न हैं, जिन्हें हम अपने दृष्टिकोण से हल करना चाहते हैं। विचार-विभिन्नता हो सकती है और वह अनिवार्य है। यहाँ पर उपस्थित अनेकों सज्जनों का, जो कि विभिन्न पत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, सोचने का ढंग भिन्न-भिन्न होगा। उसमें कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती। हमारे मत भिन्न होंगे, हम उन्हें व्यक्त करेंगे, यहाँ तक कि एक-दूसरे की आलोचना भी करेंगे, किंतु विगत १० वर्षों से वर्ष में ३ बार संपूर्ण देश का सतत पर्यटन करते हुए मैंने जो अनुभव किया तथा मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा, वह अनेकता में मूलभूत एकता का है। हम लोग राजनीति से पूर्णतया अलिप्त हैं तथा जनमत को अपने पक्ष में खींचने के लिए भिन्न-भिन्न दाव-पेचों का सहारा लेकर हमें अपना उल्लू सीधा करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। मैं तो केवल अपने राष्ट्र की एकता, सामंजस्य एवं सांस्कृतिक आधार पर स्थित वास्तविक एकात्मता की दृष्टि से ही विचार करता हूँ और उसी दृष्टि से मैंने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

४. गोहत्या-निरोध आवश्यक

(दिल्ली में पत्रकारों से चर्चा करते हुए १५ अक्तूबर १९५२ को गोहत्या-निरोध आंदोलन के विषय में प्रस्तुत विचार)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा गोहत्या के विरोध में चलाए जा रहे अभियान का उद्देश्य इस प्रश्न पर जनजागरण करना, संपूर्ण देश के वयस्क व्यक्तियों के हस्ताक्षरों के रूप में जनमत को अभिव्यक्त करना और दुधारू या ठेठ बूढ़ी या बाछी गोहत्या पर देशव्यापी प्रतिबंध के लिए सरकार से आग्रह करना है।

पशुओं की सुरक्षा की आवश्यकता का पहला कारण तो यह है कि अपना देश मुख्यतः कृषिप्रधान है और यहाँ सामूहिक या विशाल पैमाने पर जोत की प्रथा नहीं है। आचार्य विनोबा भावे का मत है कि छोटे भूखंडों (जैसे ५ एकड़) के वितरण से सभी को और विशेषतः बेरोजगारों को रोजगार देने से समस्या हल हो सकती है। इन सब पहलुओं को देखते हुए इस देश में यंत्रों द्वारा खेती बहुत सफल होने की संभावना नहीं है। इसलिए खेती के विभिन्न कामों के लिए पशुओं की बड़े पैमाने पर आवश्यकता है। खाद की पूर्ति भी एक पहलू है, किंतु वह तभी मिल सकती है जब आजकल बड़े पैमाने पर होनेवाला गोधन का भीषण संहार रोका जाए।

गाय के प्रति जनसाधारण की अनन्य श्रद्धा है और यही बात मुझे सब से अधिक जँचती है। जनश्रद्धा के विषयों की आज जिस प्रकार से अवहेलना हो रही है, वह दुःखदायक है। लोगों को राष्ट्रीय चेतना से उत्स्फूर्त करना तभी संभव होगा, जब प्राचीन परंपरागत श्रद्धाओं का लोगों में पुनर्जागरण किया जाएगा। इस दृष्टि से सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण एक प्रशंसनीय उदाहरण है, क्योंकि उसका लक्ष्य था पराजय और दासता की भावना को समूल नष्ट करना। गो-रक्षा से भी वही लक्ष्य साध्य होगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अन्य दलों के समान कोई दल नहीं है, फिर भी वह इस अभियान का प्रारंभ कर रहा है, क्योंकि किसी न किसी को आगे आना चाहिए। यह अभियान किसी दल की ओर से प्रारंभ नहीं किया गया है। इसलिए यह आशा है कि सभी दल इस अभियान में सहयोग देंगे।

गोहत्या के विरुद्ध इस अभियान के विषय में संभाव्य आक्षेपों से

मैं अवगत हूँ। उदाहरणार्थ– कोई यह कह सकता है कि बूढ़े पशु बोझ हैं, इसलिए उनकी हत्या होनी ही चाहिए। किंतु यह सत्य नहीं है। इसके विपरीत मैं समझता हूँ कि यदि वृद्ध और निरुपयोगी गाय-बैलों की सही देखभाल की जाए तो उससे जो लाभ होगा, वह उन पर किए जानेवाले खर्च से कहीं अधिक होगा।

इसी प्रकार, विदेशी मुद्रा का भी प्रश्न उठ सकता है, किंतु इसे अनावश्यक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। विशेषतः ऐसे प्रश्न पर, जिसपर संपूर्ण समाज श्रद्धा रखता हो, विदेशी मुद्रा का विचार महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। यह स्पष्ट दिखाई देते हुए भी कि नशाबंदी से भारी वित्तीय हानि होगी, सत्तारूढ़ दल ने इसे चुनाव का विषय बनाया है और वित्तीय हानि की पूर्ति अन्य मार्गों से करने का प्रयास किया है। मेरा निश्चित मत है कि यही बात गोहत्या के संदर्भ में भी अपनाकर विदेशी मुद्रा और चर्म-व्यवसाय में होनेवाले नुकसान की भरपाई की जा सकती है।

इस आक्षेप में भी कोई अर्थ नहीं है कि गोहत्या बंद कर देने से गोहत्या पर आजीविका चलानेवाले बेरोजगार हो जाएँगे। उन्हें दृढ़ता से कहा जा सकता है कि वे कोई अन्य अच्छा-सा व्यवसाय ढूँढ लें। हथकरघे का पुश्तैनी व्यवसाय करनेवाले चेन्नै के बुनकरों से केंद्रीय मंत्री श्री. टी.टी.कृष्णमाचारी यदि यह कह सकते हैं कि उन्हें सूत नहीं मिलता तो अन्य कोई व्यवसाय ढूँढ लें, तो फिर यही बात कसाइयों से क्यों नहीं कही जा सकती?

अपने संविधान की धारा ४८ के अनुसार दुधारू हों या शुष्क, सभी पशुओं की रक्षा आवश्यक है। किंतु शासन ने अभी तक इस संबंध में कुछ नहीं किया है। इसलिए सरकार को उसके कर्तव्य का स्मरण कराने के लिए संघ ने यह अभियान प्रारंभ करने का निश्चय किया है।

२६ अक्तूबर को गोपाष्टमी होने के कारण उस दिन से यह अभियान शुरू होगा। गोपाष्टमी महोत्सव भगवान श्रीकृष्ण और उनके ग्वालबालों की स्मृति में संपूर्ण देश में मनाया जाता है। २६ अक्तूबर से न केवल संघ के स्वयंसेवक ही, अपितु इस अभियान में सहयोग देने की इच्छा रखनेवाले अन्य लोग भी घर-घर जाकर हस्ताक्षर-संग्रह करेंगे। यह अभियान एक माह तक चलेगा और अंत में हस्ताक्षरों का यह संग्रह भारत के राष्ट्रपति को समर्पित किया जाएगा। यद्यपि अभी अंतिम रूप से

निश्चित नहीं हुआ है, फिर भी ७ दिसंबर को हस्ताक्षरों का संग्रह राष्ट्रपति को समर्पित करने का विचार है। हस्ताक्षर समर्पण एक प्रतिनिधिमंडल द्वारा किया जाएगा।

शासन यदि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रस्तावों को स्वीकार नहीं करता है तो संघ सभी संवैधानिक उपायों का अवलंब कर अगली कार्रवाई करेगा। जहाँ तक सत्याग्रह का प्रश्न है, यदा-यदा होनेवाले सत्याग्रह अपने देश के योग्य विकास की दृष्टि से बहुत उपयोगी नहीं हैं। सत्याग्रह एक अस्त्र है और अन्य सभी अस्त्र विफल हो जाने के बाद ही उसका उपयोग करना चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से, गाय के प्रति श्रद्धा का उल्लेख उतना ही प्राचीन है, जितना कि वेद प्राचीन है।

हमारे लचीले धर्म के स्वरूप की जो प्रथम नैसर्गिक विशेषता बाहरी व्यक्ति की दृष्टि में आती है, वह है पंथ एवं उपपंथों की आश्चर्यजनक विविधता। यथा– शैव, वैष्णव, शाक्त, वैदिक, बौद्ध, जैन, सिख, लिंगायत, आर्यसमाजी आदि। इन सभी उपासनाओं के महान आचार्यों एवं प्रवर्तकों ने उपासना के विचित्र रूपों की स्थापना हमारे लोक–मस्तिष्क की विविध योग्यताओं की अनुकूलता का ध्यान रखकर ही की है। किंतु अंतिम निष्कर्ष के रूप में सभी ने उस एक चरम सत्य को लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए कहा है, जिसे ब्रह्म, आत्मा, शिव, विष्णु, ईश्वर अथवा शून्य या महाशून्य तक के विविध नामों से पुकारा जाता है।

– श्री गुरुजी

सुसंवाद

१. श्रीमद्‌जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य, काँचीकामकोटि

(अगस्त १९५८)

प्रश्न: संघकार्य करनेवाले दो प्रकार के होते हैं–

- सर्व साधारण गृहस्थाश्रमी रहकर संघकार्य करनेवाले तथा
- आजीवन केवल संघकार्य ही करनेवाले।

इन्हीं कार्यकर्ताओं की सद्‍भावना एवं सदाचार पर कार्य-विकास तथा उत्कर्ष अवलंबित है। इस कारण उन्हें सारे मोहों से अलिप्त रहकर केवल इसी कार्य में झोंककर विमल चरित्र रहने की आवश्यकता है। चारों ओर का वातावरण चारित्र्यशुचिता के बिलकुल विपरीत है। घरों में भी उच्च संस्कारों का अभाव है। शिक्षा के क्षेत्र में भी सुसंस्कारों के एवज में कुसंस्कारों का ही बोलबाला है। अच्छे मार्ग से डिगाने वाला मोह एवं आकर्षण सर्वत्र फैला है। संघकार्य करते समय स्वयंसेवकों का, आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुष सबसे संपर्क होता है, तब मोह होने के अनेक कठिन प्रसंग आते है। इनसे स्वयं को दृढ़तापूर्वक अलिप्त रखकर, कार्य करने हेतु एवं स्वयं के जीवन को शुद्ध पवित्र रखने हेतु कुछ दैनंदिन उपासना आवश्यक है। वह किस प्रकार की हो?

कतिपय लोग गीता वाचन करते हैं कुछ ध्यान धारणा का प्रयास करते है। कभी कभार शतःश्लोकी, उपदेश साहस्री, विवेक चूड़ामणि इत्यादि ग्रंथों के वाचन का सुझाव दिया जाता है। तथापि यह पर्याप्त नहीं है, इसलिए किसी सर्वमान्य साधारण, किंतु निष्पक्ष मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होती है।

कार्य हेतु पूर्ण समर्पित, गृहस्थाश्रम के मोह से मुक्त कम से कम एक हजार व्यक्तियों की आवश्यकता है। अपने इस कार्य में

विभिन्न स्तर पर, शिक्षित, अल्पशिक्षित, अशिक्षित शहरवासी एवं ग्रामवासी इत्यादि सभी स्तर के कार्यकर्ता हैं। आप कृपया उनके लिए सुलभ व सुकर, किंतु प्रभावी साधना सुझाएँ।

उत्तर : कार्य हेतु व्यक्ति-चयन के समय सात्विकता तथा उनकी ध्येयनिष्ठा का मापदंड निर्धारित करना होगा।

प्रश्न : इस प्रकार से व्यक्ति-चयन के अनंतर भी बचपन से ही संस्कार एवं शिक्षा से वंचित व्यक्ति भी कार्य में जुट जाते हैं। वास्तव में वे सारे अच्छे होते हैं, किंतु उन्हें कभी-कभी बाहरी लोगों के विचार, विकार, रहन-सहन, स्वच्छंद वृत्ति तथा वासनामय जीवन का आकर्षण होने लगता है। सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक बंधन ढीले पड़ने लगते हैं। तब प्रस्थापित नीति-मूल्यों का उल्लंघन करने में गौरव मानते हैं। अनुशासनहीनता के कारण वेष तथा व्यवहार में उच्छृंखलता आती है। किंतु इस परिस्थिति में भी संघकार्य करने के इच्छुक लोग मिलते है। ऐसे समय मन नियंत्रित रखने के लिए उपासना की आवश्यकता प्रतीत होती है।

उत्तर : पूरक, कुंभक एवं रेचक का योग्य संतुलन रखकर शक्ति के अनुसार प्राणायाम करना उचित होगा। कुभंक करते समय मध्य भाग में या इससे उत्तम– सहस्रदल चक्र में श्री दत्त (त्रिमूर्ति भगवान) के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। सती अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं को शिशुरूप देकर त्रिमूर्ति बालक किया, इस धारणा से शिशुरूप त्रिमूर्ति दत्तात्रेय का ध्यान करना चाहिए।

मनोकामना पूरी करनेवाला, शुद्ध चरित्र, उत्कट सेवाभाव जागृत करनेवाला ज्ञानदाता एवं कर्म प्रवर्तक– ऐसा यह 'विग्रह' है। इसी के साथ 'ज्ञानेश्वरी' जैसे पवित्र ग्रंथ का नियमपूर्वक पठन तथा अध्ययन करना चाहिए। कार्य की शुद्धता पवित्रता मन में रखकर तथा 'यह तो धर्म जागरण का कार्य है', ऐसी धारणा करके इस कार्य में तन्मयता से जुट जाने का अविरत प्रयास करना चाहिए।

प्रश्न : समाज-जीवन सुव्यवस्थित रहे, इस हेतु चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ही श्रेष्ठ है, किंतु आजकल उस संबंध में अनेक भ्रम एवं विरोधी भावनाएँ हैं। विभिन्न प्रकार की नई समाज-रचना उनकी नवीनता के कारण आकर्षक लगती हैं। राज्यतंत्र भी इसके विपरीत है। समानता का

गलत अर्थ जनमानस पर अंकित हो गया है। भावाद्वैतं तथा कुर्यात्– अद्वैतं न हि किंचित्

इस कारण आचार्यों के सिद्धांतों की उपेक्षा हो रही है। इसी के साथ कहीं-कहीं वर्णसंकर तथा अधिकांश स्थानों पर कर्मसंकर दिखाई देता है। वर्ण के अनुसार कर्म न कर ब्राह्मणादि वर्णों में वैश्य तथा शूद्र धर्म स्वीकारा गया है। ऐसी विपरीत परिस्थिति में चातुर्वर्ण्य एवं आश्रम व्यवस्था पुनः स्थापित होना कठिन लगता है। इस परिस्थिति में प्रचार का प्रकार कैसा हो?

उत्तर: योग्य व्यक्तियों को ढूँढकर उन्हें पंच महायज्ञ तथा संध्यावंदनादि स्वधर्माचरण के मार्ग प्रशस्त किए जाएँ। एकाएक सर्वसाधारण के लिए नियम बनाना श्रेयस्कर नहीं होगा, केवल विरोध मात्र बढ़ेगा। विरोध उत्पन्न किए बिना कुछ व्यक्तियों को स्वधर्म की दिशा में लगाना श्रेयस्कर होगा। राष्ट्रोन्नति में प्रयत्नशील– आपद्धर्म समझकर क्यूँ न हो, पर स्वधर्माचरण की आदत, संपर्क में आए प्रत्येक व्यक्ति को लगा सकते हैं, पर यदि उन्होंने ही स्वधर्माचरण बंद कर दिया तथा वे ही विरोधी हो जाएँ तब? उसी प्रकार केवल धर्मपालन मात्र से उपजीविका ही असंभव हो जाती है। संक्षेप में राष्ट्र का नेतृत्व करने का जिन्हें अधिकार है, वे ही धर्मानुसार समाज-व्यवस्था कर सकते हैं। यही उनका योग्य कार्य है, किंतु वे ही लोग स्वयं कर्तव्यपालन न कर विपरीत व्यवहार करते हैं। इसी कारण वर्णानुसार जीवनयापन कठिन हो जाता है। धर्मपालन से प्राप्त कष्ट कुछ लोग ही सह सकते हैं। इस कारण शेष लोग अन्यान्य वर्णों के कार्य करना प्रारंभ करते हैं। यह आपद्धर्म मानकर, अन्य भी कुछ मूलभूत स्वधर्म के कर्तव्य हैं, उनका यथाशक्ति पालन करना संभव है एवं आवश्यक भी है– यह अपने साथ के योग्य व्यक्तियों को समझाकर उनके द्वारा धर्म पालन करवाना चाहिए। पर वृथा विरोध का आडंबर उपस्थित न हो, इसका ध्यान भी अवश्य रखना चाहिए।

आज की परिस्थिति इस प्रकार के धर्माचरण की शिक्षा के विरुद्ध है। अपने ही समाज से पृथक होने का अविचार बढ़ रहा है। उन्हें शनैः-शनैः आत्मीय बनाना आवश्यक है।

स्वयं के उदाहरण से धर्मानुसार स्वकर्माचरण किस प्रकार सुखदायी, उन्नतिकर तथा समाजपोषक है, यह जन-जन को

समझना होगा। 'भावाद्वैत का पोषण' कर एकता साधनी होगी। विच्छेदक प्रवृत्ति करने हेतु लोगों पर व्यर्थ टिप्पणी या व्यंग्य नहीं किए जाने चाहिए। अपने उपदेशों में हम 'द्रविड़ कळघम' का उल्लेख किए बिना सब धर्मों में किस प्रकार समानता-सामंजस्य है, यही प्रतिपादन करते हैं। वहाँ किसी पर भी, किसी प्रकार की टिप्पणी नहीं रहती। वर्तमान का प्रभाव विपरीत है। इस कारण सौजन्य एवं कुशलता से ही धर्म पुनः प्रस्थापित हो सकता है।

प्रश्न: स्वयंसेवकों के मन में व्यक्तिगत कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं। ध्यान-धारणा, चिंतनादि करते समय संघकार्य से निवृत्त होकर केवल ईश्वरोपासना हेतु एकांतवास करना– ऐसी मानसिकता दिखती है। शास्त्रों में भी कर्म से शुद्ध ज्ञान एवं पराशांति अप्राप्य है, ऐसा ही प्रतिपादित किया गया है। इस कारण निवृत्ति एवं सर्व कर्मत्याग ही आवश्यक है, ऐसा विचार आता है। क्या इस प्रकार का विचार उचित है? इस पर कोई उपाय है?

उत्तर: 'न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।' (गीता ३:४) कर्म न करने से कर्म से निवृत्ति नहीं मिलती। इस प्रकार की निवृत्ति भी एक प्रकार का कर्म है। स्वकर्मरूप तपस्या पूर्ण होने पर धीरे-धीरे कर्म कर्तृत्व नष्ट हो जाता है। दुराग्रह से यह स्थिति प्राप्त नहीं होती।

'कर्म करना ही चाहिए' इस सिद्धांत का आग्रहपूर्वक उद्‌बोधन करनेवाले अरविंद घोष ने स्वयं को एक कमरे में बंद कर लिया तथा 'सच्चा कर्मत्याग, याने स्वकर्मफल त्याग है' इसलिए निवृत्ति का उपदेश देनेवाले आदिशंकराचार्य धर्म संस्थापना हेतु आजन्म सारे देशभर भ्रमणरूप कर्म ही करते रहे। अतः ईश्वरार्पण बुद्धि से धर्माचरण करते हुए स्वार्थ बुद्धिरहित अलिप्त भावना से काम करते रहना ही वास्तविक कर्मत्याग है। निवृत्ति का फल इसी से प्राप्त होता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। (गीता ३:५)

प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। अतः जो भी कर्तव्य हो, वह अनासक्त होकर करते रहना चाहिए।

भगवद्‌गीता के अलग-अलग अर्थ निकाले जाते हैं। पर उसमें कर्म, भक्ति व ज्ञान– तीनों ही बतलाए गए हैं। आसक्तिरहित

कर्मार्पण एवं शुद्धज्ञान की अनुभूति इस प्रकार संपूर्ण दृष्टि से समन्वयक विचार गीता में किया गया है।

उपासना करनी चाहिए, कर्म भी करते रहना चाहिए, पर अनासक्त कर्म करने में ही निवृत्ति का आनंद पाया जा सकता है।

प्रश्न: क्या आप यह मानते हैं कि लोकतंत्र ही सर्वश्रेष्ठ शासनतंत्र है?

उत्तर: किसी भी व्यवस्था को निर्दोष कहना कठिन है। बर्नार्ड शॉ का कहना है कि लोककल्याणकारी तानाशाह के अभाव के कारण ही लोकतंत्र का जन्म हुआ है। सरकार चलानेवाले प्रामाणिक और स्वार्थरहित हों, तो कोई भी शासनतंत्र चल सकता है। वह तो मनुष्य-गुणों पर निर्भर करता है।

प्रश्न: मान लीजिए कोई ईमानदार तानाशाह सत्तारूढ़ हो जाए, तो?

उत्तर: अच्छी सरकार की परंपरा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलाते रहना, तानाशाही में कठिन है। आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन शीघ्रता से हो सके ऐसी कोई व्यवस्था आवश्यक है। मनुष्य-स्वभाव को देखते हुए यह जरूरी है। लोकतंत्र ऐसी ही एक व्यवस्था है।

प्रश्न: अपने देश में लोकतंत्र, अपेक्षानुसार सफल क्यों नहीं है?

उत्तर: क्योंकि हमने चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण करनेवाले अपने सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार को तिलांजलि दे दी है। साथ ही लोकतांत्रिक ढाँचे को चलानेवालों का दृष्टिकोण स्वयं लोकतांत्रिक नहीं है। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति यदि सदा के लिए सत्ता पर बना रहना चाहे, तो वह लोकतांत्रिक दृष्टिकोण नहीं है। सच्चा लोकतंत्रवादी तो कहेगा, 'मै दूसरों को मौका दूँगा।' परंतु अपने देश में तो लोग तब तक पद पर बने रहना चाहते हैं, जब तक मृत्यु उन्हें खींच न ले जाए।

प्रश्न: उचित मनोवृत्ति किस प्रकार निर्माण की जा सकती है?

उत्तर: लोगों को सुशिक्षित करने से। शिक्षा का अर्थ है राष्ट्र, समाज और राष्ट्रीय जीवनादर्शों के प्रति लोगों में सही दृष्टिकोण का निर्माण करना। निस्संदेह अपना देश विशाल है और कार्य भी महान है।

प्रश्न: दो मुद्दों पर मैं आपसे सुनिश्चित सुझाव चाहूँगा, प्रथम— भ्रष्टाचार

पर रोक कैसे लगाई जाए और दूसरा– लोकतंत्र का वर्तमान रीतापन कैसे दूर किया जाए?

उत्तर: धर्म का संस्कार बाल्यावस्था से ही करना सहायक व उचित होगा।

प्रश्न: जब तक हिंदू, ईसाई या मुस्लिम-धर्मों का समावेश न किया जाए, शालाओं में धर्म-शिक्षा कैसे प्रारंभ की जा सकती है?

उत्तर: कुछ आधारभूत सिद्धांत स्वीकार कर लेने होंगे। जैसे कि संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक चिरंतन तत्त्व और उस श्रेष्ठ तत्त्व का साक्षात्कार करना जीवन का लक्ष्य।

प्रश्न: इसकी प्राप्ति का शिक्षा-क्रम क्या हो?

उत्तर: रास्ते कई हैं, परंतु मोटे तौर पर, मन को नियंत्रित करना और दुष्प्रवृत्तियों की ओर जाने से उसे रोकना मूल आधार है। योग के सिद्धांत ही सभी धर्म-प्रणालियों के आधार हैं। श्रद्धा-केंद्र चाहे जो हों, उनपर ध्यान केंद्रित करने के लिए योग का कुछ प्रशिक्षण आवश्यक होता है। इसलिए बच्चों को शमदमादि संपत्ति से युक्त करने पर बल दिया जाना चाहिए। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में कुछ जानकारी दी जाती है और रोटी कमाना सिखाया जाता है।

प्रश्न: किंतु रूस ने तो योग पर पाबंदी लगा दी है?

उत्तर: हम रूस तो नहीं है?

प्रश्न: मतदाता की न्यूनतम आयुमर्यादा को १८ वर्ष करने के विषय में आपका मत क्या है?

उत्तर: हमारे शास्त्रों ने तो कहा है- 'प्राप्तेषु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्। १८ भी बहुत अधिक है।

प्रश्न: किंतु वर्तमान २१ भी तो संतोषजनक नहीं है?

उत्तर: तब तो ३० भी संतोषजनक नहीं होगी।

प्रश्न: तो क्या आप कहना चाहते हैं कि इसकी कसौटी आयु नहीं, कोई अन्य होनी चाहिए?

श्री गुरुजी: जी हाँ।

२. आचार्य विनोबा भावे

(२ अप्रैल १९६४, वर्धा)

श्री गुरुजी : मैं अभी-अभी बिहार हो आया हूँ। हमारी कोशिश रही कि लोगों का धैर्य बना रहे, लेकिन क्षोभ होने पर धैर्य टिकता नहीं।

विनोबा जी : मैं अक्सर कहता हूँ कि स्थितप्रज्ञ की आवश्यकता जितनी आज है, पहले कभी नहीं थी। समाज के नेताओं को चाहिए कि वे प्रक्षुब्ध न हों।

श्री गुरुजी : सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन है कि वह स्थितप्रज्ञ बने। यह ठीक है कि नेताओं को प्रक्षुब्ध नहीं होना चाहिए, लेकिन इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि क्षोभ के कारणों को मिटाया जाए। अगर भारत सरकार मानवता और न्याय की नीति को अपनाती और यह महसूस करती कि पूर्व पाकिस्तान के हिंदुओं पर किए जाने वाले अत्याचारों को रोकना उसका कर्तव्य है, तो जनता में क्षोभ पैदा नहीं होता। पाकिस्तान से आनेवाले शरणार्थियों में तरुण, स्त्रियाँ और पुरुष नहीं दिखाई देते। शरणार्थियों को देखकर जनता में प्रक्षोभ पैदा होता है। अब तो ईसाई शरणार्थियों की कहानियाँ सुनकर ईसाई लोगों में भी क्रोध पैदा हुआ है, लेकिन इस तरह की अशांति पैदा होने से हमारा नुकसान होगा। देश के सामने जो अनेक समस्याएँ खड़ी हैं, उनको हल करने के लिए शांति की अत्यंत आवश्यकता है।

विनोबा जी : हमारे भाई बंगाल, बिहार और उड़ीसा में काम कर रहे हैं। इसलिए मेरे पास सारी जानकारी पहुँची है। पाकिस्तान से ईसाइयों को भगाया गया, जो आदिवासी भी हैं। नतीजा यह हुआ कि इधर के आदिवासी ईसाई क्षुब्ध हुए। राऊरकेला में उनको रोकने की कोशिश करनेवाले एक ईसाई मिशनरी को भी उन्होंने मार डाला। आदिवासियों में भी जागृति पैदा हो रही है। उन्हें लग रहा है कि हमें चारों तरफ से भगाया जा रहा है। हम लोगों ने आज तक आदिवासियों की प्रामाणिकता से सेवा की है। आप जैसे व्यक्तियों को चाहिए, जिनकी ईश्वर पर और मानव पर श्रद्धा है कि आप केवल हिंदुओं के संगठन की बात छोड़कर सब भारतीयों के संगठन का काम उठाएँ। सब धर्मवालों को एकत्रित कर जगह-जगह

अध्ययन केंद्रों की स्थापना की जाए। वहाँ सब धर्मों का अध्ययन हो। पाकिस्तान में हमारे गीता प्रवचन की ८०० प्रतियाँ बिकीं, उसमें से ३०० मुसलमानों ने खरीदीं। भारत के सैंकड़ों मुसलमानों ने भी खरीदीं। कुरान-सार प्रकाशित होने से पहले ही कराची के 'डान' ने उसपर बहुत टीका की, लेकिन भारत के तमाम मुसलमान अखबारों ने मेरा समर्थन किया। मैं मानता हूँ कि मुझपर उनका यह बहुत बड़ा उपकार है। कुरान-सार प्रकाशित होने के बाद भी किसी ने यह नहीं कहा कि 'यह गलत काम हुआ। कुरान सनातन धर्म-ग्रंथ है, जिसका शब्द भगवान का है। इसलिए आपको उसका सार निकालने का क्या हक है?' ऐसा किसी ने नहीं कहा, बल्कि मेरे पास मुसलमानों की जितनी चिट्ठियाँ आईं, उनमें रचनात्मक सुझाव थे। मुसलमानों की यह सहिष्णुता देख कर मुझे खुशी हुई। इस तरह बाइबल का सार अभी तक नहीं निकाला गया है। उसके कुछ प्रकरण अलग से छापे गए हैं। मैंने एक ईसाई मित्र से पूछा कि मैं बाइबल का सार निकालूँ, तो क्या ईसाई लोग उसे स्वीकार करेंगे। उसने कहा कि पचास फीसदी लोग स्वीकार करेंगे।

इसलिए मैं कहता हूँ कि आप व्यापक बनें – मुसलमानों को बुलाएँ, उनके साथ चर्चा करें। मैंने पाकिस्तान में मौन प्रार्थना चलाई तो हजारों मुसलमान और हिंदू उसमें शरीक हुए। 'डान' ने उस पर टीका की, लेकिन मैंने कहा कि आप अपने-अपने घर पर जो प्रार्थना करते हैं, उसका मैं निषेध नहीं करता। वह भले ही चले, लेकिन क्या सब लोग मिलकर प्रार्थना नहीं कर सकते? और कामों में तो हम साथ रहते हैं, लेकिन भगवान का नाम लेने का मौका आते ही इस तरह बिखर जाते हैं, जैसे लाठीचार्ज हुआ हो। हिंदू इधर भागता है, मुसलमान उधर, ईसाई और कहीं, माने यह कमबख्त भगवान ही निकला कि जो सबको तोड़ता है। जो जोड़ने वाला है, वही तोड़ेगा तो कैसे चलेगा? इसलिए जो सज्जनता में विश्वास करते हैं और मानते हैं कि ईश्वर एक है, उन सबको इकट्ठा होकर मौन प्रार्थना करनी चाहिए। इस तरह सामुदायिक मौन प्रार्थना का कार्यक्रम आप चलाएँ। आप व्यापक बनेंगे तो भारत के अधिकांश मुसलमान आपके लिए अनुकूल हो जाएँगे। हिंदू, मुसलमान और ईसाई आदि में जो सज्जन हैं, उन सबको हमें

एकत्रित करना चाहिए और सज्जन समाज बनाना चाहिए। असम के मुख्यमंत्री सुना रहे थे कि तस्करी में हिंदू-मुस्लिम यूनिटी पक्की है। इसका मतलब यह हुआ कि जहाँ लोभ की प्रेरणा है, वहाँ धर्म के साथ कोई ताल्लुक नहीं रहता।

अभी महाराष्ट्र में सिरस गाँव में हिंदुओं ने नव बौद्धों पर जो अत्याचार किए, वह हमारे लिए बहुत बड़ा कलंक है। मैं तो नव बौद्धों से कहता हूँ कि हम बुद्ध को 'नवम् अवतार' मानते हैं। आप नवबौद्ध तो हम पुराण बौद्ध हैं। इसलिए आपसे हम दूर नहीं गए।

श्री गुरुजी : सब झगड़ों में राजनैतिक स्वार्थ और गुटों के स्वार्थ होते हैं। केवल धर्म के लिए कोई झगड़ा नहीं करता। इन झगड़ों को मिटाने के लिए कहीं से तो आरंभ करना होगा। हमने हिंदू-समाज को लेकर आरंभ किया, इसमें कोई दोष नहीं है। यद्यपि इस पर आक्षेप उठाया जाता है। मैं कट्टर हिंदू हूँ और इसलिए मानता हूँ कि इस दुनिया में जितने पंथ थे, जो आज हैं, जो आगे भी होंगे, वे सब हम मानते हैं। हम केवल सहिष्णु नहीं हैं। हम तो सबका सत्कार करनेवाले हैं। हिंदू धर्म का यह विश्वास है कि हर कोई प्रामाणिकता से जिस किसी मार्ग से ईश्वर की उपासना करना चाहता है, उसी मार्ग से ईश्वर उसको स्वीकार करेगा। इसलिए धर्म का कोई सवाल ही नहीं है। स्वार्थ के कारण झगड़े पैदा होते हैं। हमारी परंपरा में तो अनेक नाम, अनेक पंथ और अनेक ग्रंथ हैं, तो हम दूसरों के साथ क्या एकता करेंगे? लेकिन इस तरह एकता लाने का प्रयास अगर कोई करे तो इन दिनों उसे सांप्रदायिक कहा जाता है। कोई अगर अपनी किसी राजनैतिक संस्था का अभिमान रखे तो उसे हेय नहीं माना जाता। लेकिन पाँच हजार साल की प्राचीन सभ्यता का अभिमान रखा जाए तो उसे हेय माना जाता है! अगर इस प्रकार का अभिमान रखने में दूसरों के अहित की बात आती है, तब तो वह त्याज्य है। लेकिन अगर कोई कहता है कि हम हिंदुओं की भलाई का काम करना चाहते हैं, तो उसमें कौन बुरी बात है?

अपने यहाँ चार वर्ण माने गए हैं और पाँचवा निषाद। इस तरह पाँच वर्णों का समाज बनता है। इसलिए पांचजन्य ईश्वर की

ध्वनि माना गया। हमने आदिवासियों में सेवा का काम शुरू किया था, लेकिन अंग्रेजों के राज में हमें रोका गया। हमारे एक कार्यकर्ता को ईसाई मिशनरियों ने कत्ल कर दिया। मैं उनसे कहता हूँ कि आप सारी दुनिया का खून चूसने वाले हैं, तो आपको ईसा मसीह का नाम लेने का क्या अधिकार है, जिसने सब मानवों के लिए अपना बलिदान चढ़ाया?

आदिवासियों में, वनवासियों में हमने पाया कि उनमें अलगाव की भावना नहीं है। हमारी और उनकी परंपरा एक है, लेकिन अंग्रेजों ने अलगाव पैदा करने की कोशिश की, जो आज भी जारी है। ये लोग कहते हैं कि गोवा और पांडिचेरी की सभ्यता अलग है।

मुसलमानों में कई अच्छे व्यक्ति हैं, जिनमें मेरे मित्र भी हैं। व्यक्ति के नाते वे आपके लिए जान भी कुर्बान करेंगे, लेकिन सामाजिक प्रक्षोभ पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रह पाता। प्रक्षोभ पर असर करने की हिम्मत बहुत थोड़े लोगों में होती है। इस परिस्थिति का हल ढूँढने के लिए हम कहते हैं कि ५,००० वर्ष से जो समाज एक रहा है, उसी की एकता के लिए पहले प्रयास हो। हम न जाति-भेदों को मानते हैं, न छुआछूत के भेदों को। हम चाहते हैं कि हिंदू-समाज एकरस बने। आखिर ये मुसलमान भी कहाँ से आए? उनका और हमारा खून एक ही है। मैंने चेन्नै में मुसलमानों से कहा कि आप प्रामाणिकता से नमाज पढ़ते हो तो बहुत अच्छा लगता है, लेकिन सिर्फ हमसे अलगाव बताने के लिए नमाज पढ़ते होंगे तो आपकी हमारी नहीं बनेगी। आप यहीं के रहनेवाले हैं, तो यहाँ की संस्कृति को क्यों नहीं मानते? हम तो मानते हैं कि पैगंबर श्रेष्ठ पुरुष था, तो आप रामचंद्र को श्रेष्ठ पुरुष क्यों नहीं मानते? मैं आपके साथ प्रार्थना करने के लिए तैयार हूँ तो आप हमारे साथ प्रार्थना क्यों नहीं करते? मेरी इस बात को कुछ लोगों ने स्वीकार किया। लेकिन दूसरों ने कहा कि आप हिंदू तो अपमानित और पददलित हैं, आप मार खानेवाले हैं। ऐसे लोगों के साथ एक होने से हमें क्या लाभ है? यह कहने वालों को हम बताना चाहते हैं कि मार खानेवाले नहीं हैं, हम शक्तिशाली हैं, हम मार भी सकते हैं और रक्षा भी कर सकते हैं। जो दुर्बल

होता है, वही क्षुब्ध होता है। जिसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है, वही शांति रखता है। यह बात व्यक्ति और समाज– दोनों को लागू होती है। हमारी भूमिका विरोध की नहीं है। हम चाहते हैं कि समाज सद्गुणी बने, हर कोई एक-दूसरे के सुख-दुःख को महसूस करे और कार्य-प्रेरित हो। हम शक्तिशाली बनें ताकि कोई हम पर आक्रमण न करे। भारत इसलिए 'भारत' कहलाया कि वह सबका भरणपोषण करता रहा। हम सबसे कहना चाहते हैं कि आपपर कोई कृपा बरसाने के लिए नहीं, बल्कि आप हमारे भाई हैं, इसलिए हम आपका पालन-पोषण करेंगे। लेकिन अभी तक हम उसके योग्य नहीं बने हैं।

विनोबा जी : आपकी बहुत सी बातें मुझे मंजूर हैं। आंतरिक द्वैत मिटाने के लिए सबको प्रयास करना चाहिए, लेकिन सवाल यह है कि 'हिंदू' कहने से जो चित्र उपस्थित होता है और 'मानव' कहने से जो चित्र उपस्थित होता है, इन दोनों में क्या कोई अंतर है? अगर अंतर होता तो इस विज्ञान युग में हमारे लिए बाधक सिद्ध होगा। हम कहा करते थे कि सबसे पहले हम भारतीय हैं और उसके बाद भिन्न-भिन्न जाति वाले हैं। सवाल यह है कि आज हम क्या कहते हैं? हम प्रथम कौन हैं? हम प्रथम मानव हैं और मानवता के नाते जो कर्तव्य होगा, वह हमारा प्रथम कर्तव्य है। उपासना, दर्शन, संप्रदाय आदि के नाते जो कर्तव्य हमें करने हैं, वे उसके बाद आएँगे। उपासना में भी दर्शन-भेद, संप्रदाय-भेद होते हैं। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट एक-दूसरे के चर्च में नहीं जाते। अपने यहाँ भी रामानुज और शंकर संप्रदायवाले भी एक-दूसरे के संप्रदाय के ग्रंथ नहीं पढ़ते। इस तरह दार्शनिक भेदों के कारण और उपासना-भेदों से पैदा होनेवाले अलगाव की छोड़कर मानवता की रक्षा करके उपासना करनी चाहिए।

उपासना, याने 'मानवता माइनस' ऐसा कुछ, नहीं होना चाहिए। उपासना, याने 'मानवता प्लस और कुछ'– ऐसा होना चाहिए। हम देखते हैं कि इन दिनों हिंदू, मुसलमान या ईसाई का नाम लेते ही मानवता से कुछ कम है ऐसा लगता है। लेकिन होना यह चाहिए कि हिंदू, मुसलमान और ईसाई याने मानवता से कुछ अधिक है। उपासना- भेद, दार्शनिक-भेद, रिवाजों के भेद रहेंगे।

रीति-रिवाजों के भेद स्थूल हैं, इसलिए गौण हैं। मुहम्मद पैगंबर कुरान में कहते हैं कि आप किस दिशा की ओर मुँह करते हैं, उसका ईश्वर की उपासना के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। धार्मिकता, याने सच्चाई और ईश्वर भक्ति। इस वचन के बावजूद उन लोगों का दिशा के लिए आग्रह है ही। लेकिन रीति-रिवाजों के यह सारे भेद समाप्त होने चाहिए। उपासना-भेद, दार्शनिक भेद और वैचारिक चिंतन के सब विषय आदि को इकट्ठा कर एक परिपूर्ण दर्शन बनाया जा सकता है। मानवता न रही तो कोई भी धर्म नहीं टिकेगा। इसलिए मानवता में विश्वास करने वाले सब धर्मवालों को एकत्रित आना चाहिए। यह मानकर कि सब एक हैं, परस्पर चर्चा आदि करनी चाहिए।

श्री गुरुजी : केवल धर्म का सवाल होता तो अलग बात हो सकती थी। लेकिन व्यवहार में कई समस्याएँ खड़ी होती हैं। एक भाई ने मुझसे पूछा कि क्या नीग्रो भी मानव हैं? तो मैंने कहा जी हाँ, वे भी मानव हैं। आप मैं और हममें जो चैतन्य है, वही उसमें भी है। यह सब मंजूर करते हुए उस सामान्य व्यक्ति के पास यह क्षमता नहीं रहती कि वह उसे व्यवहार में ला सके। हिंदूधर्म व्यावर्तक (एकसक्लूसिव) नहीं हो सकता। हम तो मानते हैं कि 'पृथिव्याम् सर्वमानवाः' हिंदुअें के स्वभाव में ही एकसक्लूसिवनेस नहीं है।

विनोबा जी : मुसलमान भी यही कहते हैं कि इस्लाम धर्म किसी एक देश का नहीं है। मुसलमान मानते हैं कि सारी दुनिया हमारी है।

श्री गुरुजी : लेकिन उनका तो एक पैगंबर है, एक ग्रंथ है।

विनोबा जी : कुरान पढ़ने पर पता चलता है कि ऐसी बात नहीं है।

श्री गुरुजी : कुरान की बात अलग है और अनुभव अलग है।

विनोबा जी : अनुभव हिंदुओं के बारे में भी क्या है? हम इधर अद्वैत मानते हैं और उधर व्यवहार में जातिभेद, छुआछूत के भेद मानते हैं। कुरान में कहा है– 'हम एक ही पैगंबर नहीं मानते हैं। एक ही किताब नहीं मानते हैं, सब किताबों को मानते हैं'। इसलिए मूल इस्लाम में और हमारे धर्म में केवल इतना अंतर है कि हमारा उच्चतम विचार निगुर्ण निराकार का है और उनका सगुण निराकार का है। हम उसके साथ और भी भूमिकाओं को मानते हैं। वे

सगुण साकार की कल्पना नहीं करते, सगुण निराकार की कल्पना करते हैं। उनका ऐसा दावा है कि हम जाति-भेदों को नहीं मानते। हम लोकतंत्र को मानते हैं, हम राष्ट्र जैसी चीज को नहीं मानते। सब जमातों को हम समान अधिकार देते हैं। यह तत्त्वज्ञान की बात हुई। आचरण की बात अलग है।

श्री गुरुजी : सारी समस्याएँ वहीं पर उपस्थित होती हैं।

विनोबा जी : ईसाई धर्म अहिंसा को मानता है। लेकिन दुनिया में अधिक से अधिक हिंसा ईसाइयों के द्वारा हुई है। आचरण का यह भेद सबमें दिखाई देता है। इसलिए आप और हम जैसों को यह संकल्प करना चाहिए कि हम मानवता का ही काम करेंगे। उसके अलावा कुछ काम करना हो तो वह मानवता से अधिक होना चाहिए। मानवता से कम नहीं चलेगा। हम इस तरह का काम करेंगे तो सबको जोड़ सकेंगे। शंकराचार्य ने इसी तरह जोड़ने का काम किया। वे अद्वैत माननेवाले थे, लेकिन उन्होंने देखा कि उस समय समाज में पाँच पंथ थे, इसलिए सबको एकत्रित करने के लिए उन्होंने पंचायतन पूजा सिखाई। मानवता रहे, तभी सब काम हो सकते हैं। समाज में चोरी, खून, ठगी आदि चल रहा हो, तो कोई भी उपासना नहीं चल सकती। इसलिए प्रधान वस्तु है– मानवता।

श्री गुरुजी : लेकिन लोगों को यह बात जँचती नहीं।

विनोबा जी : अगर लोगों को वह जँची होती तो गोलवलकर के लिए और विनोबा के लिए कोई काम नहीं रहता। इसलिए लोगों को विचार समझाना यह आपका और हमारा काम है।

आपने कहा कि हम केवल सहिष्णु नहीं हैं, हम सत्कारवादी हैं। गाँधी जी भी वही कहते थे। उन्होंने कहा कि सहिष्णुता शब्द में कुछ दोष है। उसमें दूसरे के लिए न्यूनता का भाव आता है। इसलिए यह शब्द छोड़ना है।

आज भारत में यह माना जाता है कि गोलवलकर याने केवल हिंदुओं के हैं, लेकिन होना यह चाहिए कि गोलवलकर सबके हैं।

एक दफा आर.एस.एस. वालों के हनुमान जयंती के समारोह में मैं शरीक हुआ तो कांग्रेस वाले नाराज हुए। मैंने उनसे

कहा कि आप भी ऐसे उत्सव क्यों नहीं करते? क्या वह उनके बाप की इस्टेट है? आप सेक्युलर हैं तो हनुमान जयंती के साथ पैगंबर और ईसा की जयंती भी मनाइये। लेकिन आपने सब छोड़ा है। वह भी ठीक है, क्योंकि आप दूसरा काम करते हैं। लेकिन मैं तो उस जगह जाता हूँ, जहाँ अच्छा काम होता है। वहाँ पर जो अच्छा अंश हो, उसको मैं ग्रहण करता हूँ।

श्री गुरुजी : कांग्रेस के एक नेता मुझे एक विवाह समारोह में मिले। दूसरे दिन उनके बारे में अखबार में किसी ने शिकायत की कि उन पर डिसिप्लिनरी एक्शन क्यों न लिया जाए। यह तो राजनीतिक अस्पृश्यता जैसी बात है। यह क्यों रहे?

विनोबा जी : आपके संगठन का नाम 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' है। 'हिंदू स्वयंसेवक संघ' नहीं है। इसलिए आप व्यापक बनिए और यह कोशिश कीजिए कि सब हमारे पास आए।

श्री गुरुजी : वह तो हमारा सिद्धांत है ही। इसलिए हरेक से कहते हैं कि आप जो भी उपासना कर रहे हैं, उसको जारी रखिए। हिंदू का मतलब है, इस देश का पुत्र। उपासना-पंथों की समस्या उपस्थित करना हम नहीं चाहते। हम सब एक हैं– यह मान्य करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन व्यवहार में कठिनाई उपस्थित होती है। समस्या यही है कि व्यवहार को कैसे शुद्ध बनाया जाए।

एक सज्जन : हमारे संगठन के लिए व्यापकता दिखानेवाला कोई अच्छा सा नाम सुझाइये।

विनोबा जी : मैं मानता हूँ कि आपके संगठन का जो नाम है 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' वही राष्ट्रीय दृष्टि से पर्याप्त है। उसमें किसी के बहिष्कार की बात नहीं आती है। लेकिन अब हमें अपने राष्ट्र की व्यापकता बढ़ानी होगी और सारे विश्व के साथ संपर्क स्थापित करना होगा। वेदों में कहीं भी 'भारत' शब्द नहीं आता, उसमें तो पृथ्वी का ही जिक्र आता है। नाना धर्मवासी इस पृथ्वी पर रहते हैं, ऐसा वेदों में कहा है। भारतीय दूसरों से अलग हैं, ऐसी बात नहीं आती। सारी पृथ्वी हमारी है और हम पृथ्वी के हैं, ऐसी हमारी दृष्टि हो।

श्री गुरुजी : उच्च तत्त्वज्ञान कभी भी इससे भिन्न बात नहीं कहता। हम

मानते हैं कि सारी पृथ्वी एक है। एक ईसाई सज्जन ने शृंगेरी मठ के शंकराचार्य से कहा कि मुझे संतोष नहीं हो रहा, इसलिए मुझे हिंदू बनाइये। तब शंकराचार्य ने उससे कहा कि तुमने ईसाई धर्म की उपासना प्रामाणिकता से नहीं की है, इसलिए तुम्हें संतोष प्राप्त नहीं हो रहा। तुम प्रामाणिकता से वहीं उपासना करो, यदि उसके बाद भी संतोष नहीं हुआ, तब फिर प्रकृति भेद के कारण तुम्हारे लिए जो उचित होगा, वह करो। इस तरह जो लोग ऊँची भूमिका पर हैं, वे यही कहेंगे और यह उचित भी है। अगर वे वैसा नहीं करेंगे तो मानव-वंश ही नष्ट हो जाएगा। इसलिए मेरा मानना है कि उनको वही भूमिका लेनी चाहिए। वेद पृथ्वी की बातें करते हैं, यह ठीक है, लेकिन व्यवहार भिन्न होता है। आज पड़ोसी भी एक-दूसरे को नहीं पहचानते। सिलोन में सिंहली और तमिलवालों के बीच झगड़ा चल रहा है, जिसके लिए कोई बुनियाद नहीं है। दक्षिण भारत और सिलोन का संपर्क प्राचीनकाल से बना है, लेकिन अंग्रेजों ने झगड़े पैदा किए हैं। ब्रह्मदेश में भी यही हुआ। हमने वहाँ पर काम किया है। वहाँ के एक जज से मैंने कहा था कि आप और हम कभी अलग नहीं थे। हमारा धर्म एक है, परंपरा एक है, खून भी एक है, इसलिए हमें एक होकर काम करना चाहिए। उन्हें यह बात पसंद आई। लेकिन राजनीति के कारण अब वातावरण बदल गया है। इन दिनों मानव कलि से प्रभावित है। कलि कलह पैदा करता है।

विनोबा जी : इस विज्ञान-युग में राजनीति टिकनेवाली नहीं है। विज्ञान-युग एकता की माँग कर रहा है। राजनीति वालों को झगड़े मिटाने का एक ही तरीका मालूम है, दो हिस्से करना। उन्होंने बंगाल और पंजाब के दो टुकड़े किए। कोरिया, वियतनाम, जर्मनी और बर्लिन शहर के भी दो टुकड़े किए। उधर विज्ञान कहता है कि तुम एक हो जाओ, नहीं तो मरो। इस युग में देश भी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते। हमारे राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् कहते हैं कि हर राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता का एक अंश विश्वराज्य के लिए समर्पित करना होगा।

श्री गुरुजी : यह बात सिर्फ हमारे ही राष्ट्रपति कह रहे हैं और कोई वैसा कहाँ बोल रहा है।

विनोबा जी : लेकिन उसके बिना विश्वशांति नहीं होगी। क्यूबा के मसले के समय ख्रुश्चेव अगर अहंकार रखता तो आधी दुनिया का संहार हो जाता, लेकिन भगवान ने उसे सद्‌बुद्धि दी। अब चीन उसे कहता है कि तुम नालायक हो, लड़ाई से डरते हो। तो ख्रुश्चेव जवाब देता है कि हर सज्जन को लड़ाई से डरना चाहिए। मेरा बेटा लड़ाई में मारा गया इसलिए मैं जानता हूँ कि लड़ाई क्या चीज है। ख्रुश्चेव यह इसलिए बोल रहा है कि उसने जान लिया है कि शस्त्र शक्ति मूढ़ शक्ति है। वह किसी एक के ही पास नहीं रहती। हमें समझना चाहिए कि अब जमाना बदल रहा है, विश्वशांति होने वाली है।

श्री गुरुजी : विश्वशांति होगी। लेकिन सवाल यही है कि क्या उससे पहले कोई संघर्ष होगा।

विनोबा जी : बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि अणु-अस्त्र खत्म होने चाहिए, पर परंपरागत शस्त्र पहले समाप्त हों, क्योंकि अणु-अस्त्र अहिंसा के नजदीक हैं। वे मानव से कहते हैं कि तुम एक हो जाओ, नहीं तो संहार होगा। इसलिए मुझे अणु-अस्त्र का डर नहीं है। अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति आइजनहोवर ने वैज्ञानिकों को आदेश दिया था कि ऐसा क्लीन बम बनाया जाए जिससे लोग मरेंगे, लेकिन दुनिया की हवा नहीं बिगड़ेगी। इस पर मैंने उन्हे संदेश भेजा कि तुम ऐसा बम बनाओ कि जिससे लोग मरेंगे, लेकिन कोई जख्मी नहीं होगा। अगर तुम ऐसा बम बनाओगे तो मैं उसे भगवत अवतार समझूँगा। लेकिन क्या तुम ऐसा बम बना सकते हो? ईश्वर चाहेगा तो संहार होगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि ईश्वर नहीं चाहता है कि संहार हो। अगर वह चाहता तो विनोबा की हिम्मत नहीं होती कि यह यहाँ अहिंसा की बात कहे। लेकिन विनोबा अहिंसा की बात कह रहा है तो यह साबित होता है कि ईश्वर संहार को नहीं चाहता।

श्री गुरुजी : इन दिनों मानव को जगह-जगह सद्‌बुद्धि हो रही है। मैंने पढ़ा कि अमरीका में एक टेंपल आफ अंडरस्टैंडिग है। सब पंथों में सामंजस्य पैदा करना उस का उद्देश्य है। युद्ध नहीं चाहिए तो ऐसे सब काम करने होंगे। यह तो हो रहा है। लेकिन बीच में कहीं चिंगारी पड़ी तो संहार होगा। संभव है कि उसके बाद बनी हुई दुनिया का ठीक से आयोजन होगा।

विनोबा जी : आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।

एक सज्जन : क्या सेवाग्राम के बाद आपकी यात्रा स्थगित होगी।

विनोबा जी : भगवान मेरे पैर तोड़ेगा, तब यात्रा स्थगित होगी।

श्री गुरुजी : चरैवेति, चरैवेति, यह औपनिषदिक धर्म ही है।

विनोबा जी : कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः,
उतिष्ठन् त्रेता भवति, कृतम् संपद्यते चरन्,
चरैवेति चरैवेति।। (ऐतरेय ब्राह्मण ७-१५-४)

३. ज्ञानाश्रम के साधु

(वडक्कांचेरी ज्ञानाश्रम, पार्लिकाड के स्वामी पुरुषोत्तमानंदजी, श्री आत्मानंदजी और श्री दयानंदजी के साथ २१ जनवरी १९५७ को त्रिचूर में हुआ वार्तालाप)

स्वामी पुरुषोत्तमानंदजीः केरल, तमिलनाडु आदि दक्षिणी प्रदेशों में, गोवध बंदी के अनुकूल जनभावना उभरकर अभिव्यक्त नहीं हो सकी। गोहत्या बंद करने में हम भी प्रयास करना चाहते हैं। किस प्रकार हमें काम करना चाहिए?

श्री गुरुजी : केवल दक्षिणी प्रदेशों में ही नहीं, अन्य कुछ प्रदेशों में भी यही हाल है। किसी क्षेत्र में मुसलमान और ईसाइयों का इस आंदोलन को समर्थन नहीं है। कहीं कुछ हिंदु भी हमारे साथ नहीं हैं। कुछ प्रदेशों में लोग परंपरा से गोमांस खाते हैं। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए, यह मैं भी सोच रहा हूँ। ऐसी समस्या असम में उपस्थित हुई है। मुझसे कहा गया कि कुछ वनवासी जातियाँ गोमांस-भक्षण की अभ्यस्त हैं। बातचीत करने पर मुझे लगा कि यह दोष उनका नहीं है। उन्हें सुसंस्कारित करने का काम सदियों से हमने नहीं किया है। उनको हिंदू कहा जाना चाहिए या नहीं, इसके बारे में कुछ लोग साशंक हैं। मैंने कहा कि वे गोमांस खाते हैं, और कुछ समय खाने दो। परंतु वे हिंदू ही हैं। हमारी सांस्कृतिक शिक्षा ग्रहण करने पर वे स्वयं ही गोमांस-भक्षण छोड़ देंगे। इसी दिशा में हम उनको सुशिक्षित, सुसंस्कारित करें।

स्वामीजी : उन्हें योग्य दिशा में शिक्षा-संस्कार देने का प्रयास हम करें, ऐसा आप चाहते हैं।

श्री गुरुजी : हाँ, ऐसा ही। पूर्वकाल में इसका प्रबंध था। असम में अनेक गोस्वामी इसी हेतु नियुक्त किए गए थे। वनवासी लोगों के नित्य संपर्क में रहकर उनको सुशिक्षित-सुसंस्कारित करने का और उनके जीवन का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठाने का कार्य गोस्वामियों से अपेक्षित था। जिस काम के लिए वे नियुक्त थे, वह काम अब वे करते नहीं हैं। असम के ये लोग शंकरदेव संप्रदाय के हैं। शंकरदेव चैतन्यप्रभु के शिष्य थे, यह तो आप भली-भाँति जानते हैं। असम में प्रवास करते समय मुझे अनेक गोस्वामी मिले। उनसे अपेक्षित काम वे आजकल करते नहीं हैं। उनको दान में मिली उपजाऊ जमीन के कृषि-उत्पादन के उपभोग में आनंद मना रहे हैं। कहते हैं कि इन वनवासी असंस्कृत लोगों के साथ हम कैसे मिल-जुल सकते हैं?

हमसे विचार-विमर्श हो जाने पर वे गोस्वामीजी हमसे सहमत हुए। कार्य की दिशा में पहले कदम के नाते सहभोजन के लिए उनका एकत्रीकरण हमने स्वीकार किया। वनवासी जनजातियों के नेताओं का एक सम्मेलन हुआ। इस प्रकार का कार्यक्रम वे स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे। एकत्रित आने पर भी सब साथ मिलकर बातचीत करने में वे संकोच कर रहे थे। आपस में ही एकत्रित होकर वे वार्तालाप कर रहे थे। मैंने उनको कहा कि हम सब एक ही भारत माता के पुत्र के नाते भाई हैं। बातचीत करते-करते मेरे दायीं और बायीं ओर एक-एक इस प्रकार दो प्रमुखों के साथ मैं भोजन के लिए बैठ गया। वे आश्चर्यचकित हुए। ऐसे सहभोजन की कल्पना करना भी उनके लिए असंभव था।

कार्य की यह दिशा है। उनसे दूरी पर रहकर वे असंस्कृत हैं, अज्ञानी हैं— कहना उचित न होगा। उनसे निकटवर्ती संबंध हमें प्रस्थापित करने चाहिए।

स्वामीजी : और उनको अपने सत्संस्कारों से प्रभावित भी करना चाहिए।

श्री गुरुजी : हाँ, यही आपसे अपेक्षा है, परंतु उनके बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर उतरकर उनको प्रभावित करना होगा। एक उच्चस्तरीय

उपदेशक के नाते नहीं, तो भाई के नाते उनके समकक्ष साथी बनकर। हमारे सुहृद, हमारे बराबरी के, इस नाते हमारी आत्मीयता एवं स्नेह की उनको अनुभूति होनी चाहिए। हम यही तो चाहते हैं न कि हमारे विचार वे आस्थापूर्वक सुनें और तदनुसार आचरण करें। उनमें हमारे प्रति अनुकूलता निर्माण हो जाने पर हम कुछ ठोस कार्य खड़ा कर सकेंगे और क्रमशः हमारा संपर्क बढ़ेगा।

आप तो जानते ही हैं कि वे आजकल शासकीय अधिकारियों से मिलना नही चाहते हैं। एक नागा जनजाति के लोग अपने माथे पर सींग जैसे दिखनेवाली अपने केशों की गुत्थी बाँधते हैं। इस वेशभूषा को वे सुंदर मानते हैं, प्रतिष्ठा का लक्षण मानते हैं। उनके साथ संपर्क बढ़ाते समय उनकी इस भावना का हम आदर क्यों न करें। इन नागा जनजातियों की शासकीय व्यवस्था के नियंत्रण हेतु एक शासकीय अधिकारी असम में आया। वनवासी बंधुओं के नेता उनसे मिलने आए। इस अधिकारी की समझबूझ बहुत सीमित थी। उन्होंने एक नेता के पास जाकर उसके माथे पर की सींग जैसी सुशोभित केश-गुत्थी पकड़कर हिलाई और कहा कि इसे फौरन काट डालो। आपको प्राचीन युग के नहीं, अपितु आधुनिक बनना चाहिए। उन नागा नेताओं को आश्चर्य हुआ। पश्चात् उन्होंने इस शासकीय अधिकारी के साथ सहयोग से काम करने की इच्छा तक नहीं की। वनवासी बंधुओं की भाव-भावनाओं का हमको यथोचित सम्मान करना ही चाहिए। अपने व्यवहार से वे हमारे बराबरी के हैं, यह अनुभूति उनको होनी चाहिए।

स्वामीजी : गोवध-बंदी विरोधी प्रचार बहुत अधिक मात्रा में इन क्षेत्रों में चल रहा है। हम अपने नियतकालिकों में लिखते तो हैं, परंतु अभी गोवध-बंदी प्रचार बहुत अधिक करने को बाकी है।

श्री गुरुजी : गोवध-बंदी के सभी पहलू लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने चाहिए। आर्थिक, भावनात्मक आदि इस प्रश्न के अनेक पहलू हैं। इस प्रश्न की ओर मैं और एक विशेष दृष्टिकोण से देखता हूँ। विदेशी सत्ता प्रस्थापित हो जाने के पश्चात् ही भारत में गोवध प्रारंभ हुआ है। इसलिए हमारे लिए वह कलंक है। मुसलमानों ने वह प्रारंभ किया और अंग्रेजों ने उसे चलने दिया। अब हमें आजादी मिली है। उसके साथ ही विदेशी सत्ता के कारण लगे

सभी कलंक मिटा डालना हमारा कर्तव्य हो जाता है, अन्यथा हम मानसिक दासता के शिकार बने रहेंगे। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गोवध बंद करना तो दूर रहा, वह कई गुना बढ़ गया है। पूर्वकाल में होनेवाले गोवध की तुलना में सन् १९४४-५५ में वह ५०-१०० गुना बढ़ गया। विदेशी सेना भारत में रहने से ऐसा हुआ। आजाद होने पर यह कम तो नहीं हुआ, बल्कि विदेशी सेना हट जाने पर भी सन् १९४५ की तुलना में वह २० गुना अधिक हुआ है।

हम स्मरण रखें कि अंग्रेजों ने गोमांस और सुअर-मांस को सेना में निषिद्ध किया था। सन् १८५७ का स्वातंत्र्य-युद्ध भड़क उठने का कारण भी हम याद करें। अब सेना में सुअर-मांस का नहीं परंतु गोमांस का उपयोग किया जाता है। उत्तरप्रदेश जैसे कुछ प्रदेशों में गोवध कानून से बंद है। तदर्थ संशोधन सुझाव पारित करने को केंद्रीय सरकार ने सूचित भी किया है। इससे गैर उपयुक्त पशु सेना के लिए काटना संभव होगा। परंतु इस कानून की प्रक्रिया में अच्छे जानवर भी कटते जा रहे हैं और गोहत्या बंदी कानून निरर्थक सिद्ध हो रहा है। जिन कारणों से हम केंद्रीय शासन से संपूर्ण देश में कानून से गोवध बंद करना चाहते हैं, उनमें यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। दूसरा कारण है कि मैसूर जैसे प्रदेशों में गोवध कानून से बंद रहने के कारण प्रदेश की सीमा से लगकर सभी जगह मुक्त रूप से पशु कटते हैं और चोरी-चोरी गोमांस प्रदेश के भीतर बेचा जाता है। इन्हीं कारणों से हम भारत में सर्वत्र गोवधबंदी कानून चाहते हैं।

विदेशी मुद्रा-प्राप्ति का विषय लेकर कुछ नेताओं ने कहा कि गोमांस निर्यात न करने से हम अधिक मात्रा में विदेशी मुद्रा खो बैठेंगे। इस विचार में विदेशी सत्ता का दबाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

अमरीकी हमसे खालें और सस्ता गोमांस चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि अमरीकी गौएँ अधिक संख्या में न कटें और दूध पाउडर के लिए हम हमेशा के लिए उनपर निर्भर रहें। अमरीका हमारी सरकार पर दबाव डाल रहा है। यदि भारत में गोवध बंद किया गया तो अमरीका से सहयोग बंद होगा। ऐसा

उन्होंने कहा है। विदेशी मुद्रा प्राप्ति के लिए क्या हम अपने मानबिंदु एवं आदर्शों के बारे में समझौता कर सकते हैं?

आत्मानंदजी : यदि विदेशी मुद्रा प्राप्ति के लिए आज हमारी गौएँ कटती जा रही हैं तो क्या वे इसी प्रकार हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के साथ खिलवाड़ नहीं करेंगे?

श्री गुरुजी : हाँ, यही समस्या निर्माण होगी, ऐसा लगता है।

आत्मानंदजी : श्री आप्टे जी जब इधर आए थे तो हमने कहा था कि सामाजिक जीवन में चैतन्य भरने के लिए मंदिरों का उपयोग करना उचित होगा। एक समय था, जब अपना हिंदू समाज संगठित था और मंदिर उसके श्रद्धा-केंद्र थे, परंतु वह संगठन अब ढीला हो गया है। केरल प्रदेश में संभवतः मंदिरों की तुलना में गिरिजाघरों की संख्या अधिक है।

पुरुषोत्तमानंदजी : ईसाइयों को उनके उत्सव त्योहारों पर गिरिजाघर में जाना पड़ता है। सच्चे ईसाई बनने के लिए उन्हें हर रोज प्रार्थना करने गिरिजाघर जाना आवश्यक माना गया है। विवाह, मृत्यु जैसे प्रसंगों पर भी गिरिजाघर से उनका संबंध रहता ही है। उनकी सब सामाजिक गतिविधियों का केंद्र गिरिजाघर बना हुआ है। वैसे ही हमारे समाज-जीवन में मंदिर केंद्र क्यों न बनें? मंदिरों में कुछ समाजोपयोगी कार्यक्रमों का प्रारंभ किया जा सकता है।

श्री गुरुजी : हाँ, यह ठीक होगा। ऐसी ही गतिविधियाँ प्रारंभ करनी चाहिए। असम में यही समस्या निर्माण हो रही है। आप तो जानते ही हैं कि असम के जंगलों में भी बडे मंदिर थे। वहाँ के अपने लोग इन मंदिरों को भूल गए थे, परंतु उस क्षेत्र में जब अपनी सेना के शिविर लगे थे, तब उन्होंने इनमें से कुछ मंदिरों को खोज निकाला। मंदिर तो भग्नावस्था में थे, परंतु मूर्तियाँ अभंग थीं। कुछ मूर्तियाँ अतीव सुंदर हैं। इन मूर्तियों के सम्मुख सेना के अपने जवानों ने कच्चे शेड बनाकर वहाँ भजन प्रारंभ किया। पश्चात् कुछ रुपया पैसा भी एकत्रित हुआ है और मंदिरों के पुननिर्माण की बात चल रही है। श्रद्धा के कारण इन मंदिरों के प्रति अपने वनवासी बंधुओं की आस्था बढ़ रही है। मंदिरों के पास ही वैद्यकीय चिकित्सा-केंद्र, प्राथमिक शिक्षा-संस्कार केंद्र प्रारंभ करने

का विचार निश्चित हुआ है। ऐसे समाज सेवा के केंद्र तो वहाँ अवश्य ही बन सकते हैं। वहाँ आगे चलकर क्या हो सका, आज मुझे ज्ञात नहीं है। दो-तीन महीनों के बाद ही जब क्षेत्र में मेरा प्रवास होगा, तब पता करूँगा।

ट ट ट

४. तंत्र-शास्त्रोक्त पूजा-विधि पर चर्चा

(अंबालपुला में स्थित सुप्रसिद्ध श्रीकृष्ण मंदिर के प्रधान पुजारी और तांत्रिक श्री पूतमना दामोदरन नंबूदिरी से केरल के मंदिरों में शुद्ध तांत्रिक पद्धति की पूजा पद्धति फिर से प्रारंभ करने के लिए क्या उपाय-योजना की जाए इस विषय पर ३१ जनवरी १९६९ को आलप्पी में हुआ वार्तालाप)

श्री गुरुजी ने उनका हार्दिक अभिनंदन करते हुए कहा कि भारत के अन्य स्थानों पर पूजा-अर्चा करनेवाले विचार-विनिमय करने एकत्रित आए थे। इस उदात्त एवं पवित्र कार्य हेतु उनकी संस्थाएँ भी निर्माण हुई थीं, परंतु इन संस्थाओं की कार्यवाही में क्रमशः अवनति आई और आजकल पुजारी मंदिरों को दान में मिले रुपयों-पैसों का मात्र लेन-देन करनेवाले रह गए हैं। मुझे संतोष है कि केरल में यद्यपि प्रारंभ में ये अर्चक केवल दान के धन की व्यवस्था में रुचि लेते थे, अब क्रमशः उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होकर पावित्र्यपूर्ण विशुद्ध पूजा-तंत्र के बारे में सोच रहे हैं।

शास्त्रोक्त तंत्र से पूजन बहुत आवश्यक है। देवताओं की अर्चना हेतु अनेक विधियाँ क्यों अपनाई जाती हैं, इसका अनेक पूजकों को ज्ञान नहीं है। उनमें से कौन-सी विधि विशिष्ट देव-देवता के लिए विशेष रूप से आवश्यक है, संभवतः वे यह भी जानते नहीं। मुखोद्गत मंत्रों की वे मात्र रट लगाते हैं और ईश्वरतत्त्व में अपने मन को एकाग्र करने की अपेक्षा उनका ध्यान अधिक धनप्राप्ति पर, दूसरों की उपेक्षा कर भी अधिक धनराशि मिलने में ही लगा रहता है।

अनेक पुजारी तो सही मंत्र भी जानते नहीं हैं। जैसे शिव-पूजा में रुद्रसूक्त और देवी-अर्चना अभिषेक में श्री-सूक्त का पाठ होता है। इसलिए

वे कंठस्थ चाहिए। पूजा वैदिक, पौराणिक और तांत्रिक ऐसी तीन प्रकारों से की जाती है।

श्री गुरुजी ने पूछा– 'केरल में किन देव-देवताओं की पूजा-अर्चना प्रचलित है?'

श्री नंबूदिरी : विष्णु, शिव, गणपति, दुर्गा, काली आदि सबकी पूजा प्रचलित नहीं है।

श्री माधवन् (तंत्रसाधक व संघ-प्रचारक) : केरल में सामान्यतः भद्रकाली की पूजा होती है। दक्षिणकालिका की पूजा प्रचलित नहीं है।

श्री गुरुजी : हाँ, यह ठीक है। भद्रकाली का पूजन करने के अनेक प्रकार हैं। दक्षिणकालिका की पूजा बहुत क्लिष्ट है। उस पूजन के तात्त्विक अधिष्ठान का स्तर अति उच्च है। इसलिए वह पूजा सबको करना संभव नहीं है।

श्री नंबूदिरी : यहाँ अर्चना करनेवाले मंत्रों के अर्थ और आवश्यक पूजा विधान से अनभिज्ञ हैं। उनको अत्यावश्यक पूजा-विधि के बारे में शिक्षित करने का आयोजन हम कर रहे हैं। थोड़े प्रयत्नों से सफलता मिलेगी, ऐसा लगता है।

श्री गुरुजी : जैसी तंत्रोक्त पूजन से, वैसे ही हिंदू-जीवन के अन्यान्य संस्कार भी यथोचित मंत्रोच्चारण से संपन्न करने के लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। एक विवाह समारोह में मैं उपस्थित था। पुरोहित के मंत्र आदि सुन रहा था। विवाह की वैदिक विधि चल रही थी। एक विशेष अवसर पर वधू को 'स्त्री-धन' दिया जाता है। उस समय 'दक्षिणा संस्पृशेत्' यह मंत्र पुरोहित कहता है और उस स्त्री-धन को स्पर्श करने को वर से कहता है। पुरोहित ने मंत्रोच्चार भी नहीं किया और स्पर्श करने को वर से भी नहीं कहा। संभवतः उसे मंत्र का अर्थ भी ज्ञात नहीं था। उनसे पूछने पर उन्होंने मुझसे कहा 'महाराज जी, यही मेरी रोजी-रोटी का एकमात्र काम है। आपसे अनुरोध है कि कृपया कुछ न कहें। मेरे लिए कठिनाई निर्माण होगी, जिसे पार करना मुझे असंभव होगा।' उनकी बात मैं समझ गया। ऐसी आज की विकट स्थिति है। इसे कैसे ठीक करें, यह सोचना भी कठिन है।

एक और पुजारी का मुझे स्मरण है। वे मंत्र और

पूजा-विधि के जानकार थे। एक मंदिर में उनकी नियुक्ति हो गई। जिनको असामायिक निवृत्त कर इनकी नियुक्ति हुई थी, वे दुष्ट गतिविधियों में लिप्त थे। नए नियुक्त पुजारी का स्वास्थ्य नरम था। भूख का अल्प कष्ट भी सहना उनको असंभव था। इसलिए थोड़ा अल्पाहार-सेवन करके वे पूजा करने जाते थे। कुछ खाने के पश्चात् पूजन एक दोष माना जाता है। पुराने निकाले गए पुजारी ऐसे कुछ दोष, जिसके कारण नए पुजारी को निकाल दिया जा सके, की खोज में थे ही। नया पूजक गलत ढंग से पूजा किया करता है, ऐसी उन्होंने मंदिर के संचालकों के पास शिकायत की। नए पुजारी से स्पष्टीकरण पूछा गया और उन्होंने भी निश्छल भाव से कहा कि मुझे पेट की बीमारी के कारण भूखे पेट कुछ करना संभव नहीं है। भूख की भावना होने पर मेरा मन उसके बारे में सोचता रहता है और तब तन्मयता से ईश्वरपूजा संभव नहीं हो पाती। इसी प्रकार एकचित्त होकर वे भगवान की पूजा कर सकते हैं, इसलिए थोड़ा खाकर पूजन करने में यत्किंचित भी गलती नहीं है। यदि संचालकों को यह तर्क स्वीकार न हो, तो उन्हें पूजाकार्य से छुट्टी दी जाए। यह स्पष्टीकरण सुनकर संचालक दुविधा में पड़ गए। समस्या हल करने हेतु उन्होंने एक ख्यातिप्राप्त साधु से विचार-विमर्श किया। साधु महाराज ने कहा कि 'उस नए पुजारी को मत हटाओ। पूजा करने का वह योग्य अधिकारी है। वह पूजा-विधि पूर्ण जानता है। अपने शरीर द्वारा जैसा भी पूर्ण एकाग्रता से पूजा करना संभव हो सकता है, वह कर रहा है।' साधु महाराज की सलाह मानकर उस पुजारी की नियुक्ति कायम रखी गई। ईश्वरपूजन हृदयपूर्वक असीम श्रद्धा से और पूर्ण एकाग्र मन से ही करना आवश्यक है। पूजा-विधि की आचार-संहिता गौण है।

श्री नंबूदिरी : यहाँ के अधिकांश पुजारी तन्मयता से पूजा करना तो छोड़ो, पूजा की सही विधि भी नहीं जानते हैं। काम तो बहुत कठिन है। यह समस्या कैसे सुलझाई जाए? यहाँ और एक प्रश्न उपस्थित हुआ है। क्या ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जाति के लोगों को भी तंत्रोक्त पूजा की शिक्षा दी जाए? क्या उनको भी प्रशिक्षित कर पूजक नियुक्त करना उचित होगा?

श्री गुरुजी : अपने समाज की पूरी संरचना विश्रृंखल, अस्तव्यस्त सी हो गई है। वर्णों की शुद्धता नष्ट हो चुकी है। कुछ यज्ञों में चारों वर्णों का पूर्ण सहयोग आवश्यक रहता था। प्रत्येक के लिए पूर्वनियोजित कर्तव्य निश्चित किया हुआ था। शूद्रोंसहित सभी वर्ण के लोग यज्ञ में उपस्थित रहकर वेदमंत्रों को सुनते थे। वेदमंत्रोच्चार सुनने पर कोई निर्बंध नहीं था। इसलिए शूद्रों को वेदमंत्र सुनना निषिद्ध था, ऐसा कोई भी अधिकारवाणी से कह नहीं सकता। श्रद्धेय आचार्यों से मैंने यही प्रश्न पूछा था और उत्तर देना उनको संभव नहीं हुआ था। हमारे लिए आवश्यक है कि हम शास्त्रों द्वारा किया गया मार्गदर्शन और उसका निष्कर्ष सही अर्थ में समझें। वर्ण और आश्रमों की व्यवस्था समाप्त-सी हो गई है। ऐसा कहा गया है कि कलियुग में केवल एक शूद्र वर्ण ही रहेगा। आज हम देख सकते हैं कि संसार के सभी देशों में शासनकर्ता शूद्र ही हैं। शास्त्रों के अनुसार इस युग के वे स्वामी हैं। प्रत्येक युग में एक वर्ण की प्रभुता रहेगी। प्रथम युग में ब्राह्मणों का वर्चस्व रहेगा और शेष तीन युगों में अन्य वर्णों का। मुझे लगता है कि किसी भी युग में संसार में सद्गुणसंपन्न लोगों, वे चाहे जिस वर्ण के हों, का प्रभुत्व रहेगा।

मेरा स्वयं का विचार है कि जिनको आज निम्न श्रेणी का माना जाता है, उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर उनमें सही अर्थ में ब्राह्मणत्व के सद्गुण निर्माण करने का प्रयास करना चाहिए। उनका उपनयन करना चाहिए। इस प्रकार विचार करने में कोई गलती नहीं है। आवश्यकता के अनुसार उनको समाज-जीवन के श्रेष्ठतम स्तर में प्रतिष्ठित करना चाहिए। यदि उन्हें अपने गोत्र का पता न हो या विस्मरण हुआ हो तो यज्ञोपवीत-दीक्षा देनेवाले पुरोहित का गोत्र अपनाएँ। ऐसा पूर्वकाल में हुआ करता था और वह शास्त्रसम्मत भी है। पौरोहित्य करनेवाले का गोत्र ही स्वयं अपना और अपने परिवार का है, ऐसा घोषित करना शास्त्र के अनुसार योग्य ही है। इस व्यवस्था में भी किसी को गोत्र प्रदान करना संभव न हो, तो वे कश्यप गोत्रीय माने जाएँ, क्योंकि ऐसा कहा गया है कि मानव-सृष्टि कश्यप मुनि से हुई है।

श्री नंबूदिरी : तंत्रविद्या के विद्यापीठ को कैसे प्रारंभ किया जाए?

श्री गुरुजी : मंदिरों के व्यवस्थापकों-संचालकों को एकत्रित कर संगठित करने के लिए आपको एक संस्था-स्थापन करना आवश्यक है। जैसा आपने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मंदिरों की भूमि के बारे में विधानसभा में प्रस्ताव आदि कार्यवाही चल रही है। भूमि की प्रत्यक्ष जोत की भी समस्या आपने कही है। इसका साफ अर्थ है कि कृषि-भूमि से मंदिरों को धनराशि उपलब्ध नहीं होती। कुछ मंदिरों में हुंडी पद्धति में भगवान को चढ़ाई हुई पर्याप्त धनराशि रहती है। ऐसे मंदिरों का अतिरिक्त धन कम प्राप्तिवाले मंदिरों की यथोचित व्यवस्था में व्यय किया जाना चाहिए।

पी. माधवन : मंदिरों में दान में मिली धनराशि देवस्वम बोर्ड के पास इकट्ठी हो जाती है, परंतु वहाँ भी भ्रष्टाचार और अव्यवस्था के कारण अन्य कामों में रुपया-पैसा खर्च हो जाता है। भ्रष्टाचार और अव्यवस्था को ठीक करने का प्रयास संभव नहीं हुआ।

श्री गुरुजी : पूजा-अर्चना करनेवाले को भी आवश्यक वेतन नियमित रूप से मिलेगा, इस बारे में आश्वस्त रहना चाहिए। आजकल दो सौ रुपए प्रतिमाह कुछ अधिक वेतन नहीं माना जाता। इसलिए यह आवश्यक है कि वह अपने परिवारसहित यथोचित प्रतिष्ठा से जीवन यापन करे, इतना वेतन उसे मिले।

श्री उन्नी पिल्ले : हमारे गाँव के मंदिर के पुजारी को प्रतिमाह तीस या चालीस रुपए वेतन मिलता है।

श्री गुरुजी : ओह! यह तो सुबह की कॉफी लेने के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में उसे समाज-जीवन में प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त हो सकेगी?

श्री नंबूदिरी : दो दिन पूर्व ही गुरुवायूर में हम एकत्रित हुए थे। वहाँ इसके बारे में विचार हुआ था। पूजा करनेवाले अर्चक का आवश्यक स्तर तय करना जरूरी था। वह हमने किया। अब मुख्य पुजारी की प्रशिक्षा में प्रवेश देने के लिए अर्हता और शिक्षा-क्रम किस प्रकार का रहना चाहिए?

श्री गुरुजी : शिक्षा-क्रम तो आप जैसे उस विषय के ज्ञाता और पंडितों ने एकत्रित बैठकर और विचार-विनिमय कर तय करना चाहिए। आठ या नौ वर्ष की आयु-अवस्था में शिक्षार्थियों को विद्यापीठ में

प्रवेश देना चाहिए और जानकार पुरोहित के द्वारा उपनयन संस्कार कर उनकी शिक्षा प्रारंभ करनी चाहिए। इतनी छोटी आयु में प्रवेश इसलिए आवश्यक है क्योंकि शिक्षाक्रम पूर्ण करने में सात आठ वर्ष तो अवश्य ही लग जाएँगे। बुद्धि के बारे में तो कुछ कहना कठिन है। ख्यातिप्राप्त वैयाकरणी श्री भोपदेव सबसे मूढ़ माना जाता था। निराशा से वह कुएँ में कूदकर डूब मरने के उद्देश्य से गया, तब वहाँ उसे पानी निकालने वाली स्त्री मिली। रस्सी से पानी निकालते-निकालते कुएँ की जगत पर लगाए गए पत्थर पर निशान देखकर भोपदेव सोचने लगे कि इन पत्थरों से कठोर तो मेरा मस्तिष्क नहीं है। नरम रस्सी बार-बार घिसने से यदि पत्थर पर निशान बन सकता है, पानी का बर्तन रखने से गड्ढा बन सकता है, तो गुरुकुल की शिक्षा से मेरे मस्तिष्क पर परिणाम अवश्य ही होगा। गुरुकुल में लौटे और ऐसा निश्चय कर वे जिस विषय का अभ्यास कर रहे थे, उस पर प्रभुत्व प्राप्त करने के प्रयास में लगे। वे यशस्वी हुए और आगे चलकर सुविख्यात वैयाकरणी बने।

इसलिए दूसरों की बुद्धि को आँकना किसी को भी बहुत कठिन है। वह भगवान से प्राप्त होती है और उसका मूल्यांकन आप या मैं नहीं कर सकते हैं।

श्री नंबूदिरी ने केरलीय तांत्रिक इन आचार्यों के विषय में क्या कहते हैं, यह स्पष्ट करनेवाला एक श्लोक उद्धृत किया—

विप्रः कुलीनः कृतसंस्क्रियौघः
स्वाधीनवेदागमतत्त्ववेत्ता।
वर्णाश्रमाचारपरोऽधिदीक्षो
दक्षस्तपस्वी गुरुरस्ति कोऽस्तु।।

श्री गुरुजी: ऐसे गुरु कहाँ उपलब्ध होंगे, ऐसे आचार्य और शिष्य तो हमें चाहिए। प्राचीन गुरुकुल की याद दिलानेवाला विद्यापीठ भी चाहिए। अंतेवासी खाली समय में बगीचे में या कृषि का काम कर सकते हैं। प्राचीन गुरुकुल में ये हल्के काम भी शिष्यगण किया करते थे। ऐसा परिश्रम शिक्षा का आवश्यक अंग माना जाता था और उसी पद्धति से शिक्षा प्राप्त कर श्रेष्ठ और विद्वान निर्माण हुए थे। इस

प्रकार स्वयं कृषि का काम करने से विद्यापीठ खाद्यान्न के लिए स्वयंपूर्ण बनेगा।

श्री माधवन : 'भारत' नदी के किनारे तिरुनावया नामक ग्राम में प्रशांत और पवित्र वायुमंडल है। एक पुरानी वेद पाठशाला भी वहाँ है। इस क्षेत्र में विद्यापीठ निर्माण करने का विचार चल रहा है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा-अर्चना हेतु बनाए गए तीन मंदिर हैं। तीनों देवता के एक ही स्थान में मंदिर भारत में अपवाद स्वरूप ही हैं। झांमोरिन महाराजा से प्रतिवर्ष अनुदान मिलाने का प्रयास हो रहा है। श्री गुरुवायूर देवस्वम की सुरक्षित निधि से मिलनेवाले ब्याज से ही विद्यापीठ के खर्च के लिए पर्याप्त धनराशि-प्राप्ति हेतु भी प्रयत्न चल रहे हैं, परंतु ऐसा कहा जाता है कि इसमें कुछ कानूनी बाधाएँ हैं।

श्री गुरुजी : संबंधित विधिज्ञों के एकत्रित आकर सोच-विचारकर योजना बनाने से इन बाधाओं को पार किया जा सकेगा और समस्या हल होगी।

श्री नंबूदिरी : क्या शिक्षार्थियों को अल्प आधुनिक शिक्षा देकर किसी शासकीय परीक्षा में सफल होना भी उचित होगा?

श्री गुरुजी : नहीं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार उनको अल्प शिक्षा देना तो उचित है, परंतु उनके लिए सरकारी परीक्षा पास करने की आवश्यकता नहीं। उनको आगे चलकर पौरोहित्य सेवा-कार्य ही तो करना है। किसी अन्य नौकरी के पीछे दौड़ने की उन्हें जरूरत न रहे। विद्यापीठ की ओर से उनको एक प्रशस्ति-पत्र दिया जाना चाहिए। पूजा-पौरोहित्य में नियुक्ति के लिए प्रशस्ति पत्र अर्हता के लिए प्रमाण माना जाए।

५. स्वामी श्री विपाप्मानंदजी

(४ फरवरी १९६९ कालिकत, केरल)

स्वामीजी : आजकल अध्यात्म के विषय में लगन कम हुई है। जानने की उत्सुकता भी अल्प है। संन्यास ग्रहण करनेवाले बहुत कम युवक मिलते हैं।

श्री गुरुजी : मुझे लगता है कि आजकल सेवा-कार्य करने पर अधिक बल रहने से आपके मिशन-कार्य में आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठाने का महत्त्वपूर्ण पहलू उपेक्षित-सा रह जाता है। युवकों के मानसिक विकास की अपेक्षा मिशन-निर्मित विभिन्न संस्थाओं की अधिक चिंता होती है। प्रारंभ में मठ और मिशन के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानंदजी थे। मठ-निवासी बंधुओं के आध्यात्मिक विकास की वे बहुत गहराई से चिंता करते थे। उनके शांत हो जाने के पश्चात् लगता है कि सेवा-कार्य की ओर अधिक ध्यान रहा और अब लोलक दूसरे छोर पर है। उसे पहले जैसा आध्यात्मिकता की ओर जाना आवश्यक है। युवकों की आध्यात्मिक प्रवृत्ति दृढ़ एवं विकसित करने का दायित्व स्वामी और साधुओं को उठाना पड़ेगा। पारंपरिक पद्धति से शिष्यों का आत्मिक विकास और संस्कृत, व्याकरण आदि की शिक्षा अपरिहार्य रूप से आवश्यक है। आपको स्मरण होगा कि स्वामी विवेकानंद जी अपने शिष्यों को प्रारंभ में संस्कृत की शिक्षा देते थे। आगे चलकर उन्होंने व्याकरण भी पढ़ाया था।

घर-परिवार के वायुमंडल का भी असर होता है। कुछ वर्ष पूर्व हम सुबह उठते समय घर में स्तोत्रगान सुना करते थे। अपने जगने से पूर्व ही माता-पिता जगकर और शुचिर्भूत हो गए हैं, ऐसा वह लड़का अनुभव करता था। आजकल जब लड़का सोकर उठता है, तब वह देखता है कि माता-पिता अभी तक जगे नहीं हैं, वह स्तोत्रगान के स्थान पर भद्दे गाने रेडियो पर सुनता है। इसे ठीक करना पड़ेगा। घरेलू वायुमंडल को आध्यात्मिक प्रवृत्ति का पोषक बनाना पड़ेगा।

संन्यासी भी आगे चलकर अपने हिंदू-समाज से ही तो उपलब्ध होंगे। उसी हिंदू समाज-जीवन की चिंता कर उसे सुदृढ़ आध्यात्मिक दिशा में ढालना चाहिए, अग्रसर करना चाहिए। इस काम को आजकल हम नहीं कर रहे हैं। एक विख्यात स्वामी ने नागपुर में एक भाषणमाला के अंतर्गत तीन दिन भाषण दिए। मेरा जाना असंभव था। इसलिए उनके भाषण नहीं सुन पाया, परंतु जो मेरे मित्र उनको सुनने गए थे, उन्होंने बताया कि तीनों भाषणों में एक बार भी स्वामी जी ने 'हिंदू' शब्द का उपयोग नहीं किया। सावधानी से वे 'हिंदू' शब्दोच्चार को टालते रहे थे। अपनी

अस्मिता जिसके कारण बनी और हमारे लिए अनादि काल से प्रेरक सिद्ध हुई, उसे दर्शानेवाले 'हिंदू' शब्दोच्चार में यदि संकोच या लज्जा का अनुभव होता हो, तो आध्यात्मिक प्रगति मर्यादित ही रहेगी। हृदय की आध्यात्मिक दृढ़ता घटेगी।

स्वामीजी : विदेशों में भी हमें कार्य करना आवश्यक है।

श्री गुरुजी : यह तो ठीक ही है। मैं पराभूत मनोवृत्ति या न्यूनगंड के कारण सत्य को निर्भय होकर न कहने के विषय में बोल रहा हूँ। स्वामी विवेकानंद और स्वामी अभेदानंद ने विदेशों में कार्य किया है। वे दोनों निर्भय थे। उनपर टीका-टिप्पणी करनेवालों की भी वे आलोचना करते थे। सत्य का असंदिग्ध और निर्भयता से प्रतिपादन कर उन्होंने ईसाई मत की आलोचना विदेशों में भी की थी। सत्य के साथ किसी हालत में उन्होंने समझौता नहीं किया था। वे ईसा मसीह को भगवान का अवतार इस नाते श्रद्धेय मानते थे। ईसा मसीह की आलोचना हिंदू-धर्म के प्राथमिक सिद्धांतों की ही विरोधी सिद्ध होती। ऐसा होते हुए भी स्वामी जी को अमरीकी लोग चाहते थे। स्वामी जी उनके लिए आदरणीय बन गए थे। अपने प्रति उनकी स्नेह एवं आदर भावना के कारण ही अमरीकी लोगों ने प्रारंभ में हमें सहयोग दिया। वैसी स्थिति आज नहीं रही। भारत का अमरीकीकरण करने में वे हमारा साधन की तरह उपयोग करना चाहते हैं। यह उनका अंतस्थ हेतु है। मानो अमरीकी लोगों को तुष्ट करने हम अपने विचारों में ढीलापन ला रहे हैं। यह ढीलापन इस हद तक हुआ है कि उस सांस्कृतिक केंद्र के निवासी आध्यात्मिकता को खो बैठे हैं।

आध्यात्मिकता कम हो जाने का और एक कारण है। हमारा राष्ट्रीय अभिमान और राष्ट्रभावना भी ढीली पड़ गई है। युवकों के जीवन में आध्यात्मिक अधिष्ठान निर्माण करनेवाले कोई नहीं हैं। बंगाल का उदाहरण उद्‌बोधक है। पूर्वकाल में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र आलोकित करनेवाले ख्यातिप्राप्त श्रेष्ठ पुरुष वहाँ विद्यमान थे। स्वामी विवेकानंद, श्री अरविंद, श्री बारींद्र घोष आदि श्रेष्ठ पुरुषों की मालिका श्री बिधानचंद्र राय तक अक्षुण्ण थी। क्या इसी क्षमता के पुरुष अब बंगाल में पुरानी गौरवमयी याद दिलाने के लिए मिलते हैं? युवक तो भावनाशील होते हैं, पर उनके

जीवन को दिशाबोध कर नेतृत्व करनेवाला कोई नहीं है। आध्यात्मिक अधिष्ठान और राष्ट्रभावना के अभाव में नेतागण उनको साम्यवाद की राह पर ले गए। जो सनातनी वृत्ति के थे, वे अन्य दलों में सम्मिलित हो गए।

मुझे लगता है कि तथाकथित उदारता एवं व्यापक दृष्टिकोण से विचार करने की रामकृष्ण मिशन को आवश्यकता है। राष्ट्रीयत्व, हिंदुत्व और आध्यात्मिकता की चिंता अधिक करते हुए उसी पर बल देना आवश्यक है। संभवतः इसका श्री रामकृष्ण मठ और मिशन को विस्मरण हुआ है।

६. आचार्य श्री तुलसी

(११ मई १९७०, नागपुर)

आचार्यश्री : राष्ट्र की स्थिति तो इस समय बड़ी विचित्र है। आप वर्तमान स्थिति के संबंध में क्या सोचते हैं?

श्री गुरुजी : सचमुच महाराज, देश की स्थिति गड़बड़ ही है। वर्तमान राजनैतिक स्थिति ठीक नहीं है। धर्म संकट में है। सत्ता सर्वोपरि है और वही जो चाहती है, कर रही है। कल क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

आचार्यश्री : मैं ऐसा मानता हूँ कि सत्ता केवल सत्ता के लिए नहीं होनी चाहिए, सबकी भलाई के लिए होनी चाहिए। अध्यात्मप्रधान देश भारत में यदि धर्म को स्थान नहीं दिया जाएगा, तो फिर यहाँ बचेगा ही क्या? परंतु धार्मिकों की स्थिति आज विचारणीय बन गई है। लोग धर्म के नाम पर अधर्म करने लगे हैं।

श्री गुरुजी : मैं आपके कथन से पूर्णतः सहमत हूँ। धार्मिकों की स्थिति निःसंदेह विचारणीय है।

आचार्यश्री : धर्म आज मठों, मन्दिरों, मस्जिदों, चर्चों तथा गुरुद्वारों तक ही सीमित रखा जा रहा है और धर्माधिकारी लोग अर्थलोलुप बन रहे हैं।

श्री गुरुजी : मेरे एक साथी ने कहा है कि मठाधिपतियों से कुछ नहीं होनेवाला, क्योंकि ये लोग पुरानेपन के गुलाम हैं।

आचार्यश्री : मुझे कभी-कभी यह समझ में नहीं आता कि इन लोगों का सहयोग क्यों लिया जाता है?

श्री गुरुजी : महाराज। आखिर इनका भी तो देश में एक बड़ा वर्ग अनुयायी है। मैं इनसे संपर्क रखता हूँ, परंतु कहाँ तक सफलता मिलेगी, कह नहीं सकता। फिर भी कई लोगों के विचार हमसे मिल रहे हैं और इस कार्य में सफलता मिलेगी– ऐसी पूर्ण आशा है। मैं अभी चेन्नै के दौरे से वापस लौटा हूँ। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि कुछ जातियों के साथ अन्याय हो रहा है। राजस्थान में भी राजपूत लोग अभी तक छुआछूत को मानते हैं। मैंने उनसे कहा है कि आप लोग तो क्षत्रिय हैं, प्रजापालक हैं, फिर छुआछूत को प्रधानता देकर दूसरों का कल्याण कैसे कर सकेंगे?

आचार्यश्री : आपका प्रयास सुंदर है। मैं कहता हूँ कि जातियों को लेकर हिंदू समाज के टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। मात्र ईसाइयों को गाली देने से कुछ नहीं होगा, अपने घर को भी टटोलना आवश्यक है।

श्री गुरुजी : अभी कुछ दिन पहले असम गया था। वहाँ पर अपने कार्यकर्ताओं के मध्य मैंने यह बात कही कि आप लोग मात्र यही न देखें कि ईसाई मिशनरियाँ भारतीयों को ईसाई बना रही हैं। पादरियों की सेवा देखिए, उनका त्याग देखिए, उनकी निष्ठा देखिए। हमें अच्छाई से शिक्षा लेनी चाहिए। दूसरे लोगों के साथ सहानुभूति रख कर ही हम उन्हें अपना बना सकते हैं।

आचार्यश्री : सहानुभूति और सेवा के द्वारा जो कार्य हो सकता है, वह और किसी से भी नहीं हो सकता।

श्री गुरुजी : मेरे माता-पिता ने एक गाय पाल रखी थी। उसकी सेवा की जाती थी। जब हम लोग उसकी पीठ सहलाते थे, तो वह आधा सेर दूध अधिक देती थी। जब पशु के अंदर आत्मीयता आ जाती है, तब मनुष्य क्यों नहीं प्रभावित होगा?

विचारों की संकीर्णता बहुत बुरी होती है। आज भी समाज में बहुत बड़े धर्माधिकारी कहलाने वाले संकीर्णता को पोषण देते हैं। यह उचित नहीं है।

आचार्यश्री : जब मैंने अणुव्रत का प्रारंभ किया, तब कुछ लोगों ने कहा कि हम हरिजनों को आपके पास लाएँगे। ऐसा उन्होंने दुर्भावना से

कहा था। मैंने कहा कि हमारी सभा में यदि हरिजन लोग आएँगे तो मुझे प्रसन्नता ही होगी, आपत्ति नहीं होगी। हरिजन लाए गए। इस पर हमारे समाज के कुछ बुजुर्ग लोग भड़क उठे। उन्होंने कहा कि आपने तो अनर्थ ही कर डाला। मैंने कहा कि मेरे पास आनेवाले को कोई भी व्यक्ति रोक नहीं सकता। मैं किससे मिलूँ और किससे नहीं, यह मेरे विचार की बात है। दूसरों को इसमें बोलने का क्या अधिकार है। सब लोग शांत हो गए और जो लोग दुर्भावना के कारण हरिजनों को झगड़ा कराने के लिए लाए थे, वे दंग रह गए।

श्री गुरुजी: मैं अभी-अभी कर्नाटक प्रांत में गया था। वहाँ पर कई धर्माधिकारी और आचार्य लोग आए थे। एक उच्चपदस्थ हरिजन भाई भी आया था। मैंने अपने वक्तव्य में धर्माधिकारियों से अनुरोध किया कि सब लोग हरिजन भाइयों के संबंध में अपने विचार रखें। अच्छा प्रभाव पड़ा। सभा समाप्त होने पर एक हरिजन अधिकारी ने मुझे अपनी बाँहों में भरते हुए कहा, यह सब आपकी कृपा से हुआ है। मैंने आज जो कुछ भी यहाँ देखा तथा सुना, वैसा व्यवहार किसी धार्मिक सभा में न देखा, न सुना। मैंने उस भाई को समझाया कि युग बदलेगा और समाज में निश्चित ही परिवर्तन आएगा।

आचार्यश्री : अस्पृश्यता आदि के संबंध में शंकराचार्य के एक वक्तव्य को लेकर काफी बवंडर हुआ था। उस समय आप मौन क्यों रहे?

श्री गुरुजी : मैं मौन नहीं था। मेरे विचार पत्रों में प्रकाशित हुए थे। मैं शंकराचार्य के विचार से सहमत नहीं था।

आचार्यश्री : मुझे भी कई लोगों ने कहा कि शंकराचार्य के विचारों का आपको प्रतिवाद करना चाहिए। ये विचार किसी भी तरह जनहित में नहीं हैं। मैंने कहा कि मैं शंकराचार्य के विचारों से सहमत नहीं हूँ, परंतु निंदनीय शब्दों का प्रयोग करना मैं उचित नहीं मानता।

श्री गुरुजी: कुछ लोगों ने शंकराचार्य के प्रति अपशब्द कहे। मुझे यह बात बहुत बुरी लगी। मैंने अपने साथियों से कहा कि आप लोगों के समक्ष निंदनीय शब्दों का प्रयोग अपने एक आचार्य के प्रति हुआ और आप लोग चुप कैसे बैठे रहे?

आचार्यश्री : शंकराचार्य भी बहुत जल्दी गरम हो जाते हैं। मैं एक छोटी-सी घटना बताता हूँ। वर्षों पूर्व दिल्ली के विज्ञान भवन में विश्व हिंदू परिषद् का आयोजन था। आयोजकों में से कुछ भाई मुझे आमंत्रित करने के लिए आए थे, परंतु मैं जाने की स्थिति में नहीं था। उन्होंने बताया कि- हम लोग राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन को आमंत्रित करने गए थे। तब उन्होंने पूछा कि क्या आचार्य श्री तुलसी आप लोगों के कार्यक्रम में आ रहे हैं? यदि वह आ रहे होंगे तो मैं भी आ सकता हूँ। हम लोगों ने कह दिया कि हाँ, आचार्यश्री तुलसी भी आ रहे हैं। इसलिए आपको हमारी बात रखने के लिए पधारना ही होगा, अन्यथा हम झूठे साबित होंगे। मैंने कहा– आप लोगों ने मुझसे पूछे बिना ही कह दिया, यह उचित नहीं है, फिर भी आप लोगों के आग्रह को टाल नहीं सकता। मैं आऊँगा।

कार्यक्रम में गया। 'हिंदू' शब्द पर मैंने अपना एक लेख भी पढ़ा। हमारी 'हिंदू' शब्द की व्याख्या पर पुरी के शंकराचार्य बहुत कुपित हो गए और कहा कि आपने तो हमारी सभा को ही बिगाड़ दिया। मैंने कहा– 'हमने अपने लेख में हिंदू शब्द को किसी धर्म के साथ नहीं जोड़ा है, बल्कि उसे राष्ट्रवादी माना है। जिस प्रकार से कोई भी व्यक्ति, वह चाहे जिस जगह का क्यों न हो, चीन में रहता है तो चीनी कहलाता है, जापान में रहता है तो जापानी कहलाता है, ठीक इसी प्रकार हिंदुस्थान में रहनेवाला हिंदू है। फिर वह चाहे जिस मजहब का क्यों न हो? शंकराचार्य को यह मान्य नहीं था। इसलिए वे बिगड़ उठे थे।

श्री गुरुजी : आपकी परिभाषा से हम सहमत हैं।

आचार्यश्री : जब तक एक-दूसरे के विचार को अच्छी तरह समझ न लिया जाए, बैठकर चिंतन मनन न कर लिया जाए, तब तक खंडन-मंडन के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि लोग एक-दूसरे के विचारों को अच्छी तरह समझे बिना ही इधर-उधर की बातों के आधार पर उलझने लगते हैं। मैं इसे उचित नहीं मानता।

श्री गुरुजी : मैं आपके विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ।

आचार्यश्री : अभी लगभग बीस वर्षों के बाद मैं विनोबाजी से मिला। खुलकर बातें हुईं। जिन बातों पर हम एक-दूसरे के विचारों से भिन्न मत रखते थे, उन पर भी खुलकर बातें हुई। हम एक-दूसरे के बहुत नजदीक आ गए हैं।

श्री गुरुजी : खुलकर बातें करने से निस्संदेह अच्छे परिणाम आते हैं।

आचार्यश्री : आपसे मिले हुए लगभग बीस वर्ष हो गए हैं।

श्री गुरुजी : मेरी आपसे मिलने की बहुत इच्छा थी। कभी-कभी हम बहुत नजदीक से भी गुजरे हैं। मैं चाहता था कि कभी समय मिलने पर अच्छी तरह बैठकर हम लोगों को विचार-विमर्श करना चाहिए।

आचार्यश्री : अणुव्रत को लेकर मैंने प्रायः सारे देश का भ्रमण किया। हमारे साथ लोगों की अच्छी सद्भावना रही। मैंने जातीयता व अस्पृश्यता को कभी महत्त्व नहीं दिया, इसलिए प्रत्येक वर्ग के लोगों ने हमारे विचारों का स्वागत किया। इस दक्षिण यात्रा के दौरान हम, लोगों के और अधिक नजदीक आ गए। परंतु मैंने देखा कि आज भी बहुत से धर्माधिकारी लोग धर्म के नाम पर गलत चीजों को पोषण दे रहे हैं।

श्री गुरुजी : प्राचीन दोषपूर्ण रूढ़ियाँ टूट रही हैं, परंतु अभी भी बहुत सी कमियाँ हैं। मैं जानता हूँ कि हमारे एक परिचित आचार्य जी ने जाति-पाँत के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने हरिजनों के बीच में भाषण भी दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके अनुयायी लोग भड़क उठे। आचार्य जी के शिष्य एक शास्त्री जी ही उनके विरोधी बन गए। तब आचार्य जी घबड़ा उठे और अपनी ही बात का प्रतिवाद करने लगे। मुझे यह घटना मालूम हुई। मैंने आचार्य जी से मिलने पर कहा— 'आपने ऐसा अनर्थ क्यों किया? आपको डरने की आवश्यकता नहीं थी। आप एक शास्त्री से डर गए। मैं आपको आचार्य मानूँ या उस शास्त्री को? आपने यदि हरिजनोद्धार का समर्थन किया था तो शास्त्री जी से कह देते कि मैंने उचित समझकर ही ऐसा किया है और भी मेरी बात माननी होगी। आप ही बताएँ कि आप बड़े हैं या वह शास्त्री? क्या मैं अब आपके स्थान पर उस शास्त्री को ही प्रणाम करूँ?

मुनिश्री नथमल : आज भी बहुत से महंत लोग सामंतशाही युग में जीते हैं।

जनता के बीच में आने पर वे स्वर्ण सिंहासन पर बैठते हैं। स्वर्ण छत्र आदि का भी उपयोग करते हैं।

श्री गुरुजी : मैं भी इसकी आवश्यकता नहीं मानता। कोई विशेष समारोह आदि हो तो बात दूसरी है, परंतु हर समय ऐसा करना ठीक नहीं। आखिर रोज तो वह साधु ही रहता है।

आचार्यश्री : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा भी व्यवस्थित रूप में ऐसे कार्यक्रम चलने चाहिए, जिनसे समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाया जा सके। बंधुत्व की भावना का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होना चाहिए।

श्री गुरुजी : हम इसके लिए पहले से प्रयत्नशील हैं।

आचार्यश्री : समाज को साथ लेकर चलने से संपूर्ण समाज हमारा साथी बन जाएगा। हमें किसी वर्ग विशेष की जाति-पाँति के आधार पर उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

मुनिश्री नथमल : आचार्यश्री ने प्रारंभ से ही इसकी ओर समुचित ध्यान दिया है और हमें इस कार्य में अच्छी सफलता भी मिली है।

श्री गुरुजी : हमें यह बात अच्छी तरह से मालूम है। आचार्यश्री की उदारता का ही परिणाम है कि जो पहले इनके विरोधी थे, आज अभिनंदन करने लगे हैं।

आचार्यश्री : मेवाड़ में सालबी जाति है। उनके यहाँ हम भिक्षा नहीं लेते थे। उन भाइयों ने भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मैंने पता लगाया कि इनका खान-पान शुद्ध है कि नहीं और जब हमें अच्छी तरह से मालूम हो गया कि इनका खान-पान शुद्ध है, रहन-सहन ठीक है, तब मैंने संतों को गोचरी के लिए भेज दिया। इसको लेकर बवंडर हो गया। मैंने कहा कि आचार्य मैं हूँ, अपनी व्यवस्था का निर्धारण करना मेरा काम है। मैंने जो कुछ भी किया है, सोच-समझकर किया है। विरोध अपने आप शांत हो गया।

श्री गुरुजी : मैं देश के समस्त आचार्यों से मिल कर विचार-विमर्श कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि सफलता मिलेगी।

आचार्यश्री : निराश होने की आवश्यकता ही नहीं है।

मुनिश्री नथमल : भारतीयकरण को लेकर इस समय काफी ऊहापोह है। इस नारे का अभिप्राय क्या है? जनसंघ ने ही तो यह नारा दिया है।

श्री गुरुजी : इस भारतीयकरण नारे का राजनीतिकों ने बहुत गलत अर्थ किया है। उन लोगों ने कहा कि भारतीयकरण का मतलब है मुसलमानों को हिंदू बनाया जाए। वास्तव में यह अर्थ मुसलमानों का वोट प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। जबकि भारतीयकरण का अभिप्राय है भारत में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो या और भी किसी जाति का हो, उसे अपने देश भारत के प्रति वफादार होना चाहिए न कि चीन या पाकिस्तान के प्रति। वह अपनी विधि के अनुसार भगवद्प्राप्ति के लिए जो कुछ भी करता है, उसमें हम सहयोगी हैं, परंतु राष्ट्रविरोधी बातों को दूर करने के लिए ही भारतीयकरण की आवाज उठाई गई है।

आचार्यश्री : अगर भारतीयकरण के नारे के पीछे यही उद्देश्य है, तो मैं भी इसका समर्थक हूँ। शरीर भारत में रहे और दिमाग दूसरे देश में, यह बात उचित कैसे हो सकती है? स्वयं नेहरू जी इस बात को उचित नहीं मानते थे।

श्री गुरुजी : महाराज। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी भारत में पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगाए जा रहे हैं। ईसाइयों की तुष्टि के लिए नागालैंड बना है और उन्हीं की तुष्टि के लिए अभी एक नया प्रदेश मेघालय और बना है। क्या यह सब बातें अच्छी हैं?

मुनिश्री नथमल : आपके भारतीयकरण के विचार अच्छे हैं, परंतु विरोधी लोगों ने इसे राजनैतिक मुद्दा बना लिया।

आचार्यश्री : मैं भी तो यही कहता हूँ कि आज धार्मिकों को ही सबसे पहले धार्मिक बनने की आवश्यकता है।

श्री गुरुजी : मैं प्रारंभ से कहता आया हूँ कि सबसे पहले 'हिंदू' को ही सच्चा हिंदू बनाओ।

आचार्यश्री : उच्च स्तर पर किसी का कोई मतभेद नहीं होता, परंतु बीच के ही लोग लड़ने-झगड़ने लग जाते हैं।

श्री गुरुजी : एक दंतकथा है कि एक बार रामसेना और शिवसेना आमने-सामने हो गई। राम ने शिव को देखा और शिव ने राम को। दोनों एक-दूसरे के परम भक्त थे। अटूट मित्रता थी। दोनों आमने-सामने

होते ही दौड़कर गले मिले, परंतु इधर राम की सेना के वानर और उधर शिव की सेना के भूत-प्रेत आपस में संग्राम करने लगे। आज जो बड़े-बड़े धर्माधिकारी लोग हैं, वे अपने शिष्यों और अनुयायियों पर नियंत्रण रखने में असमर्थ हैं। उन्हें सर्वाधिक चिंता अपनी व्यक्तिगत सत्ता और प्रतिष्ठा की है, कोई भी क्रांतिकारी कदम उठाने में वे सर्वथा असमर्थ लगते हैं। अक्सर यह होता है कि यदि नेता कमजोर हुआ तो जो लोग उसे नेता बनाते हैं, वही स्वयं नेता बनकर बैठ जाते हैं।

मुनि श्री नथमल : धर्म को लेकर आज बुद्धिवादी लोगों में जो भ्रम पैदा हुआ है, उसे दूर करना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि समान विचारधारा के लोग समय-समय पर आपस में मिलते रहें और उनके विचार जनता की समझ में आते रहें। आज धर्म के प्रति लोगों में जो अनास्था की भावना पैदा हुई है, उसमें धार्मिकों का कम हाथ नहीं है। छात्रों में जो आवेश है, उसे भी शांत करना चाहिए।

श्री गुरुजी : हम इसके लिए प्रयत्नशील हैं। हमें अपने छात्रों को बलवान बनाना है। अभी जो आवेश है, उसे तत्काल रोका नहीं जा सकता। अभी तो वह पहली अवस्था में है। परिपक्वता आने पर ही उसके संबंध में विचार करना चाहिए।

आचार्यश्री : आज हम लोगों ने काफी देर तक विचार-विनिमय किया। हम लोग एक-दूसरे के बहुत ही निकट हैं। मैं आपसे मिलने के लिए सोच ही रहा था।

श्री गुरुजी : मैं स्वयं आपके पास आने को उत्सुक था। मुझे जब मालूम हुआ कि महाराज हमारे यहाँ आने वाले हैं, तो मैंने कहा कि इस चिलचिलाती धूप में नंगे पैर सड़क पर आप पैदल चलकर क्यों आएँगे। मैं स्वयं ही जाऊँगा। फिर मेरा यह कर्तव्य भी है कि मैं आपके स्थान पर आकर आपके दर्शन करूँ।

आचार्यश्री : मैं क्या बताऊँ। आज भी पुराने लोगों में जो भारतीय संस्कार भरे हुए हैं, उनकी जड़ें बहुत गहरी हैं। विनोबा जी ने इस उम्र में भी मीलों तक पैदल चलकर अगवानी की।

७. पेजावर मठाधिपति स्वामी विश्वेशतीर्थ

(६ फरवरी १९७३, उडुपी)

स्वामीजी : आंध्रप्रदेश के विभाजन के लिए तीव्र आंदोलन हो रहा है?

श्री गुरुजी : दोनों ही ओर जन-आंदोलन का इतना अधिक प्रभाव और इतनी अधिक पकड़ दिखाई दे रही है, कि आंध्र और तेलंगाना के रूप में आंध्रप्रदेश के विभाजन की संभावना प्रतीत हो रही है। इस समस्या का दुःखदायी पहलू केवल यही है कि हिंसाचार, बसों, रेलों, डाक-तार जैसी सार्वजनिक संपत्ति की क्षति होने के उपरांत तथा उभय क्षेत्रों के बीच गहरी कटुता उत्पन्न हो जाने के बाद ही यह हल होगी। किसी आंदोलन द्वारा हिंसक रूप धारण करने के बाद ही किसी माँग को स्वीकार करने का प्रदेश व केंद्र सरकारों का दृष्टिकोण तथा आंदोलनकारियों का कानून व व्यवस्था की दृष्टि से विचार न करना अत्यंत खतरनाक है। क्योंकि इससे वैधानिक शासन के प्रति लोगों में आदर की भावना कम होगी। अतः हिंसा की प्रतीक्षा क्यों की जानी चाहिए? यदि माँग न्यायपूर्ण और तर्कसंगत है, तो उसे स्वीकार कर लिया जाए।

जहाँ तक आंध्रप्रदेश की इस समस्या का प्रश्न है, आंध्र (समुद्रतटीय) और तेलंगाना, विभाजन की माँग कर रहे हैं, इसे स्वीकार किया जा सकता है। एक ही भाषा के एक से अधिक प्रदेश बनाने में कोई हानि नहीं है। युद्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में अधिक प्रदेशों का निर्माण करते समय, सतर्कता आवश्यक होती है। किंतु असम, नेफा, मणिपुर, त्रिपुरा क्षेत्रों से नागालैंड, मेघालय, मणिपुर, अरुणांचल प्रदेश जैसे छोटे-छोटे प्रदेश अराष्ट्रीय शक्तियों के दबाव में आकर जब बनाए जा सकते हैं, तब फिर सौहार्दता के साथ आंध्रप्रदेश का विभाजन क्यों न कर दिया जाए? वास्तव में भाषा के आधार पर प्रदेशों का पुनर्गठन अपने-आप में एक गलत कदम था। अब भी भाषा के आधार पर नहीं अपितु प्रशासनिक सुविधा आदि का ध्यान रखकर नए सिरे से प्रदेशों का पुनर्गठन हो, तो विघटन की प्रक्रिया रुक जाएगी। मेरा अभी भी यह मत है कि शासन की एकात्म-प्रणाली अपने देश के लिए सर्वाधिक अनुकूल है।

स्वामीजी : आए दिन हरिजनों पर अत्याचारों के समाचार बहुत आ रहे हैं। इस बारे में आपके क्या विचार हैं? मैं तो प्रामाणिकता के साथ यह अनुभव करता हूँ कि किसी दुष्ट बुद्धि से इन्हें बढ़ा-चढ़ाकर बताया जा रहा है।

श्री गुरुजी : हरिजनों के विषय में मैंने जो विचार व्यक्त किए हैं, उन्हें समाचार-पत्रों ने सामान्यतः सही रूप में प्रस्तुत नहीं किया। मेरा यह भी विचार है कि हरिजनों के साथ व्यवहार अथवा अत्याचार-विषयक घटनाओं के समाचार आजकल सुनियोजित ढंग से बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

यह कार्य निहित स्वार्थियों का है। सी.आई.ए. अथवा के.जी.बी. का भी हो सकता है। इसमें अन्य हिंदुओं और हरिजनों में विभेद निर्माण करने का हेतुपुरस्सर उद्देश्य निहित है। मुझे भय है कि कहीं शासन के कुछ उच्च-पदस्थ अधिकारियों ने भी उनसे हाथ न मिला लिया हो।

उत्तरप्रदेश की एक घटना मेरी इस धारणा को उचित सिद्ध करती है। समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि उत्तरप्रदेश के एक गाँव में सवर्ण हिंदुओं ने हरिजनों की झोंपड़ियों में आग लगा दी। जब छान-बीन की गई तो विदित हुआ कि उस गाँव में केवल हरिजन और मुसलमान ही रहते हैं। वहाँ सवर्ण हिंदू कोई है ही नहीं।

महाराष्ट्र में भी इस तरह के उदाहरण सामने आए हैं। देश के राष्ट्रद्रोही तत्त्वों से साठ-गाँठकर, विदेशी एजेन्सियाँ हिंदू-समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषतः हरिजनों और अन्य हिंदुओं में शत्रुता निर्माण करने पर तुली हुई हैं। उन्हें इस बात का भय है कि यदि संगठित रूप में हिंदू-समाज के सब लोग एक-दूसरे के निकट आकर कार्य करेंगे, हिंदू-समाज यदि सबल और परंपरा से प्राप्त अपनी महानता के प्रति जागरूक होगा, तो कुटिल विदेशी शक्तियाँ अपने दुष्ट मंतव्यों में सफल नहीं हो सकेंगी। इस कुचक्र का भंडाफोड़ होना जरूरी है। साथ ही इन दुष्ट मंतव्यों के प्रति हिंदू-समाज को सतर्क किया जाना चाहिए। भंडाफोड़ करने में विलंब नहीं होना चाहिए।

स्वामीजी : मैंने विश्व हिंदू परिषद् के कार्य तथा विभिन्न सेवा-केंद्रों के लिए निधि संकलन प्रारंभ कर दिया है। लक्ष्य दो करोड़ रुपए का है। मैं चाहूँगा कि इस कोष के प्रबंध के लिए एक न्यास (ट्रस्ट) हो। प्रस्तावित न्यास का संविधान तैयार करने की दृष्टि से विश्व हिंदू परिषद् के लोग और श्री शेषाद्रि एवं अन्य कार्यकर्ताओं से मैं चर्चा कर चुका हूँ।

श्री गुरुजी : यदि आप चर्चा कर चुके हैं तो आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं। वे यह कार्य पूर्ण कर लेंगे।

स्वामीजी : श्री वाय.के.राघवेन्द्रराव इस कार्य को देख रहे हैं।

श्री गुरुजी : यह बहुत अच्छा है।

स्वामीजी : प्रस्तावित न्यास के ट्रस्टियों में, मैं आपका नाम भी सम्मिलित करना चाहता हूँ?

श्री गुरुजी : ओ हो! नहीं, मेरा नाम क्यों आवश्यक है? मेरे नाम के बिना भी मैं सदैव आपके साथ हूँ। विश्व हिंदू परिषद् के एक ट्रस्टी के रूप में मेरा नाम रहा है। मैं उनसे कह चुका हूँ कि मेरा नाम आवश्यक नहीं।

स्वामीजी : मैं जानता हूँ। आप अत्यधिक व्यस्त हैं तथा आपका नाम रहे या न रहे, यह आपके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता, किंतु इस कार्य को अच्छी गति प्राप्त होगी। आप कृपया इस पर विचार करें तथा यथासमय मुझे अवगत कराएँ। आपका नाम रहेगा तो मुझे प्रसन्नता होगी।

कर्नाटक के उत्तरी क्षेत्रों में भीषण सूखे की स्थिति से प्रभावित लोगों के लिए भी निधि, खाद्यान्न आदि संग्रहीत करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ। इसके लिए संघ के सहयोग का अनुरोध है। मैं शासन का भी सहयोग प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ।

श्री गुरुजी : कुछ प्रदेश-सरकारें स्वयं के कतिपय कारणों से संघ के साथ सहयोग नहीं करना चाहतीं। फिर भी प्रयास करने में कोई हानि नहीं है।

स्वामीजी : क्या हम पुनः भारत का अखंड स्वरूप देख सकेंगे?

श्री गुरुजी : हम सब आज भी मंत्र कहते हैं—

"गंगे च, यमुने चैव, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन संन्निधिं कुरु।''

हम सिंधु नदी को भूले नहीं हैं। सिंधु के बिना मातृभूमि की धारणा ही अपूर्ण है। उस स्वप्न को साकार करने हेतु हम सब कटिबद्ध हैं।

स्वामीजी : यह स्वप्न कैसे साकार होगा?

श्री गुरुजी : देश के विभाजन के कारणों का समूल नाश करके। हिंदू एकता के साथ ही देश का एकीकरण होगा।

स्वामीजी : पर्यायकाल का दायित्व इस वर्ष समाप्त हो रहा है, जिसके पश्चात् मैं प्रवास हेतु मुक्त हो जाऊँगा। अपने धर्म का अधिकाधिक प्रचार करने हेतु मुझे क्या करना चाहिए?

श्रीगुरुजी : आपके पीठ के तत्त्वज्ञान के साथ ही हिंदू-धर्म का प्रचार करना भी उपयोगी सिद्ध होगा। अपने धर्म के साधारण नियमों, सिद्धांतों का प्रचार, हिंदुओं के साथ-साथ ईसाई लोगों में भी करना संभव है। भगवान रामकृष्ण परमहंस जी जिस विशेष ढंग से अपने विचार प्रतिपादित करते थे, उसी प्रकार ख्रिस्ती (ईसाई) लोगों मे विरोध न पैदा हो, इस प्रणाली से उनमें आत्मीयता प्रस्फुटित करते हुए क्रमशः अपनों मे समाहित करना उचित होगा।

केवल चारित्र्य का आग्रह करने से चारित्र्य निर्माण नहीं होगा, उसके लिए ठोस आधार लेना पड़ेगा। भारत में प्राचीन काल से चला आनेवाला हमारा संस्कार रूप जीवन, जिसे संस्कृति कहते हैं, वही सामान्य अधिष्ठान है।

— श्री गुरुजी

संवाद

स्थान-स्थान पर श्री गुरुजी से मिलने के लिए अनेक सज्जन आया करते थे। उनसे हुए वार्तालाप को प्रवास में साथ रहनेवाले कार्यकर्ताओं ने यथासंभव लेखबद्ध करके केंद्रीय कार्यालय में भेजा, उनमें से कुछ वार्तालापों के चुने हुए अंश इस भाग में दिए हैं। जिन प्रसंगों की तिथियाँ कार्यकर्ताओं ने नहीं भेजीं, उन्हें अंत में दिया है; शेष को कालक्रम के अनुसार प्रस्तुत किया गया है।

स्वाभिमान

सन् १९४३। संघ-कार्यालय नागपुर में प्रातः ६ बजे संस्कृत के प्रकांड पंडित श्री श्रीधर वर्णेकर, श्री नाना भिशीकर व श्री कृष्णराव मोहरील आदि के बीच सहज वार्तालाप चल रहा था।

अनपेक्षित रूप से श्री गुरुजी ने पूछा– 'राणा प्रताप की ससुराल कहाँ थी?'

वर्णेकर ने कहा– 'उनकी ससुराल क्या, हमें तो उनकी पत्नी का नाम तक पता नहीं है।'

तब श्री गुरुजी ने स्वयं ही उत्तर देते हुए बताया– 'उनकी ससुराल आंध्रप्रदेश के विजयवाड़ा में है। राजस्थान के सभी बड़े खानदानवालों ने अपनी कुल-कन्याओं को मुगल जनानखाने में भर्ती किया था। इस अपमानकारी वृत्ति से राणाजी इतने क्रुद्ध थे कि उन्होंने किसी राजस्थानी

वंश में विवाह संबंध न रखने का निश्चय किया। वे सीधे आंध्रप्रदेश गए और विजयवाड़ा की कन्या से विवाह किया। सोचो, उन दिनों राजस्थान का मेवाड़ कहाँ, आंध्र का विजयवाड़ा कहाँ?

त्यजेदेकं राष्ट्रार्थे

सन् १९४३ की एक प्रातःकाल ब्रह्म समाज हाल, रामबाग गदीखट्टा, कराची में स्वयंसेवकों के अभिभावकों की एक बैठक में वार्तालाप इस तरह हुआ था।

एक संपन्न अभिभावक ने श्री गुरुजी से पूछा– 'मेरा बेटा संघ का कार्यकर्ता है। उसपर संघकार्य की धुन सवार हो गई लगती है। मुझे विश्वास है कि एक वर्ष के बाद अपना अध्ययन-कार्य पूर्ण कर वह संघ का पूर्णकालिक कार्यकर्ता बनेगा। संभव है कि वह विवाह न करे तथा पूरा जीवन संघ को समर्पित कर दे। मैं अत्यंत विचलित हूँ। मुझे उससे बड़ी आशा थी। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उसे अपने पिता, माता एवं परिवार के प्रति कर्तव्यपूर्ति हेतु मनाएँ।'

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया– 'आप केवल अपने परिवार का ही विचार कर रहे हैं। आपका पुत्र करोड़ों परिवारों से युक्त संपूर्ण राष्ट्र का चिंतन करता है। अपना राष्ट्र संकट में है। दुर्बल राष्ट्र में कोई भी परिवार सम्मान से जीवित नहीं रह सकता। आपका पुत्र हिंदू राष्ट्र की एकता व सशक्तता के लिए कार्यरत है, ताकि हरेक परिवार का भविष्य सदा-सर्वदा उज्ज्वल बन सके। आपको तो अपने बेटे पर गर्व होना चाहिए कि वह अपने दायित्व के प्रति समर्पित है। आप तो अपने अन्य बच्चों, संबंधियों की संतानों, पड़ोसियों और मित्रों को अपने पुत्र के राष्ट्रनिर्माण के श्रेष्ठ कार्य में सहयोग करने के लिए कहिए।'

योगः कर्मसु कौशलम्

सन् १९४६ के फरवरी मास की कोलकाता नगर की बात है। एक दिन शाम को कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ चाय-पान का कार्यक्रम था। वहाँ एक प्रौढ़ डाक्टर साहब ने श्री गुरुजी से कहा– 'आपके संघ के ध्येय से मैं सहमत हूँ, किंतु अब तक यह नहीं समझ

पाया हूँ कि इतने विशाल ध्येय की सिद्धि ऐसे तुच्छ साधनों के द्वारा कैसे होगी? दक्ष, आरम्, दंड, खड्ग, शूल, कबड्डी आदि क्षुद्र कार्यक्रमों के माध्यम से इतना उच्च और अच्छा ध्येय क्या कभी प्राप्त हो सकेगा?'

श्री गुरुजी ने हँसते हुए पूछा– 'डाक्टर साहब, इन दिनों आपकी एलोपैथी की मास्टर ड्रग कौन-सी है?'

डाक्टर साहब ने बताया– 'पेनिसिलिन।'

श्री गुरुजी ने उनसे पूछा– 'यह पेनिसिलिन किस चीज से बनाई जाती है?'

डाक्टर साहब ने बताया– 'सब जानते हैं कि जिस सड़े हुए अन्न की दुर्गंध को हम बर्दाश्त नहीं कर सकते, ऐसे अन्न से यह ड्रग बनाई जाती है।'

श्री गुरुजी बोले– 'इसका तात्पर्य यह नहीं है क्या कि विशेषज्ञ लोगों के हाथ में आकर खराब चीज का भी सदुपयोग हो सकता है?'

डाक्टर साहब ने कहा– 'हाँ।'

श्री गुरुजी ने उसमें एक और वाक्य जोड़ते हुए कहा– 'और हम संगठन-विज्ञान के विशेषज्ञ हैं।'

सम्मान से जीना

अगस्त १९४७ में ब्रह्म समाज हॉल, रामबाग, कराची में अतिविशिष्ट लोगों की एक बैठक हुई। देश के संभावित भयकारी विभाजन का प्रश्न लोगों के सम्मुख था। सिंध के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक 'सिंध ऑब्जर्वर' के प्रमुख संपादक श्री पुनय्या जी ने श्री गुरुजी से पूछा– 'देश का विभाजन प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेने में क्या नुकसान है? एक अंग कट जाने से क्या हानि होगी? मनुष्य जीवित तो रहता है।'

श्री गुरुजी बोले– 'नाक कट जाने से क्या जाता है? मनुष्य जीवन तो चलता ही है।'

श्री पुनय्या तथा सभी उपस्थित बंधुओं को इस मर्मभेदी, एवं पूर्णतया विवेकयुक्त उत्तर ने आश्चर्यचकित कर दिया।

छत सिर पर ही आ गिरी

(सन् १९४७– राजस्थान में उदयपुर– प्रातः ७ बजे प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ पू. गुरुजी का जलपान। अधिवक्ता श्री जीवन सिंह जी का निवास। श्री वसंतराव ओक, प्रा. मलकानी, श्री जनार्दन नागर आदि सज्जन उपस्थित थे।)

श्री गुरुजी के कमरे में आते ही तब तक चलती चर्चा को विराम देते हुए सब शांत हो गए। बैठते ही मुस्कुराते हुए श्री गुरुजी ने कहा– 'भाई क्या बात है, सब एकदम शांत हैं।'

वसंतराव ओक ने कहा– 'प्रा. मलकानी कह रहे हैं कि हिंदू बड़ा संकीर्ण है। उस पर चर्चा चल रही थी।'

श्री गुरुजी– 'मलकानी जी, आप इतिहास के प्राध्यापक रहे हैं। आप पुनः इतिहास का अध्ययन करें। आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि हिंदू अत्यंत उदार रहा है। उसने अपने घर की चारदीवारी इतनी फैला दी कि उसके मकान की छत उसके सिर पर ही आ गिरी।' यह सुनकर सब हँस पड़े।

संस्कार संक्रमित होते हैं

जनवरी सन् १९४८ को कोच्ची में संघ-स्वयंसेवकों के अनुशासन, प्रामाणिकता, समर्पण भाव आदि की सराहना करते हुए सुविख्यात मलयालम लेखक श्री पी.राम मेनन ने श्री गुरुजी से पूछा– 'इन उत्तम संस्कारों की शिक्षा आप किस प्रकार देते हैं?'

श्री गुरुजी– 'शिक्षा द्वारा उत्तम संस्कार हृदयंगम नहीं किए जाते। निकट संपर्क से और परस्पर विश्वासपूर्ण मित्रता से वे संक्रमित होते हैं।'

श्री मेनन– 'बिलकुल ठीक, ऐसा ही संभव है।'

हर बाला माता की प्रतिमा

सन् १९४९ की बात है, एक महिला अपनी आठवर्षीय बालिका को लेकर श्री गुरुजी के दर्शनार्थ आई और उससे बोली 'गुरुजी के गले में पुष्पहार डालकर उनको नमस्कार करो।' पुष्पहार लेकर ज्यों ही बालिका

श्री गुरुजी की ओर बढ़ी, त्यों ही श्री गुरुजी ने जल्दी से खड़े होकर पुष्पहार उसके हाथों से ले लिया और बालिका के चरणों का स्पर्श किया। यह देखकर आश्चर्यचकित माता बोली– 'आपने यह क्या किया? मैं तो अपनी बच्ची को आपसे आशीर्वाद दिलाने लाई थी और एक आप हैं कि उसके चरण-स्पर्श कर रहे हैं।'

श्री गुरुजी ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया– 'आपके लिए वह बच्ची होगी, परंतु मेरे लिए तो वह साक्षात् 'माँ' है।'

सभी संघ के हैं

२३ सितंबर १९५३ को जालंधर में २०-२५ परिवारों के गणेशोत्सव आयोजन में श्री गुरुजी का जाना हुआ था। उनमें कुछ स्वयंसेवक भी थे। परिचय कराते समय उत्सव के प्रमुख पदाधिकारी ने श्री गुरुजी से कहा– 'यह श्रीमान्, आपके आर.एस.एस. के हैं।'

श्री गुरुजी– 'आर.एस.एस. मेरा नहीं है, मैं उसका हूँ। व्यापक का अंश छोटी चीज होती है। ईश्वर का मैं हूँ, मेरा ईश्वर नहीं। तरंग समुद्र की होती है, तरंग को समुद्र कहना ठीक नहीं होगा।'

'आपका संघ कहने से हम उसके बाहर है, ऐसा मानते हैं। ऐसा हम न मानें। हम सभी संघ के हैं, कोई पास है, कोई भले ही थोड़ी दूरी पर हो, परंतु हैं सभी संघ के।'

परीक्षा के भूत से मुक्ति

१४ अप्रैल १९५४ को दिल्ली में विद्यार्थी जीवन और परीक्षा के विषय में बात चली। श्री गुरुजी ने कहा– 'परीक्षा के भूत से लोगों को मुक्त करना चाहिए। यह मन और बुद्धि के विकास में बाधा है। एक ऐसा विद्यालय चाहिए, जहाँ जीवनोपयोगी आवश्यक बातों और विषयों का ज्ञान देकर विद्यार्थियों को छोड़ दिया जाए। जिनको नौकरी नहीं करनी है, उन्हें yours faithfully लिखकर अपनी डिग्री बताने की भी जरूरत नहीं। नौकरी के अतिरिक्त अन्य कामकाज में पड़नेवाले भी उन विद्यालयों ओर महाविद्यालयों की कैद को काटकर दबे हुए बाहर निकलते हैं। यह स्थिति बदलनी चाहिए।'

क्रांति का आधार

(सन् १९५४ – नौगाँव – असम – अतिथेय : २५ वर्ष इंग्लैंड में रहे श्री शुकदेव गोस्वामी। उपस्थित : सर्वश्री आबाजी थत्ते, ठाकुर रामसिंह, मधुकर लिमये।)

श्री गोस्वामी– 'गुरुजी, आज देश की आवश्यकता क्रांति है, संगठन नहीं। क्या आप ऐसा नहीं सोचते?'

श्री गुरुजी– 'गोस्वामी जी, क्रांति दो प्रकार होती है। गोली द्वारा या मतदान द्वारा। प्रकार कोई भी हो, दोनों के लिए संगठन अनिवार्य है।'

जातियाँ गुणधर्म से

११ अगस्त १९५५ को हिस्सार (हरियाणा) में सायंकालीन चाय पर वार्ता करते हुए श्री गुरुजी ने पं. दीनदयाल जी से कहा– 'कंस भगवान श्रीकृष्ण का मामा ही तो था, परंतु उसे राक्षस कहा गया है। रावण के दस सिर और बीस हाथ थे और वह राक्षस था। विभीषण उसका सगा भाई था, पर मानुषी शरीर रचना और सात्विक वृत्ति का था। एक राक्षस और दूसरा मनुष्य जाति का हुआ। कारण रावण के गुणधर्म राक्षसी थे, विभीषण के मनुष्य-समाज के अनुकूल थे। इसका स्पष्ट निर्देश इसी एक बात से मिलता है कि गुणधर्म की जातियाँ ही अपने यहाँ मानी जाती थीं।'

देशकालानुसार चिकित्सा पद्धति

११ अगस्त १९५५ को हिस्सार (हरियाणा) में चिकित्सा पद्धति पर वार्तालाप करते हुए डा. सेठी से श्री गुरुजी ने कहा– 'जिस भूमि पर हम रहते हैं, उसकी वनस्पतियों से बनी औषधियाँ हमें अधिक लाभदायक होती हैं, ऐसा हमारे पुराने विशेषज्ञ समझते थे। उन जड़ी-बूटियों से बनी औषधियों का प्रयोग भी जलवायु के अनुसार ही होना आवश्यक है। अरब जैसे गर्म देशों में यूनानी पद्धति विकसित हुई। वह शर्बतों और शीत पेयों के आधार पर चलती है। उस पद्धति में प्रयुक्त जड़ी-बूटियाँ रेगिस्तानी जमीन में उगती हैं। एलोपैथिक औषधियाँ अधिकतर अल्कोहल के माध्यम से दी जाती हैं, क्योंकि पश्चिम में बच्चे से बूढ़े तक सब शराब पीते हैं। उन लोगों पर पानी के घोल असर नहीं करते, जबकि हमारी पद्धति में

विभिन्न ॠतुओं का ध्यान रखा गया है।

बाबू गणेशलालजी ने डाक्टर सेठी की ओर देखकर कहा– 'मरीज तो उस डाक्टर को अच्छा समझता है जो उसे आश्वासन दे कि चाहे जो खाओ, कुछ गडबड़ नहीं होगी, मैं जिम्मेदार हूँ। परहेज बतानेवाला डाक्टर पुराने विचारों का माना जाता है।'

गणेशीलाल जी की बात सुनकर श्री गुरुजी ने कहा– 'परहेज छोड़कर नहीं चल सकता। कुछ तो मानना ही पड़ता है। दियासलाई जलाने के लिए भी थोड़ी हवा रोकनी पड़ती है। थोड़े समय के लिए क्यों न हो, परहेज करना पड़ता है।'

अप्रामाणिक कानून

२१ अगस्त १९५५ को दिल्ली में मा. लाला हसंराज जी की कोठी पर सर्वश्री प्रकाशदत्त भार्गव, हरिचंद जी, दीनदयाल जी उपस्थित थे। चर्चा के दौरान फौजदारी और दीवानी मुकद्दमों की बात चली तब श्री गुरुजी ने कहा– 'लोग वकालत को कर्मयोग कहते हैं, न जाने क्यों? यदि वकालत कर्मयोग हो तो अन्य धंधे कर्मयोग क्यों न हुए? वकालत से स्वार्थपूर्ति न की जाए, तब भले ही कर्मयोग कह लें।' इतना कहकर उन्होंने पूछा– प्रकाशदत्त जी आप यूनिवर्सिटी में कौन-सा विषय पढ़ाते हैं?

प्रकाशदत्त जी ने उत्तर दिया– 'Law of Limitation.'

श्री गुरुजी बोले– 'It is dishonest law. हमने किसी से रुपया-पैसा लिया तो उसे लौटाना चाहिए। किसी कारण हमें वह संभव न हो सका, तो पुत्र का कर्तव्य है कि वह उसे लौटाए। यह कहना कि तीन साल से अधिक समय हो गया है और देनेवाले ने रुपया-पैसा वापस माँगा नहीं तो धन-राशि लौटाने का दायित्व समाप्त हो जाता है, अप्रामाणिकता है।'

आध्यात्मिक साधना और समाज

सन् १९५६ के फरवरी मास में तैल-मर्दन उपचार हेतु श्री गुरुजी का निवास केरल प्रांत के पट्टांबी गाँव में था। वहाँ श्री दादाराव परमार्थ का पधारना अनपेक्षित था। अतः उनके आगमन से कुछ आश्चर्य सा लग रहा था। गत कुछ वर्षों से आध्यात्मिक साधना में उनकी रुचि बढ़ गई थी, परंतु

आध्यात्मिक विचार-विमर्श में भी उनके विचारों की स्वाभाविक उग्रता प्रकट हुए बिना नहीं रहती थी।

भोजनोत्तर बातचीत प्रारंभ हुई। तैल-चिकित्सा में भोजन के पश्चात् आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे ही विश्राम का क्रम कविराज की सूचनानुसार चलता था। अतः मुक्त रूप से विचार-विनिमय चलता रहा। दादाराव ने अपनी आध्यात्मिक साधना की कुंठा सुलझाने हेतु श्री गुरुजी से अनेक प्रश्न पूछे– 'आत्मा का स्वरूप विशुद्ध पावित्र्य से परिपूर्ण है, अपने अस्थिचर्ममय शरीर के सर्वसामान्य व्यवहार से उसके पावित्र्य एवं निर्मलता में न्यून उत्पन्न होने की आशंका क्यों हो? नीति-अनीति की भावना स्थूल शरीर से ही संबंध रखती है, अतः आध्यात्मिक साधना में इस नीति-अनीति की कल्पना पर आधारित सामाजिक बंधनों का पालन आवश्यक क्यों माना जाना चाहिए? आत्मानुभूति की साधना में रत पुरुष इनसे आबद्ध क्यों रहे?'

श्री गुरुजी लगभग एक मिनट तक मौन रहे। फिर उन्होंने कहा– 'आपका विचार तत्त्वतः सही है, परंतु अपने चारों ओर रहनेवाले समाज के व्यक्तियों का विचार-स्तर इतना ऊँचा रहे, यह संभव नहीं होगा। मनुष्य-जीवन के सामान्य व्यवहारों को ही वे समझ सकते हैं। इस कारण स्वाभाविक रूप से निर्माण होनेवाले समाज व्यवहार के बंधन टालना साधक के लिए असंभव होता है। इन बंधनों का वह अनादर नहीं कर सकता। इसलिए समाज में रहकर साधना करनेवाले मनुष्य को समाज-जीवन के सामान्य-वैचारिक स्तर से निर्मित इन नीति बंधनों का पालन अवश्य करना चाहिए। इन बंधनों से मुक्त होकर साधना करने की इच्छा हो, तब तो समाज-व्यवहार से सुदूर किसी निर्जन जंगल में एकांतवास करना चाहिए, अन्यथा समाज उस साधक को जंगल में जाने को बाध्य करेगा।'

श्री गुरुजी के उत्तर से पूर्ण शंका निरसन का आनंद श्री दादाराव के चेहरे पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ।

सिजेरियन अथवा मैकबेथियन

घटना संभवतः १९५७-५८ की है। प्रवास-क्रम में श्री गुरुजी अमरावती आए थे। उनका निवास नगर-संघचालक डा. भागवत के यहाँ था। उस अवसर पर आयोजित एक बैठक में अनेक डाक्टर उपस्थित थे। बातचीत करते समय शल्य-क्रिया के विषय में चर्चा चल पड़ी। गर्भ में शिशु

आड़ा हो जाए तो उसे शल्य-क्रिया द्वारा बाहर निकालना पड़ता है। इस प्रक्रिया को 'सिजेरियन' कहा जाता है।

श्री गुरुजी ने पूछा– 'क्या इस शल्य-क्रिया का यह नाम उचित है?'

एक डाक्टर ने कहा– 'हाँ। इस नामकरण के पीछे आख्यायिका यह है कि रोम के बादशाह सीजर का जन्म इसी भाँति हुआ था।'

श्री गुरुजी ने पूछा– 'आपमें से किसी ने मैकबेथ पढ़ा है क्या?' यह बताइए कि मैकबेथ का जन्म पहले हुआ था अथवा सीजर का?'

इसका उत्तर स्वयं देते हुए श्री गुरुजी ने बताया– 'ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार मैकबेथ का जन्म सीजर से पहले हुआ था और इसी प्रकार की शल्य-क्रिया से हुआ था। इसलिए इस शल्य-क्रिया को 'मैकबेथियन' कहा जाना चाहिए।'

श्रुति की व्याख्या का अधिकार

सन् १९५८ के प्रवास के समय श्री गुरुजी का निवास-स्थान पालघाट (केरल) के श्री पी.के.नारायण अय्यर की कोठी में था, जहाँ उन दिनों स्वामी चिन्मयानंद जी का गीताज्ञान यज्ञ चल रहा था। सबको पता था कि पूज्य स्वामी जी का जन्म कोचीन में अब्राह्मण कुल में हुआ था। प्रातः पालघाट के नूरणी नामक ब्राह्मण ग्राम से ५-६ कर्मकांडी ब्राह्मण आए, जिनमें 'वेदांत देशिक' के 'शतदूषणी' का खंडन ग्रंथ 'शतभूषणी' लिखनेवाले भी थे। उन्होंने संस्कृत में संभाषण प्रारंभ किया। वे बोले– 'गुरुजी, आप धर्मवेत्ता हैं, आचार-संहिता के ज्ञाता हैं। शास्त्र के अनुसार क्या अब्राह्मण श्रुति ग्रंथों की व्याख्या व अध्यापन कर सकता है?'

श्री गुरुजी उनका निशाना समझ गए। उन्होंने विनम्र भाव से कहा– 'महाशय, मैं तो धर्मवेत्ता नहीं, आचार-संहिता का अधिकृत जानकार भी नहीं। संस्कृत जानता हूँ, यह कहने की धृष्टता भी नहीं करूँगा, किंतु संस्कृत के बारे में जानता अवश्य हूँ।' (यह उत्तर सुन पंडित मुस्कराने लगे।)

पर आपके द्वारा इंगित विषय के बारे में कभी-कभी मेरे मन में भी शंका उत्पन्न होती है– 'क्या, महामंत्र गायत्री के द्रष्टा जन्मजात ब्राह्मण थे? रामायण जिन्होंने हमें दी, वे वाल्मीकि क्या ब्राह्मण थे? श्रीमद्भगवद्गीता जिन्होंने दी, वे दोनों (श्रीकृष्ण व अर्जुन) क्या ब्राह्मण थे? उपनिषद् के

संवादों के विषय में भी यही प्रश्न मन में उठता है। समस्या कठिन-सी लगती है। क्या करूँ? आप लोग ही उत्तर ढूँढने के अधिकारी हैं।' फिर क्या था, संवाद यहीं पर समाप्त हो गया।

सभी मतावलंबियों का श्रद्धास्थान

३ मार्च १९५९ को श्री गुरुजी जालंधर के संघ स्वयंसेवकों द्वारा संचालित व्यायामशाला देखने गए थे। वहाँ कार्य का विवरण देते हुए एक कार्यकर्ता ने बताया– 'गुरुजी, इस स्थान पर हनुमान जी की मूर्ति लगाने का विचार चल रहा है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'ॐ का मंदिर बनाना अधिक श्रेष्ठ रहेगा। ॐ भगवान का सर्वोत्तम नाम़ है, वह सब का पूज्य है। किसी प्रकार के मतावलंबी को उस पर श्रद्धा रखने में संकोच नहीं है।'

देश की सभी भाषाएँ राष्ट्रीय

सन् १९६२ में तमिल संस्कृति के महान समर्थक तथा मदुरै से प्रकाशित होनेवाले दैनिक समाचार-पत्र के संपादक श्री कारिमुत्तु त्यागराज चेटियर ने श्री गुरुजी को चाय के लिए निमंत्रित किया था। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रश्न को लेकर उन दिनों (सन् १९६२) दक्षिण भारत में बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ था। उन्होंने बड़े साहस के साथ श्री गुरुजी से पूछा– 'हमारे देश के लिए हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने की क्या आवश्यकता है?' प्रश्न कर उत्तर के लिए वे बड़ी उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से गुरुजी की ओर देखने लगे।

श्री गुरुजी ने कहा– 'क्यों? मेरे विचार से देश की सभी भाषाएँ, जिन्होंने हमारी संस्कृति के महान विचारों को प्रस्तुत किया है, शत-प्रतिशत राष्ट्रीय हैं। हमारे देश की राष्ट्रभाषा केवल हिंदी ही नहीं है। अतः तमिल भी राष्ट्रभाषाओं में से एक है। लेकिन मुख्य बात यह है कि इतने बड़े देश के लिए एक सामान्य व्यवहार की भाषा की आवश्यकता है, जो आजकल प्रचलित विदेशी भाषा (अंग्रेजी) का स्थान ले सके। क्या आप इस आवश्यकता का अनुभव नहीं करते?'

श्री गुरुजी के उत्तर से पूर्णतया समाधान पाकर श्री चेटियर ने साधुवाद द्वारा मुक्तकंठ से उसकी यथार्थता स्वीकार की।

यह धर्म-परिवर्तन नहीं

चिदम्बरम् (तमिलनाडु), सन् १९६३। 'क्या आप यह मानते हैं कि ईश्वर केवल कुरान को ही पसंद करता है, गीता को नहीं? क्या आपका यह विश्वास है कि जब उसे मुहम्मद के नाम से पुकारा जाए, तभी वह आपके पास आएगा और यदि राम के नाम से उसे बुलाएँ, तो वह आना अस्वीकार कर देगा? क्या आप यह समझते हैं कि ईश्वर केवल उर्दू ही समझ सकता है, अन्य भाषाएँ नहीं?

उपर्युक्त प्रश्नों ने चिदंबरम् (तमिलनाडु) के उन पाँचों श्रोताओं को चक्कर में डाल दिया। ये पाँचों सज्जन उर्दू कालेज के मौलवी थे और चिदंबरम् के रत्न सभापति चेटियर के निवास-स्थान पर, जहाँ कि श्री गुरुजी ठहरे हुए थे, उनसे बातचीत करने के लिए आए थे। बातचीत बड़े स्वाभाविक ढंग से चल रही थी। श्री गुरुजी ने कहना जारी रखा– 'हम हिंदू विश्वास करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार उपासना-पद्धति को अपना सकता है। हमारा मत है कि यदि पूर्ण आस्था रखकर अनन्य भाव से प्रयास किए जाएँ तो उसे सभी प्राप्त कर सकते हैं और यही कारण है कि हिंदू किसी प्रकार के धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। धर्म-परिवर्तन के विचार का उदय तभी होता है, जब यह माना जाता है कि मेरा मत ही सही है। दूसरों को उसे ग्रहण करना चाहिए। वास्तव में हिंदू-धर्म में दूसरे मतों की उपासना के प्रति सहिष्णुता के साथ-साथ सम्मान का भाव भी है।'

उनमें से एक ने पूछा– 'फिर आजकल हिंदू लोग मुसलमान और ईसाइयों का धर्म-परिवर्तन क्यों कर रहे हैं?'

इसका उत्तर देते हुए श्री गुरुजी ने कहा– 'इसे धर्म-परिवर्तन नहीं कह सकते। यह तो उन लोगों को, जिन्होंने परिस्थितिजन्य विवशता के कारण भूतकाल में अपना मत बदला था, एक अवसर दिया जा रहा है कि यदि वे चाहें तो पुनः अपने पूर्वजों के मत को स्वीकार कर सकते हैं। क्या यह सच नहीं है कि बाहर से केवल मुट्ठी-भर मुसलमान आए थे? कारण कुछ भी रहे हों, परंतु शेष सभी ऐसे मुसलमान हैं, जिनको अपनी उपासना-पद्धति बदलकर इस्लाम मत स्वीकार करना पड़ा था। अतएव जैसा कि आपका आशय है, अपने मत को पुनः ग्रहण करना धर्म-परिवर्तन नहीं है।

शरीर-स्वास्थ्य के लिए भगवान की प्रार्थना नहीं करूँगा

पालघाट में सन् १९६५ में पंचकर्म-चिकित्सा की व्यवस्था वैद्यराज महोदय तथा उनके शिष्यगणों ने पूर्ण की। जैसी उनकी परंपरा है, पहले दिन रुग्ण द्वारा दीप प्रज्ज्वलित कर, तैलमर्दन उपचार रोग-मुक्ति में प्रभावी सिद्ध हो और वह पूर्णतया रोगमुक्त हो, इसलिए भगवान की हृदयपूर्वक प्रार्थना की जाती है। उन्होंने दीप-प्रज्ज्वलन की व्यवस्था की।

श्री गुरुजी ऊपर की मंजिल के अपने कमरे में थे। एक स्वयंसवेक दीप-प्रज्ज्वलन का कार्यक्रम उन्हें सूचित करने गया। उसका कथन शांति से सुनकर श्री गुरुजी गंभीर मुद्रा में बोले– 'शरीर के लिए मैं भगवान की प्रार्थना करूँ– यह अनुचित है। प्रार्थना तो वैद्यराज महोदय को करनी चाहिए। वे उपचार कर रहे हैं। अतः औषधोपचार यशस्वी होकर रुग्ण को रोगमुक्त करने हेतु प्रार्थना करना तो उनका काम है। यदि मेरे विषय में मुझे पूछते हो, तो मैंने अपने शरीर-स्वास्थ्य के लिए कभी भी भगवान से याचना नहीं की। अन्य कई बातों के लिए, मैंने भगवान की हृदयपूर्वक प्रार्थना अवश्य की है, परंतु अपने शरीर के लिए याचना करने का विचार मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुआ।'

कुछ समय मौन रहकर उन्होंने कहा– "क्या हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यह उपचार अवश्यमेव यशस्वी होगा, यह कहना तो असंभव है। रोग-मुक्ति के लिए यदि कुछ उपचार आवश्यक है तो वह केवल परमेश्वर ही जानता है। जो कुछ होने का है, उसकी इच्छा से होने दीजिए। 'यथेच्छसि तथा कुरु'– जैसा वह चाहता है, वैसा ही होगा। इस विषय में अपनी भावना एक ही हो सकती है– 'करिष्ये वचनं तव'।"

श्री गुरुजी ने जो कहा वह बात वैद्यराज महोदय को बताई गई। उनके मुख से केवल एक ही शब्द प्रकट हुआ– 'पुण्यात्मा'। उन्होंने वहाँ उपस्थित स्वयंसेवकों से कहा– 'कृपया आप दीप प्रज्ज्वलित करें और अपने सरसंघचालक को रोगमुक्त कराने हेतु भगवान की हृदयपूर्वक प्रार्थना करें।' दीप जलाकर सब ने हृदयपूर्वक प्रार्थना की और चिकित्सा प्रारंभ हुई।

सुलग रही हैं भीतर-भीतर प्रलयंकर ज्वालाएँ

सन् १९६५ में तैलमर्दन उपचार के लिए श्री गुरुजी पालघाट (केरल) में थे। एक दिन कैप्टन मेनन उनसे मिलने आए। हिंदुओं की दैन्यावस्था, मठ-मंदिरों एवं अन्यान्य हिंदू-संस्थाओं की दुर्दशा उन्होंने व्यक्त की। केरल के मुस्लिम बहुल एरनाड तहसील में चल रहा बलात् मतपरिवर्तन और महिलाओं के अपहरण की करुण कथा उन्होंने सुनाई। सन् १९२१ का मोपला कांड इसी कुख्यात क्षेत्र में हुआ था। इस करुणाजनक वृत्तांत-कथन में उनके अंतिम भावपूर्ण और आवेश पूर्ण शब्द थे– 'या तो अभी, अन्यथा कभी नहीं। यदि इसी समय न किया तो करने के लिए कुछ रहेगा नहीं।' आगे चलकर उन्होंने अपनी फौजी शैली में श्री गुरुजी से कहा– 'मुझे आदेश दीजिए।'

श्री गुरुजी उनकी आँखों में गौर से देखकर मुस्कराए। कैप्टन मेनन को एक क्षण लगा कि श्री गुरुजी को अपनी बात जँच गई है। श्री गुरुजी ने प्रशांत मुद्रा में कहा– 'देखो, प्रारंभ में हमें मूलभूत ऐसा बहुत कुछ काम करना आवश्यक है। प्रदीर्घ प्रयत्नों से हमें संगठन खड़ा करना होगा। सेना में रहने के कारण शत्रु को परास्त करने की योजना करने के पूर्व संगठन आवश्यक रहता है, यह आप हमसे अधिक जानते हैं। अपने देश में उत्तर दिशा का प्रहरी नगाधिराज हिमालय हमारा आदर्श है। उसका ऊपरी दर्शन तो हिमाच्छादित चिरशांति का है, परंतु भीतर का ज्वालामुखी कभी भी फूटकर संसार नष्ट करने की क्षमता रखता है।'

शिवजी की प्रदक्षिणा

१६ फरवरी १९६६ को शिवरात्रि का पर्व था। श्री गुरुजी प्रांतीय शिविर के लिए कालीकट पधारे थे। प्रातः स्नान के बाद वे पास के ही एक शिव-मंदिर में गए। पूजा के पश्चात् पूर्व दिशा से शिवलिंग की प्रदक्षिणा प्रारंभ की। साथ गए सारे कार्यकर्ता उनके साथ प्रदक्षिणा में सम्मिलित हुए। दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा तक तीन चतुर्थांश-प्रदक्षिणा कर वे वहाँ रुके। पुनः पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर की ओर आकर प्रथम प्रदक्षिणा का चौथा हिस्सा पूर्ण किया।

प्रथम तीन चतुर्थांश प्रदक्षिणा करने के पश्चात् विपरीत दिशा में प्रदक्षिणा कर प्रथम प्रदक्षिणा का चौथा हिस्सा पूर्ण करने की केरलीय

पद्धति है। जो केरलीय नहीं थे, उन्हें प्रदक्षिणा की यह पद्धति कुछ अटपटी-सी लगी। उनमें से एक ने कुछ उत्तेजना से कहा– 'उल्टी प्रदक्षिणा की यह रीति अहिंदू लगती है।' वह कुछ और बोलनेवाला था, परंतु श्री गुरुजी ने उसे बीच में ही रोककर कहा– 'ऐसा नहीं है। इस प्रकार की प्रदक्षिणा भी अर्थपूर्ण है। शिवलिंग की प्रदक्षिणा इस प्रकार से करना ही वैशिष्ट्यपूर्ण है। इसका तथ्य हमें समझ लेना चाहिए। शिवलिंग पर हुए अभिषेक का जल उत्तर दिशा की ओर जाता है। प्रदक्षिणा करते समय उस पवित्र जलप्रवाह तक जाकर लौटने का कारण स्पष्ट है। अभिषेक का जल, तीर्थजल है। उसका प्रवाह हमें गंगाजल सा पवित्र एवं श्रद्धेय है। किसी भी पवित्र और श्रद्धास्पद वस्तु को लाँघकार नहीं जाना चाहिए। यह पूर्णतः हिंदू रिवाज ही है और सही है।

शिव का तृतीय नेत्र

१८ से २० फरवरी १९६६ को कालिकत (केरल) में संपन्न हुए स्वयंसेवकों के शिविर में श्री गुरुजी उपस्थित थे। उनकी निवास-व्यवस्था जिस कमरे में थी, उसके ठीक सामने ही सुप्रसिद्ध शिव-मंदिर था। एक कार्यकर्ता ने कहा– 'शिव भगवान आपके कमरे की ओर देख रहे हैं। क्या वे अपने तृतीय नेत्र से दृष्टिक्षेप कर रहे हैं? उनका तृतीय नेत्र तो बड़ा डरावना कहा गया है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'श्री शिवजी के हृदय में जिनके प्रति सद्भावना रहती है, उनके लिए तृतीय नेत्र भयकारक नहीं, अपितु कृपा करनेवाला ही होता है। स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि रौद्र रूप में भी भगवान का दर्शन कर उसकी पूजा करें। अपना संघकार्य ऐसा ही है।'

विवेकानंद साहित्य

२१ जनवरी १९६७ को त्रिश्शुर में दोपहर को रामकृष्ण मिशन के स्वामी मृडानंद जी पधारे थे। उनके साथ जिला-संघचालक विख्यात लेखक श्री राम मेनन और स्थानीय शिक्षा-संस्था के प्राचार्य श्री शंकर मेनन थे।

श्री राम मेनन– 'रामकृष्ण मिशन पास ही है। कुछ दिन पूर्व रामकृष्ण मिशन के श्रद्धेय अध्यक्ष महोदय वहाँ पधारे थे। भगवान रामकृष्ण

के मंदिर में प्राणप्रतिष्ठा का समारोह था। स्वामी जी का संपूर्ण साहित्य मलयालम भाषा में प्रकाशित करने का उनका विचार है। वह प्रकाशन स्वामी जी के स्मारकस्वरूप ही होगा।'

श्री गुरुजी— 'आजकल हो रहे प्रकाशन का मुझे पता नहीं है। श्रद्धेय स्वामी जी ने जो लिखा है या भाषणों में कहा है, क्या पूर्ण साहित्य वैसा ही प्रकाशित करते हैं? श्रद्धेय स्वामी जी स्पष्टवक्ता थे। इसलिए साफ शब्दों में बोलते थे। परंतु इन दिनों हमें असुविधाजनक प्रतीत होनेवाले उनके शब्दों एवं वाक्यों को निकालकर प्रकाशन करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।'

नई पीढ़ी में संस्कारों का अभाव

२१ जनवरी १६६७ को त्रिश्शुर में अधिवक्ता के.के.उण्णी के घर विख्यात लेखक एवं जिला-संघचालक राम मेनन, प्राचार्य शंकर मेनन, प्रांत-प्रचारक भास्करराव, आबाजी थत्ते उपस्थित थे। उस समय विशेष रूप से नई पीढ़ी में बढ़ रही सांस्कृतिक अवनति पर बातचीत का सिलसिला चल पड़ा।

तब श्री गुरुजी ने कहा— 'यही बात है। इसी से वे ईसाई प्रचार का शिकार बन जाते हैं। ईसाई शिक्षा-संस्थाओं में भेजे जाने से लड़के उनकी प्रार्थना सीखते हैं, प्रार्थना के साथ ईसाई जीवन-पद्धति का भी उनके मन पर असर होने लगता है। परंतु मेरी शिकायत तो अपने अनुकूल सोचनेवाले माता-पिता के बारे में है। हम अपने बच्चों को घर में कैसी शिक्षा देते हैं? वे रेडियो सुनते हैं। चित्रपट देखते हैं। इसी कारण परंपरा से प्राप्त हमारे जीवनादर्श से वे भ्रष्ट होने लगते हैं। केवल यहाँ तक ही भ्रष्टता सीमित नहीं रहती। एक घर की बहू-माँ का मुझे स्मरण है। समझदार होकर भी वह भोजनगृह में अपने छोटे-बच्चे को सुलाने के लिए अभद्र गीत का गायन कर रही थी। यदि बच्चे अपने माता-पिता का इस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार देखेंगे, तब वे उनका अनुसरण क्यों नहीं करेंगे?'

'ऐसे घरों में बच्चे अपने संस्कारों एवं अपनी जीवन पद्धति में विकसित नहीं हो पाते। परिणामतः ईसाई मिशनरियों के बहकावे में आसानी से आ जाते हैं। आठ-नौ साल के एक लड़के का मुझे पता है।

छुट्टियों में वह घर आया था। उसके माता-पिता के यह कहने पर कि जन्माष्टमी का व्रत रखो, लड़के ने माता-पिता से पूछा, 'ऐसे व्यभिचारी व्यक्ति का जन्मदिन हम क्यों मनाते हैं? ईसा मसीह का जन्मदिन हम क्यों न मनाएँ?' आठ-नौ साल का लड़का अपने माँ-बाप से ऐसा प्रश्न पूछे, क्या आप कल्पना कर सकते हैं?'

'जब हम छोटे थे, तब घर का वातावरण भिन्न था। सुबह माता के सुस्वर स्तोत्रपाठ से हमारी नींद खुलती थी। मेरी माँ लिखना-पढ़ना नहीं जानती थीं। अपनी आयु के उत्तरार्ध में उसका देवनागरी लिपि से परिचय हुआ, तब वह थोड़ा-बहुत मराठी पढ़ सकती थीं। परंतु उन्हें अनेक स्तोत्र कंठस्थ थे। मेरी आयु सात साल की होने तक इन स्तोत्रों को सुनकर ही अनेक स्तोत्र मुझे कंठस्थ हो गए थे। घर में रामायण, महाभारत और भगवद्गीता का पाठ चलता था। ऐसे वातावरण में हमारे जीवन का प्रारंभिक विकास हुआ।'

श्री शंकर मेनन— 'हमारे नवयुवकों की यह प्रवृत्ति मैं भली-भाँति जानता हूँ। वे तो सांस्कृतिक दिवालिएपन की ओर बढ़ रहे हैं। इसे कैसे रोका जाए? क्या हमारे साधु-संन्यासी कुछ शिक्षा-संस्थाएँ प्रारंभ नहीं कर सकते?'

श्री गुरुजी— 'वे अवश्य प्रारंभ कर सकते हैं। उत्तरप्रदेश और अन्य प्रदेशों में ऐसी शिक्षा-संस्थाएँ काम कर रही हैं, परंतु उन्हें केवल ऐहिक (सेक्युलर) शिक्षा देने के लिए बाध्य कर ऐहिकता का वातावरण प्रोत्साहित करना अपरिहार्य किया जा रहा है। हमारी धार्मिक संस्थाएँ अनेक हैं, परंतु उनका दृष्टिकोण अति विशाल है। हम चाहते हैं कि राष्ट्रभक्ति से प्रेरित काम करना उनकी प्रथम आवश्यकता हो। दृष्टिकोण में औदार्य बाद में आता रहेगा। दृष्टिकोण को विशाल बनाना कुछ समय रुक सकता है। ऐसी संस्थाओं के संचालन में ठीक चयन किए हुए लोग ही उपयोगी सिद्ध होंगे, अन्यथा अधिक रुपया-पैसा मिलने पर वे इन संस्थाओं को छोड़कर चले जाएँगे।'

'मुझे इसका एक कटु अनुभव है। एक युवक ने मेरे पास आकर कहा कि ऐसी ही सेवाभावी संस्था में काम करने की उसकी आकांक्षा है। नागपुर की एक संस्था में नौकरी प्राप्त करवाने में मैं उसकी सिफारिश करूँ। मुझे संदेह था कि किसी अच्छी नौकरी के लिए वह युवक इस संस्था

को छोड़ देगा। युवक ने मुझे आश्वस्त कराने का प्रयास किया कि किसी भी हालत में वह नौकरी छोड़कर नहीं जाएगा। मैंने उसकी सिफारिश तो की, साथ ही संस्था-प्रमुखों को कहा कि उसके समर्पण भाव से काम करने की क्षमता में मुझे संदेह है। जितनी कालावधि तक वह उस संस्था में रहा, काम अच्छा किया, परंतु अधिक धन-प्राप्ति हेतु उसने यह नौकरी छोड़ दी। इसलिए उत्कट राष्ट्रभक्ति से प्रेरित कार्यकर्ता ही सेवाभावी संस्थाओं को चलाने हेतु आगे आने चाहिए। संस्था सुचारु रूप से चलाने के लिए तो धन उपलब्ध हो जाता है, चिंता कार्यकर्ताओं के विषय में ही रहती है।'

ज्योतिष-शास्त्र का उद्गम

२४ जनवरी १९६७ को कोट्टायम (केरल) में प्रांत संघचालक श्री गोविंद मेनन के घर कुछ प्रौढ़ लोगों के साथ श्री गुरुजी बातचीत कर रहे थे। 'केसरी' दिनदर्शिका देखने पर श्री गुरुजी ने कहा– 'कैसी अपूर्व बात है कि दुनिया में सर्वदूर सप्ताह के सात दिनों के नाम समान हैं। भाषा-भेद के कारण शब्द भिन्न होंगे, परंतु ग्रहों के नाम वही हैं। ऐसा माना गया है कि विश्व में भारतीय ज्योतिष-विज्ञान का प्रचार-प्रसार अरब और ग्रीकों के द्वारा हुआ है। आज पाश्चात्य ज्योतिष विज्ञान बहुत प्रगत हो गया है, यह मानते हुए भी ज्योतिष शास्त्र का प्रारंभ भारत में हुआ, यह नकारा नहीं जा सकता। अपने यहाँ नवग्रहों की कल्पना थी। राहु और केतु पृथ्वी और चंद्र की भ्रमण कक्षाओं के छेदनेवाले बिंदु मात्र हैं। इसलिए उनको छोड़कर शेष सात ग्रह बचते हैं। सप्ताह के सात दिनों को भारत में इन्हीं सात ग्रहों के नाम दिए गए थे। दुनिया में सबने उन्हें माना। अब तक वे वैसे ही कायम रखे गए हैं।

संपूर्ण वर्ष का बारह महीनों में विभाजन, यह भी दुनिया को भारत की ही देन है। प्रचलित ईसाई दिनदर्शिका ग्रिगेरियन है। प्रारंभ में रोमन लोग दस ही महीने मानते थे। सितंबर (सातवाँ), अक्तूबर (आठवाँ), नवंबर (नौवाँ) और दिसंबर याने दसवाँ। आखरी महीना वे दिसंबर ही मानते थे। जब रोमन शास्त्रज्ञ भारतीय ज्योतिर्विदों के संपर्क में आए, तब उन्होंने जाना कि दस महीनों का वर्ष शास्त्रीय दृष्टि से गलत है। वर्ष बारह महीनों का ही होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपनी दिनदर्शिका में दो महीने जोड़ लिए और उनके नाम दो सुप्रसिद्ध रोमन सम्राटों के नाम पर

रखे। ज्युलियस सीझर के नाम से जुलाई और आगष्ट सीझर के नाम से अगस्त। ये अतिरिक्त महीने स्वीकार कर बारह महीनों का वर्ष बनाया।

ईसा मसीह का जन्म दिन २५ दिसंबर माना गया है, यह भी ऐसी ही विचित्र बात है। ईसा का जन्म दिवस किसी को ज्ञात नहीं है। उनको इतना ही पता है कि ईसा का जन्म होते ही पूर्व की ओर एक तेजस्वी तारा दिखाई दिया और सात जानकार चतुर लोगों ने उस दिशा में जाकर ईसा मसीह को देखा। इसका एक निष्कर्ष यह है कि संभवतः यह प्रातःकाल का समय था। नवयुग का प्रारंभ यह कल्पना रहने से मकर संक्रांति यह संदर्भ-दिन माना गया। सूर्य का मकर राशि में संक्रमण २३ दिसंबर के आसपास होता है। उन लोगों ने २५ दिसंबर मान लिया और उसी दिन ईसा का जन्म हुआ, ऐसा ग्रिगेरियन दिनदर्शिका में लिखा गया।

क्या आपको पता है, पाश्चात्य लोग रात्रि के १२ बजे के पश्चात् दूसरे दिन का आरंभ क्यों मानते हैं? ज्योतिष-शास्त्र के विषय में दुनिया भारत के अनुकूल सोचना, चलना उचित समझती है। हमारे यहाँ सूर्योदय से कुछ पूर्व दिन का प्रारंभ माना जाता है। उस समय यूरोपीय देशों में मध्यरात्रि रहती है। क्योंकि भारत में घड़ी लगभग साढ़े पाँच घंटे आगे रहती है। इसलिए उन्होंने भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ही मध्यरात्रि के पश्चात दूसरे दिन का प्रारंभ माना है।'

प्राथमिक संस्कार घर में ही

२५ जनवरी १९६७ को कोल्लम (केरल) में कुछ प्रौढ़ सज्जन श्री पणिक्कर के निवास-स्थान पर श्री गुरुजी से मिलने आए थे। श्री पणिक्कर ने शिक्षण-संस्थाओं का स्तर नीचे गिरने की शिकायत करते हुए कहा, 'अब लड़कों को ईसाई शिक्षा संस्थाओं में भेजना आवश्यक हो गया है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'इस प्रकार की मनोवृत्ति बनाने में माता-पिता ही दोषी हैं। शिक्षण-संस्थाओं के स्तर में गिरावट आई है, यह कहने का कोई अर्थ नहीं। अपनी शिक्षा-संस्थाओं में ही लड़कों को भरती कर शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाने के लिए उन संस्था के संचालकों को बाध्य करना चाहिए। यदि लड़कों को आप मिशनरी पाठशालाओं में भेजेंगे, तो वे मिशनरी संस्कृति को अपनाएँगे और अपनी पाठशालाओं में निम्न मध्यवर्गीय विद्यार्थी रहने के कारण उन संस्थाओं के शिक्षा स्तर में गिरावट आएगी ही।'

श्री पणिक्कर– 'परंतु कॉन्वेंट पाठशाला में अंग्रेजी अच्छी पढ़ाते हैं। अब तो दुनिया-भर में लोग अंग्रेजी भाषा जानते हैं।'

श्री गुरुजी– 'यह एक भोलेपन की भावना है। वह अंतर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है। फ्रांस, इंग्लैंड के अति निकट होने पर भी वहाँ अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं है।'

श्री अण्णाजी– 'अफ्रीका में उन्होंने एक दिन में ही अंग्रेजी को पूर्णतया हटा दिया है।'

श्री गुरुजी– 'अफ्रीका ही क्यों, बर्मा (म्यांमार) और लंका में प्रारंभिक कक्षाओं में से अंग्रेजी निकाल बाहर कर दी गई है। जो लोग भारत से श्रीलंका गए हैं, उन्होंने वहाँ भाषा की समस्या निर्माण की है। अब ऐसे भारतीयों को वहाँ से बाहर निकाला जा रहा है। अपने यहाँ कठिनाई यह है कि अंग्रेजी के नाम पर अपने लड़के भारतीय संस्कृति व जीवन-पद्धति से विमुख होकर कट जाएँगे।'

श्री पणिक्कर– 'कॉन्वेंट में जाकर वे उच्छृंखल बनते हैं।'

श्री गुरुजी– 'हाँ। लड़के घर में कुछ भी संस्कार ग्रहण करते नहीं हैं। यदि अपनी संस्कृति के अनुरूप घरों में वायुमंडल रहता, तो राष्ट्रीय वृत्ति में इतना अधःपतन नहीं होता। घर में इस प्रकार वायुमंडल न रहने के लिए मैं तो माता-पिता को ही दोष दूँगा। हमारे बचपन में वेदघोष सुनाई देता था। सुबह हम माता-पिता से उत्तमोत्तम स्तोत्र सुनते थे। ये स्तोत्र अनायास कंठस्थ हो जाते थे। आप तो जानते हैं कि श्रेष्ठ महापुरुषों के प्राथमिक संस्कार घर में ही हुए। घर में दादी माँ रहती थीं। बच्चों के लिए कौवे-चिड़ियों और पौराणिक कथाओं का भंडार उनके पास रहता था। ऐसी अनेक कथाएँ मुझे याद हैं। अपने पराक्रमी पूर्वजों के बारे में वे बताया करती थीं। आज हम बच्चों को कुछ नहीं दे पाते। माताओं को भी उसकी जानकारी नहीं है। ऐसी स्थिति में यह अपेक्षा आप कैसे कर सकेंगे कि लड़के अपनी संस्कृति से अनुप्राणित रहें?'

संस्कृति के संस्कार नई पीढ़ी में संक्रमित करने का प्रयास इंडोनेशिया में आज भी होता है। उपासना-पंथ इस्लाम रहने पर भी वे रामायण और महाभारत को भूले नहीं हैं। इन महाकाव्यों की कथा दर्शानेवाले चित्र और उन चित्रों के नीचे कथा-प्रसंग व्यक्त करनेवाला छोटा वाक्य उनकी पाठ्यपुस्तकों में मैंने देखा है। इन प्रेरक कथाओं को

पढ़ते-पढ़ते लड़के संस्कृति के अनुकूल रहते हुए बड़े होते हैं। वे कहते हैं कि यद्यपि वे इस्लाम मतानुयायी हैं, पर उनके यहाँ संस्कृति प्रवाह तो भारत से ही आया हुआ है। इस कारण रामायण और महाभारत को भूलना उनके लिए असंभव है। सुकर्णो यह सुकर्ण हैं। उनकी पत्नी का नाम पद्मावती है। विरोधी नेता का नाम सुहार्तो है। यह भी सुहृत् का अपभ्रंश है।'

शिक्षा का अंग्रेजी माध्यम घातक

३१ जनवरी १९६७ की रात्रि में स्वयंसेवकों के साथ सहज वार्तालाप हो रहा था। प्राथमिक अवस्था से ही स्कूलों में अंग्रेजी माध्यम प्रारंभ करने के कॉन्वेन्ट स्कूलों के प्रयास के बारे में श्री गुरुजी बोल रहे थे। उन्होंने कहा– 'कॉन्वेंट स्कूल में विद्यार्थी अंग्रेजी में बोलें– ऐसा आग्रह रहता है। उनसे बड़े लोग जहाँ तक बन सके, घर में भी अंग्रेजी में बोलें, ऐसा वहाँ के अध्यापकों का मत है। इससे विद्यार्थी अंग्रेजी में ही सोचेगा और वह अंग्रेजी भाषा में प्रावीण्य संपादन करेगा, ऐसा तर्क दिया जाता है। प्राथमिक कक्षा में भी अंग्रेजी माध्यम इसलिए रखा जाता है। यह एक महान संकट है। आज भले ही उसका स्वरूप सूक्ष्म है। प्राथमिक कक्षा से अंग्रेजी में सोचने-बोलनेवाले विद्यार्थियों के लिए उनकी रुचि के अनुकूल साहित्य निर्माण होगा जो अंग्रेजी रीतिरिवाज, रहन-सहन को बढ़ावा देनेवाला रहेगा। इससे निश्चित ही विद्यार्थी अपनी सांस्कृतिक गरिमा से अछूता रहेगा। सांस्कृतिक जीवन से हमारा नाता तोड़ने का अंग्रेजों का यह सोचा-समझा प्रयास है।'

राष्ट्रजीवन के साथ समरसता

२५ अगस्त १९६७ को श्री गुरुजी से विचार-विनिमय करने दो अमरीकी सज्जन आए थे। वे ईसाई और मुसलमानों के बारे में श्री गुरुजी का दृष्टिकोण जानना चाहते थे।

श्री गुरुजी ने उनसे पूछा– 'आप अमरीका के नागरिक हैं। अमरीका में नागरिकों से सरकार की क्या अपेक्षा रहती है? कुछ नागरिक यदि जेफरसन, फ्रैंकलिन, वॉशिंगटन, जैसे श्रद्धेय महापुरुषों की भर्त्सना करते हैं तो क्या आप उनको अच्छा नागरिक कहेंगे? आपके श्रद्धास्पद

स्मारकों का ध्वंस करनेवाले नागरिकों के विषय में आपका क्या दृष्टिकोण रहेगा?'

उन्होंने कहा– 'निश्चय ही सबको राष्ट्र-जीवन के मुख्य प्रवाह के अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। उन्हें राष्ट्रीय जीवन के मुख्य प्रवाह में समरस होना ही पड़ेगा।

श्री गुरुजी ने कहा– 'हम इसी दृष्टिकोण से भारत के विषय में सोचते हैं कि सबने राष्ट्र-जीवन की मुख्यधारा के साथ समरस होना ही चाहिए।'

हिंदुओं का मनोबल बढ़ाओ

कालीकट में १९ जनवरी १९६९ की दोपहर एडवोकेट रतनसिंह जी अपने सहकारी के साथ पधारे थे। उन्होंने बताया कि तानूर में समुद्रतट पर बसे हिंदू हट जाएँ, इस हेतु दबाव बढ़ रहा है। बहुतांश हिंदू वह क्षेत्र छोड़कर अन्यत्र चले गए हैं। अब केवल ३-४ हिंदू परिवार ही वहाँ बचे हैं।

उनकी इस सूचना पर श्री गुरुजी ने कहा– 'अपना स्थान छोड़कर चले गए हिंदुओं का उसी क्षेत्र में पुनर्वसन करने का प्रयास हमें अवश्य ही करना चाहिए। हिंदुओं की एक विशेषता है कि जब वे बहुसंख्य रहते हैं, तब हुल्लड़बाजी के कारण मुसलमानों से डरते हैं। जहाँ वे अल्पसंख्या में होते हैं, वहाँ अल्पसंख्या में होने के कारण डरते हैं। मुसलमान तो केवल बलप्रयोग की भाषा ही समझता है। इसलिए इसी भाषा में समझाकर उनसे अच्छे व्यवहार की अपेक्षा कर सकते हैं।'

'अच्छे सुशिक्षित हिंदुओं की तुलना में सामान्य मुसलमान भी अधिक चतुर रहता है। राजनीतिक दृष्टि से उसकी सूझ-बूझ अधिक रहती है। वह कुशलता से अपने छोटे-छोटे प्रभाव क्षेत्र निर्माण करता है। मुंबई में हर चौराहे पर यह अनुभव होता है। युद्धनीति की दृष्टि से प्रत्येक चौराहे के विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान उन्होंने अपने कब्जे में सुरक्षित कर रखें हैं। उस स्थान पर मस्जिद, छोटा-सा होटल, कपड़े की दुकान या ऐसा ही छोटा-बड़ा व्यवसाय चलाने की व्यवस्था की है। जहाँ काम-धाम करते-करते उस चौराहे का नियंत्रण युद्धनीति में हो सके,

ऐसा ही वह स्थान है। मैसूर में मैंने श्री यादवराव जी को दिखाया था कि स्थान-स्थान पर मुसलमान फकीर अपनी झोंपड़ी बनाकर रह रहे हैं। कहीं किसी फकीर के नाम पर सफेद पत्थर रखकर झंडा गाड़ दिया है। आने-जानेवाले वहाँ दस-पाँच पैसे चढ़ा देते हैं। इस प्रकार एकत्रित हुई धन-राशि का उपयोग हिंदू हितविरोधी कार्यवाही करने के लिए ही होता है। मुसलमान मानो हमेशा लड़ने-झगड़ने की तैयारी में ही लगे रहते हैं।'

इतिहास पुनर्लेखन

२६ जनवरी १६६६ को त्रिवेंद्रम (केरल) के हिंदुस्थान समाचार बहुभाषी समाचार संस्था के श्री श्रीकृष्ण शर्मा श्री गुरूजी से मिलने आए थे। उन्होंने श्री गुरुजी से कहा- 'मुहम्मद कोया केरल के शिक्षा मंत्री हैं। उन्होंने मेरे एक परिचित मित्र श्री रामचंद्रन, जो एक प्रसिद्ध इतिहासकार हैं, की अर्हता अस्वीकार कर, केरल इतिहास का पुनर्लेखन करने के लिए केरल शासकीय प्रकाशन विभाग प्रधान संपादक श्री करीम पर यह दायित्व सौंपा है।'

उनके इस कथन पर श्री गुरुजी ने कहा- 'अपना पुराना गौरवमय इतिहास विस्मृत कर उपन्यास जैसा केरल का इतिहास लिखने में श्री रामचंद्रन जी निरुपयोगी ही सिद्ध होंगे। इस काम को तो श्री करीम ही कर सकेंगे। पाकिस्तान ने अपना पाँच हजार वर्षों का इतिहास अभी-अभी प्रकाशित किया है। लगता है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो से भी प्राचीन गौरव-गाथा उसमें सम्मिलित की है। पाँच हजार वर्ष पूर्व की परंपरा में वे यदि आस्था रखकर उसका सम्मान करते हैं और उन महापुरुषों का समादर करते हैं, तो हमारे लिए अच्छा ही है। आज का मुलतान, जो 'मूलस्थान' के नाम से जाना जाता रहा और जहाँ हिरण्यकश्यप का उद्धार करने भगवान नरसिंह के रूप में प्रकट हुए थे, वहाँ आगे चलकर वे कभी नरसिंह भगवान की पूजा भी कर सकते हैं। आज ईरान, जो एक समय 'पर्शिया' नाम से मशहूर था, में पिछले पाँच हजार वर्षों के इतिहास और परंपरा के प्रति श्रद्धा के भाव उमड़ रहे हैं। वे खुसरो और रुस्तम की पूजा कर रहे हैं।

राष्ट्रीय वेश भूषा

३० जनवरी १९६९ को कोल्लम (केरल) में दोपहर को कार्यकर्ताओं से बातचीत में विषय निकला कि क्या पायजामा अपना राष्ट्रीय वेश माना जाए?

श्री गुरुजी ने कहा– 'सचमुच ही पायजामा अपना राष्ट्रीय वेश है। बाहरी लोगों की वेशभूषा का वह अनुकरण नहीं है। उत्तर भारत के पर्वतीय अंचल में पायजामा जैसी बनावट के वस्त्र उपयोग में लाए जाते थे। पूर्वकाल में एक समय नेपाल महाराजा ने पर्शिया के शाह को उपहार के नाते कुछ वस्तुएँ भेजीं थी, जिनमें वस्त्राभूषण के साथ-साथ पायजामा भी था, जो शाह को बहुत पसंद आया। उसका उपयोग करना शाह द्वारा प्रारंभ करने पर लोगों ने भी उसका अनुकरण किया। बाद में जब पर्शिया के लोग भारत में विजेता के रूप में आए, उस समय वे पायजामे का उपयोग करते थे। इसलिए भारत के लोगों ने उसे परकीय वेशभूषा मान लिया। जबकि उसे पहनने की परिपाटी भारत में ही थी और पश्चिमी लोगों ने हमारा ही अनुकरण कर उसे अपनाया है।'

श्री यादवराव– 'पायजामा और पतलून में मात्र कपड़े की मोटाई का ही तो फर्क है।'

श्री गुरुजी– 'आपका कहना सही है। अपनी भारतीय वेशभूषा के नाते पतलून पहनने में प्रकट होनेवाली दास-प्रवृत्ति मुझे पसंद नहीं है। हम कहते अवश्य हैं कि हम स्वाधीन हैं, परंतु मानसिक गुलामी से हम अभी तक मुक्त नहीं हो पाए हैं। नागपुर में एक स्कॉटिश चर्च द्वारा चलाया हुआ कॉलेज है, वहाँ मैं विद्यार्थी था। एक बार हमने पूरी महाराष्ट्रीय पद्धति से भोजन का आयोजन किया था। खानपान की हर चीज महाराष्ट्रीय रीति-रिवाज के अनुसार बनाने का और धोती पहनकर खुले बदन भोजन करने का सबने सोचा था। प्राचार्य को मिलाकर केवल तीन यूरोपीय सज्जन भोजन के लिए निमंत्रित थे। कट्टर ईसाई मिशनरी रहने के कारण प्राचार्य महोदय ने महाराष्ट्रीय वेशभूषा परिधान कर उपस्थित रहने से इनकार किया। परंतु प्राचार्य से अधिक वृद्ध एक यूरोपीय प्राध्यापक को निमंत्रित करने जब हम पहुँचे और महाराष्ट्रीय वेशभूषा में सम्मिलित होने का अनुरोध किया, तब उन्होंने सोच-समझकर हमारी प्रार्थना स्वीकार की। उनकी केवल एक कठिनाई थी। आदत न होने से धोती ढीली रहेगी और

भोजन के पश्चात् खड़े रहते समय नीचे खिसक जाने की आशंका उन्होंने व्यक्त की। हमने उनको आश्वस्त किया कि धोती पक्की कसी रहेगी। वे धोती पहनकर भोजन में उपस्थित हुए। उन्होंने प्राचार्य महोदय से कहा– सद्हेतु से प्रेरित ये विद्यार्थी हमसे अनुरोध करते हैं, तो आप उनका कहना क्यों नहीं मानते? अपने से वृद्ध सहकारी प्राध्यापक को धोती पहने भोजन करते देखकर प्राचार्य महोदय भी आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने भी हमारी प्रार्थना स्वीकार की। धोती पहने सभी यूरोपीयों ने पूर्ण महाराष्ट्रीय पद्धति से बैठकर हाथ से भोजन किया। अपनी पद्धति का यथोचित स्वाभिमान रखने का यह अच्छा परिणाम उन दिनों भी निकला था।'

'ईश्वरचंद्र विद्यासागर का प्रसंग भी इस दृष्टि से उद्बोधक है। उनकी वेशभूषा आप जानते होंगे– बंगाली पद्धति की धोती और बदन पर लपेटा हुआ एक ढीला-सा उत्तरीय। वे इतने ही कपड़े परिधान करते थे। सर्दी के दिनों में केवल एक छोटा कुरता पहना करते थे। वायसराय के कार्यकारी मंडल में उनकी नियुक्ति हुई। शिक्षा क्षेत्र में मार्गदर्शक वह समिति उन दिनों की सर्वोच्च समिति थी। समिति की बैठक में जाते समय पूर्ण अंग्रेजी ढँग से कपड़े पहनने का उनके मित्रों ने आग्रह किया। कुछ अधिक आग्रही मित्रों ने उनके लिए अंग्रेजी ढंग के कपड़े भी सिलवाए। एक दिन सुबह टहलते समय उन्होंने देखा कि सामने ही अवध के एक पेंशनर नवाब अपने दो-तीन बंदों के साथ आराम से चल रहे थे। उन दिनों में इन नवाबों की निवास-व्यवस्था कोलकाता में की जाती थी और उनको निवृत्ति वेतन अंग्रेजों से प्राप्त होता था। ईश्वरचंद्र जी ने देखा कि नवाब का एक नौकर सामने से दौड़ते हुए आया और नवाब साहब से बोला– हुजूर, आपके घर को आग लग गई है। आपको तुरंत ही घर जाने की आवश्यकता है। वह नौकर तो चला गया, परंतु इस नवाब ने अपनी चलने की गति तेज करने का बिलकुल प्रयास नहीं किया। वे वैसी ही शानदार नवाबी चाल से चलते रहे। आग बढ़ने पर दूसरा नौकर जल्दी चलने की प्रार्थना करने दौड़ता हुआ आया। नवाब ने अपनी शाही धीमी चाल तेज नहीं की। मकान भड़क उठने पर जब तीसरा नौकर दौड़े-दौड़े आया, तब क्षुब्ध होकर नवाब ने कहा– क्या एक छोटे से मकान के लिए अवध का नवाब अपने बाप-दादाओं की चाल छोड़ सकता है? वह अपनी शानभरी धीमी चाल से ही चलते रहे।'

'ईश्वरचंद्र जी यह सब ध्यान देकर सुन रहे थे। उन पर इसका

गहरा असर हुआ और उन्होंने वायसराय के साथ होने वाली कार्यकारी-मंडल की बैठक में अंग्रेजी वेशभूषा न पहनने का निश्चय किया। बंगाली ढंग के वस्त्र-प्रावरण पहनकर ही वे उपस्थित हुए। उन्हीं को कार्यकारी मंडल की बैठक में सबसे अधिक सम्मान प्राप्त हुआ। उनका स्वागत करने व विदा करने स्वयं वाइसराय मंच से उतरकर आए।'

'जापान के लोग भी अपनी पारंपरिक वेशभूषा पहनते हैं। अमरीका के आक्रमण के पश्चात् कुछ लोग बाहरी कामधाम करते समय अमरीकी वेश पहनने लगे हैं, परंतु घर लौटते ही वे अपना पारंपरिक किमोनो ही पहनते हैं।'

'जब अंग्रजों का राज्य था, तब हर वर्ष अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिनिधि के नाते वाइसराय देशी राजाओं का सम्मेलन आमंत्रित करते थे। संस्थानों के प्रतिनिधि राजपुत्र अपना पारंपरिक वेश परिधान कर ही दरबार में उपस्थित रहते थे। एक युवा राजपुत्र अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। अद्यावत अंग्रेजी सूट में उसे दरबार में उपस्थित देखकर वाइसराय ने उससे व्यक्तिशः बातचीत में कहा, अंग्रेजी वेश आप परिधान करेंगे, ऐसी मेरी अपेक्षा नहीं थी। यह संकेत राजपुत्र के लिए पर्याप्त था। उसके पश्चात् साफा आदि पहनकर अपने पारंपरिक वेश में ही वे दरबार में सम्मिलित होने लगे।'

विषय को और आगे बढ़ाकर श्री गुरुजी ने कहा— 'इस शताब्दी के चौथे दशक में प्रांतीय स्वायत्त शासन प्रारंभ हुआ। शिक्षा विभाग इस प्रांतीय शासन की चर्चा का विषय बना। उस समय रायबहादुर नारायणराव केलकर शिक्षा मंत्री थे। उन्हीं के आग्रह से शालेय शिक्षाक्रम मातृभाषा में प्रारंभ हुआ था। राज्यपाल ने इसका विरोध किया, परंतु वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और राज्यपाल को उन्होंने असंदिग्ध शब्दों में कहा— 'शिक्षा विभाग की पूरी जिम्मेदारी मेरी है और इसमें दखल देने की आपको आवश्यकता नहीं है।' उस समय डायरेक्टर ऑफ इन्स्ट्रक्शन एक अंग्रेज था। उसको भी केलकर जी अपने कमरे के बाहर खड़ा रखते थे। मंत्री महोदय के कमरे में एक ही कुर्सी होती थी, जिस पर वे स्वयं बैठते थे और काम से अंदर बुलाने पर उस अंग्रेज डायरेक्टर को खड़े रहकर ही बातचीत करने को बाध्य करते थे। डायरेक्टर ने राज्यपाल के पास शिकायत की। राज्यपाल के पूछने पर श्री केलकर ने कहा— प्राध्यापक, मुख्याध्यापक आदि शैक्षणिक क्षेत्र के अधिकारियों को डायरेक्टर महोदय द्वारा इसी प्रकार

खड़े रखकर बातचीत करते समय उनको कैसा अपमानजनक लगता होगा, इसका आभास दिलाने हेतु मैं डायरेक्टर को खड़े रखकर उनसे बातचीत करता हूँ। श्री केलकर महोदय आज भी रायबहादुर हैं।'

वैदिक परंपरा का पुनरुज्जीवन

३१ जनवरी १९६६, आलप्पी, श्री गुरुजी के स्नान तथा संध्या वंदन के बाद कुछ लोग उनसे मिलने आए, उनमें एक विख्यात देवालय के प्रमुख पुजारी श्री पुदुमना नम्बूद्री भी थे। पंडित सातवलेकर जी के लिखे सुप्रसिद्ध वेदभाष्य के विषय में श्री गुरुजी ने कहा– 'भारतवर्ष के सर्व प्रांतों के पंडितों को बुलाकर, उन्होंने प्रत्येक सूक्त के विषय में चर्चा की, प्रत्येक मंत्र का उच्चारण करते हुए उन मंत्रों के ध्वनि वैविध्य का ध्यान रखते हुए सर्व मंत्रों को लिपिबद्ध किया। इसलिए उनके द्वारा पुनःप्रकाशित वेदभाष्य को सर्व वेदभाष्यों में अधिकृत विवरण कहा जाता है। वेदमंत्रों को शुद्ध रूप में संरक्षित रखनेवाली संस्थाओं का कार्य उल्लेखनीय है। इसे अष्ट विकृति कहते हैं तथा उसमें सर्व प्रकार की रचनापद्धति एवं संयोजन होता है। विशिष्ट अंतराल के बाद प्रथम वर्ण का वे पुनरुच्चारण करते हैं। प्रथम एवं अन्य वर्ण का स्थान बदल कर पुनरुच्चारण किया जाता है। विविध रचना-पद्धति एवं संयोजन के साथ वेदमंत्रों का उच्चारण करने से वैदिक ऋचा इतनी निश्चित हो जाती है कि उसमें से एक शब्द या एक वर्ण भी चूकना, स्थानांतरित होना या लुप्त होना असंभव है। इस कारण शतकानुशतक पाठ शुद्ध ही रहता है। पंडित सातवलेकर जी ने वेदपंडितों से चर्चा कर, उपलब्ध साहित्य के अनुसार वेदों का शुद्ध पाठ प्रकाशित किया। वेदों का कोई विभाग नष्ट भी हो गया होगा, किंतु देश के सर्व प्रांतों से वैदिक साहित्य का संशोधन कर, भविष्य में उपयोग के लिए उन्होंने प्रकाशित किया है।'

'प्रत्येक सूक्त की उन्होंने टिप्पणी भी लिखी है। उनके द्वारा दिए हुए अर्थ के विषय में कुछ लोगों की मतभिन्नता हो सकती है। किंतु उनकी दृष्टि से वेदमंत्रों का जो योग्य अर्थ उन्हें प्रतीत हुआ, उन्होंने वही दिया है। किंतु यह अलग विषय है।'

'इस कारण अनेक शतकों तक वेदों का शुद्ध पाठ हमनें सुरक्षित रखा है, किंतु उस पाठ के अर्थ का हमें जरा भी ध्यान नहीं था। हम केवल

वेदाध्ययन करते थे, वेदार्थ-चिंतन नहीं। यह अच्छी बात नहीं थी। इस कारण अनेक वेदमंत्रों के योग्य अर्थ लुप्तप्राय हो गए। उदाहरणार्थ- कुछ सूत्रों में सैनिक शास्त्र का विवरण आया है। अर्थज्ञान के बिना ही कुछ पंडित आँखे बंद कर पाठ करते थे।'

'वेदपाठों को सुरक्षित रखने के लिए पेशवा राज्यकर्ता ३, ४ लाख रुपए खर्च करते थे, किंतु अर्थचिंतन के विषय में एक लाख भी नहीं। इसलिए अर्थचिंतन एक महत्त्वपूर्ण अंग है तथा उसे हर प्रकार से प्रोत्साहित करना चाहिए।'

दोपहर में उसी पुजारी ने श्री गुरुजी को हिंदू संगठन एवं हिंदू धर्म के विषय में कुछ प्रश्न पूछे।

नम्बूद्री- 'वर्तमानकालीन ब्राह्मण-वर्ग धर्मभ्रष्ट हो गया है। वह वेदपठन, संध्यावंदन नहीं करता और ब्राह्मण धर्म का पालन भी नहीं करता। दूसरा एक मत-प्रवाह यह है कि अब अब्राह्मण व्यक्तियों को पूजा-अर्चना करना सिखाना चाहिए। संपूर्ण हिंदू समाज में तरुण विद्यार्थी एकत्रित कर उनको वेदसंस्कार देना चाहिए। यही एक व्यवहार्य मार्ग नहीं है क्या? धर्मरक्षा के लिए नया ब्राह्मण वर्ग तो आवश्यक है। हमें क्या करना चाहिए?'

श्री गुरुजी- 'जहाँ तक वर्तमानकालीन तथाकथित ब्राह्मण जाति का प्रश्न है, उन्होंने तो धर्म व हिंदुत्व ही छोड़ दिया है। अतः वे समाज की प्रगति नहीं कर सकते। तब नई ब्राह्मण जाति निर्माण क्यों करें? उसका हाल भी यही होगा।'

नम्बूद्री- 'किंतु जीवन-मूल्यों तथा धर्म की रक्षा के लिए यह वर्ग आवश्यक नहीं है क्या? आज प्राचीन ब्राह्मण जाति का पुनरुज्जीवन यद्यपि असंभव है, तथापि नया वर्ग निर्माण करना चाहिए या नहीं? सर्व जातियों से शिशुओं का चयन कर, उन्हें संस्कारित कर, उनको हिंदू समाज का नेतृत्व दीजिए। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो हमारे धर्म का अधःपतन नहीं होगा क्या? वर्तमान काल में हमारी अपनी संतान भी वेदाध्ययन नहीं करना चाहती।'

श्री गुरुजी- 'आप इस तरह समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं तो करें, किंतु उनकी संतति भी यही कार्य करेगी। वेदाध्ययन कर इसी तरह से विकसित होगी, इसकी क्या निश्चिति है? नई पीढ़ी से शिशुओं

का चयन, उनका वेदाध्ययन संस्कार, क्या यह शृंखला अनेक पीढ़ियों तक चलती रहेगी? क्या यह व्यवहार्य है? आप उन्हें संस्कार देने की बात करते हैं, किंतु संस्कारों का उद्देश्य क्या है?'

नम्बूद्री– 'हमारे धार्मिक एवं कार्मिक फलों का शुद्धिकरण करना संस्कारों का उद्देश्य है।'

श्री गुरुजी– 'ठीक है, किंतु उपनयन के अतिरिक्त ऐसे दूसरे कौन से संस्कार हैं? अन्नप्राशन, कर्णवेध, चौल कर्म तथा विवाहादि संस्कार सर्व जातियों के लिए समान हैं। केवल उपनयन से ही दिव्यता भाव की निर्मिति होती है। यही एक संस्कार मनुष्य जीवन को नई दिशा दे सकता है। परंतु वर्तमान परिस्थिति में उपनयन संस्कार में दिया हुआ गायत्री मंत्रोपदेश संपूर्ण जीवन को नई दिशा देने में समर्थ है क्या?'

नम्बूद्री– 'नहीं।'

श्री गुरुजी– 'इतना ही नहीं। गायत्री की दीक्षा लेनेवाला व्यक्ति उस मंत्र का अच्छी तरह से उच्चारण भी नहीं कर सकता है। आपको ज्ञात ही होगा कि मंत्रोच्चारण ठीक ढंग से नहीं करने से क्या होता है? कहा जाता है कि आर्ष साहित्य वैदिक भाषा में नहीं, अभिजात संस्कृत भाषा में हैं। ऐसे वर्ण ५१ हैं। किंतु पाणिनी के अनुसार अभिजात संस्कृत भाषा में उच्चारित वर्णसंख्या ६४ या ६५ है। वैदिक भाषा में अधिक वर्ण होंगे। इनका उच्चारण अत्यंत कठिन है और यह बात अनेक पीढ़ियों तक अभ्यास करके ही सिद्ध हो सकती है।'

नम्बूद्री– 'जी हाँ, इसके लिए अभ्यास तो अत्यावश्यक है।'

श्री गुरुजी– 'ठीक है। नई समाज-व्यवस्था में प्रत्येक पीढ़ी के लिए अभ्यास आवश्यक होगा। एक पीढ़ी में किसी एक समूह को अभ्यास से स्वयंपूर्ण करना असंभव है। पीढ़ी को शुद्ध उच्चारों सहित संस्कृत भाषा का अध्ययन करने के बाद ही वेद-मंत्रों के शुद्ध उच्चारण के लिए तैयार किया जा सकता है। विदेशी प्रभाव के कारण यह अब नष्ट हो गया है। संस्कृत भाषा से हमारा संबंध भी टूट गया है। हमारी शिशु-अवस्था में हमें संस्कृत वर्ण, गुणन-सारिणी, तथा अनेक संस्कृत स्तोत्र पढ़ाए जाते थे। सात वर्ष की आयु के पूर्व ही मुझे अनेक स्तोत्र कंठस्थ थे। वह परंपरा अब लुप्तप्राय हो गई है। इस परिस्थिति के लिए अधिक मात्रा में पालक वर्ग ही जिम्मेदार है। उदाहरणार्थ– बंगाल, असम, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश के अधिकतर स्थान,

पंजाब इत्यादि प्रांतों में लोगों को शुद्ध उच्चारण करना भी नहीं आता। आंध्र तथा अन्य दक्षिण प्रांतों में उच्चारण अधिक शुद्ध है। जब महाराष्ट्र में वेदपठन की प्रक्रिया लुप्त हो गई थी, तब वेदपाठ की दीक्षा देने के लिए कर्नाटक प्रांत से ब्राह्मण बुलाए गए थे। बनारस में भी शुद्ध वेदपाठ दाक्षिणात्य ब्राह्मण ही करते हैं। नेपाल के पशुपतिनाथ मंदिर का पुजारी दाक्षिणात्य ही है। बद्रीनाथ में भी यही हुआ है। यह व्यवस्था श्रीमत् शंकराचार्य ने धार्मिक संस्कारों तथा वैदिक वाङ्मय की शुद्धता के विषय में परंपरा बनाए रखने हेतु की है। इसी तरह से शुद्धोच्चारण सहित पाठपद्धति की परंपरा सुरक्षित रखी गई है। अनेक बार यह भी देखा गया है कि पूजा-पाठ करनेवाले ब्राह्मण भी पुरुषसूक्त एवं श्रीसूक्त इत्यादि का उच्चारण भी ठीक तरह से नहीं कर सकते हैं। एक पीढ़ी के वेदाध्ययन हेतु इतनी तैयारी करनी पड़ती है। तब प्रारंभ की तैयारी में कितनी पीढ़ियों को काम करना पड़ेगा। इसके सिवाय शुद्ध वर्णोच्चार के लिए जिह्वा की लचक प्रायः असंभव है। इसका अर्थ ऐसा समाज-वर्ग निर्माण करने के लिए कितने प्रयास करने पड़ते हैं। प्रचलित उपनयन संस्कार से यह वर्ग निर्माण नहीं किया जा सकता।'

नम्बूद्री- 'इन सब बातों के लिए योग्य संस्था की निर्मिति करनी पड़ेगी।'

श्री गुरुजी- 'जी हाँ। केवल छोटे प्रमाण में नहीं, किंतु समाज के सर्व वर्गों का समावेश करनेवाली मजबूत संगठना की आवश्यकता है। शासकीय प्रयासों के बिना यह अशक्य है। इसका अर्थ हिंदू धर्म के प्रति सजग शासन की आवश्यकता है। आपको ज्ञात होगा कि जब समाज में अव्यवस्था निर्माण हुई तब प्राचीन ऋषियों ने क्षत्रिय वर्ण की निर्मिति की। श्री परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने के बाद, सर्व भूमि कश्यप ऋषि को दान कर दी। किंतु कश्यप ने कहा, मैं ब्राह्मण हूँ। मैं यह सब नहीं कर सकता। अतः क्षत्रिय वर्ग का निर्माण करना आवश्यक था।'

'लोकसंग्रह का अर्थ केवल लोगों को एकत्रित कर उनका एक समूह या वर्ग बनाना नहीं है। किंतु संपूर्ण समाज में नियमबद्ध जीवनशैली की निर्मिति, प्रत्येक व्यक्ति को चिंतामुक्त होकर स्वयं को समाज में उचित स्थान प्राप्त करने का अवसर देना और जीवन के परमोत्कर्ष शिखर पर जाने के लिए उसका विकास कराना- यह लोकसंग्रह का अर्थ है।

लोकसंग्रह और समुचित धारणा के लिए प्राचीन ऋषियों ने वर्ण एवं आश्रम-व्यवस्था का निर्माण किया था। सर्व समाज के उचित निर्वाह के लिए एक प्रबल सामाजिक शक्ति आवश्यक है- यह है क्षत्रिय वर्ण तथा राजदंड। शासन की शक्ति के बिना ये बातें नहीं की जा सकतीं। इस दंडशक्ति के कारण ही समाज-धारणा अच्छी तरह से हो सकती है। उसके पश्चात् ही धर्म रक्षा हेतु नई पीढ़ी की निर्मिति के लिए प्रयास किए जा सकते हैं।'

नम्बूद्री- 'मैं समझ गया। किंतु इसके लिए कब तक प्रतीक्षा करनी होगी। हम इस व्यवस्था से बहुत दूर हैं। मुझे तो भय है कि मेरा पुत्र भी वेदाध्ययन नहीं करेगा और इस तरह इस पीढ़ी के साथ ही प्राचीन परंपरा नष्ट हो जाएगी।'

श्री गुरुजी- 'नहीं, ऐसी बात नहीं है। इस तरह के संकट प्राचीन काल में भी कई बार आए होंगे। देखिए महाराष्ट्र ने भी सब कुछ खो दिया था। अतः कर्नाटक प्रांत से ब्राह्मण वर्ग यहाँ लाया गया था। गुजरात तथा अन्य प्रांतों में मैथिली ब्राह्मण गए और उन्होंने वैदिक परंपरा को पुनः जीवित किया। हमें बिल्कुल भी निराश नहीं होना चाहिए। आवश्यक वातावरण तैयार कीजिए, सब कुछ ठीक हो जाएगा।'

हिंदूपन का प्रतिपादन आग्रह से हो

१ फरवरी १६६६ को केरल में अलेप्पी से कोट्टायम के बीच की समुद्रखाड़ी पार करने हेतु मोटर-बोट से छोटे-से जलप्रवास के समय केरल प्रांत कार्यवाह श्री अनंतनु श्री गुरूजी के साथ थे। उन्होंने पूछा- 'क्या विजयनगर साम्राज्य प्रस्थापित करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों ने इस्लाम का त्याग करके स्वधर्म नहीं स्वीकारा था?'

श्री गुरुजी- 'हाँ, यह सत्य है। विद्यारण्य स्वामी बनकर शृंगेरी पीठाधीश बनने के पूर्व उनका नाम माधवाचार्य था। श्री माधवाचार्य जी की ही प्रेरणा से श्री हरिहर और बुक्क इस्लाम मत त्यागकर स्वधर्म में लौटकर आए थे। श्री माधवाचार्य जी ने उनको स्वधर्म में स्वीकार कर विजयनगर साम्राज्य की प्रस्थापना करने के लिए प्रेरित किया था। वेदों के सुप्रसिद्ध भाष्यकार श्री सायणाचार्य माधवाचार्य जी के भाई ही थे। यह पूर्ण

जानकारी कर्नाटक स्मारिका में असंदिग्ध शब्दों में छपी हुई है। श्री यादवराव जी को इस बारे में विस्तृत जानकारी है। उनको पूछने पर आपको पूर्ण इतिहास सुस्पष्ट ज्ञात होगा।'

'इसके बाद भी अपने इतिहास में पुनरागमन की घटनाएँ हुई हैं। मराठों के इतिहास में सुप्रसिद्ध सेनानी श्री नेताजी पालकर को श्री शिवाजी महाराज ने इस्लाम से स्वधर्म में पुनश्च स्वीकार किया है। श्री बजाजी निंबालकर को भी स्वधर्म में स्वीकार कर उन्हें समाज में सुप्रतिष्ठित करने के लिए अपनी लड़की से ब्याह कर दामाद बनाया था। यही लोग आगे चलकर हिंदू समाज-जीवन के संरक्षक बने। स्वधर्म में प्रवेश देकर यदि उन्हें अपने समकक्ष प्रतिष्ठा हम न देते, तो इतिहास का स्वरूप ही बदल गया होता।'

'एक बात का हमें स्मरण रहे कि हम अपने हिंदूपन का श्रद्धा एवं आग्रह से प्रतिपादन करें। इसमें किसी भी कारण ढीलापन या झिझक न आने पाए। हिंदुत्व के पारंपरिक श्रद्धास्थानों एवं आदर्शों के प्रति निष्ठा रहने के कारण व्यक्ति कैसा साहसी और निर्भय बनता है, इससे संबंधित एक घटना का मुझे स्मरण हो रहा है। पूर्वकाल में इंग्लैंड के युवराज नागपुर पधारे थे। नागपुर के निकटवर्ती कोई विशेष धार्मिक श्रद्धा-केंद्र वे देखना चाहते थे। नागपुर से लगभग ५० किलोमीटर पर स्थित रामटेक में प्रभु रामचंद्र जी का सुविख्यात मंदिर है। उन दिनों भारत में अंग्रेजों का राज्य था। अतः राजपुत्र की रामटेक जाने की शाही इतमिनान से व्यवस्था की गई। जहाँ से मंदिर की चढ़ाई प्रारंभ होती है, वहाँ तक शाही काफिला पहुँच चुका था। मंदिर के बहुत वृद्ध एवं श्रद्धास्पद पुजारी को पता चलने पर वह बहुत अस्वस्थ और क्षुब्ध हुए। पालकी में बैठकर समीप के परंतु अन्य विकट पहाड़ी रास्ते से वे मंदिर के महाद्वार पर उपस्थित हुए। उस समय तक राजपुत्र वहाँ नहीं पहुँचे थे। महाद्वार पर खड़े वृद्ध पुजारी को अपने दुर्बल हाथों से उनकी ओर इशारा करते देख, शासकीय अधिकारी सामने आए। इस वृद्ध पूजक ने उनसे कहा– 'जहाँ आप खड़े हैं, वहीं से ही मंदिर का दर्शन करें। हमारी मंदिर की व्यवस्था में सबसे निचली श्रेणी के हिंदू समाज बांधव यहाँ से ही दर्शन किया करते हैं। वहाँ तक ही आप आ सकते हैं। सामने खड़े दंडाधिकारी और सुरक्षा अधिकारी चिंतित होकर बोले, 'यह आप क्या कह रहे हैं? राजपुत्र सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में

आए हैं।' परंतु पुजारी महोदय ने दृढ़ता से उत्तर दिया, बादशाह स्वयं आएँ या उनके पिताजी पधारें, वे म्लेच्छ हैं। इस स्थान से आगे जाने की अनुमति उनको मैं कैसे दे सकता हूँ? यदि बलप्रयोग कर आप अंदर प्रवेश करना चाहेंगे तो मेरी लाश पर से ही आगे बढ़ सकते हैं।'

'राजपुत्र और उनके साथ आए हुए अंग्रेज अधिकारी समझ गए कि दंडाधिकारी तथा सुरक्षा अधिकारी उलझन में पड़े हुए हैं। उनसे पूछे जाने पर कहा गया कि धर्मनिष्ठ वृद्ध पुजारी आपको अंदर प्रवेश न देने पर दृढ़ हैं। अंग्रेज अधिकारी की समझ में सब बात आ गई। उन्होंने कहा– 'इस धर्मप्रवण वृद्ध पुजारी की भावना एवं श्रद्धा का हम आदर करते हैं।' इतना कह कर वे सब वहाँ से ही लौट गए। सनातनी वृत्ति के ये लोग यद्यपि अंग्रेजों की गुलामी स्वीकार करते थे, तथापि श्रद्धा के विषय पर खड़े रहकर दृढ़तापूर्वक उस समय के संसार के सबसे बड़े सम्राट के सम्मुख आत्मविश्वासपूर्वक बोलते थे। फूलों से सुसज्ज एवं सुप्रकाशित अवस्था में प्रभु रामचंद्र जी का श्रीविग्रह वे देखना चाहते थे, परंतु मंदिर के द्वार से लौटने की समझदारी उन्होंने दिखाई। उस श्रद्धेय निग्रही पुजारी के कारण ही उनको विमुख होकर लौटना पड़ा था।

अय्यप्पन देवता का स्वरूप

केरल में प्रचलित अय्यप्पन की पूजा-पद्धति में आवश्यक विधि, व्यवस्था आदि के विषय में बात हो रही थी। पूजा-यात्रा में सम्मिलित होते समय यात्रियों के आवश्यक नियमपालन और अन्य वैचित्र्यपूर्ण रीति-रिवाज की जानकारी श्री गुरुजी को दी गई। अब तक चलते आ रहे इन रीति-रिवाजों का विस्तृत वर्णन श्री गुरुजी ने ध्यानपूर्वक सुना।

श्री माधवन् ने बताया– 'देवताओं से जब असुरों ने अमृतकुंभ बलात् छीन लिया, तब असुरों को मोहित कर उनसे अमृतकुंभ प्राप्त करने के लिए भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया था। भगवान शिव के विष्णु भगवान से (मोहिनी स्वरूप में) हुआ पुत्र ही अय्यप्पन या शास्ता है, ऐसा माना जाता है। संभवतः शिव और विष्णु– दोनों के श्रेष्ठतम चैतन्य को एकत्रित महादीप्ति के रूप में अनुभव करने की यह योजना है। श्री अय्यप्पन के विषय में दूसरा एक विचार प्रतिपादन किया जाता है।

भगवान बुद्ध का अवतार ब्राह्मणत्व की साकार प्रतिमा है, ऐसा भी शास्ता के बारे में कहा जाता है। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' और 'स्वामी शरणं अय्यप्पन' इन दो घोषणाओं में उच्चारण की समानता देखकर और संस्कृत अमरकोष में शास्ता और बुद्ध का साहचर्य देखकर बुद्ध का अवतार शास्ता को माना गया होगा।'

'इस संबंध में एक अन्य कथा भी प्रचलित है। परदेशस्थ और समुद्री डकैतों से यशस्वी संघर्ष कर अपने लोगों की सुरक्षा करनेवाले वीर– ऐसा भी अय्यप्पन के विषय में कहा गया हैं। इन डकैतों का नेता वावर, जिसे कभी भाषांतरित रूप में बाबर कहा जाता है, अय्यप्पन का शिष्य बना और अय्यप्पन तीर्थ के यात्रियों के लिए भगवान का इस्लामी रूप बन गया। आज भी प्रत्येक यात्री अय्यप्पन मंदिर जाते समय पहाड़ी चढ़ाई के प्रारंभ में जो एक मस्जिद है, वहाँ की विभूति लेकर मंदिर की ओर बढ़ता है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'वह डकैत शिष्य मुसलमान होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस्लाम मत की निर्मिति के पूर्व भी ये विदेशस्थ और समुद्री डकैत तो थे ही। अय्यप्पन ने डकैतों से सुरक्षा करने में उनको अवश्य पराजित किया होगा। मुझे लगता हैं कि अय्यप्पन एक लोकप्रिय साहसी वीर थे, जिनको भक्तों ने आगे चलकर भगवान का अवतार मान लिया।'

मैं आपसे अय्यप्पन के विषय में एक अन्य जानकारी चाहता हूँ– 'क्या परंपरा से चली आई यह कथा सर्वदूर सत्य मानी जाती है कि भगवान अय्यप्पन की आध्यात्मिक श्रेष्ठता या उनके दिव्य जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति करनेवाले उनके कोई शिष्य हैं? प्रभु रामचंद्र, भगवान श्रीकृष्ण, शिव भगवान या भगवती देवी के भक्तों ने इन्हीं रूपों में भगवान का साक्षात्कार किया है। अपने मन की प्रगाढ़ निःस्पंदन की अवस्था में ये विग्रह भक्तों ने अपने ज्ञानचक्षुओं से देखें हैं। ऐसी उन भक्तों ने अपनी अनुभूति लिखी हुई है।'

श्री माधवन्– 'श्री अय्यप्पन के विषय में इस प्रकार के भक्तों की कथा नहीं है।'

श्री गुरुजी– 'मुझे ऐसा लगता है कि संभवतः वे एक लोकप्रिय, साहसी योद्धा थे। कुछ विशेष सिद्धि जैसी दैवी शक्ति से संपन्न रहने से लोगों ने उनको देवतास्वरूप मानकर उनकी पूजा करना प्रारंभ किया होगा।'

श्री माधवन्– ‘भक्तों ने परमेश्वर का इन स्वरूपों में साक्षात्कार किया, ऐसा आपने कहा। क्या यह भगवान के विषय में भक्तों के उत्कट कल्पना-विलास का ही एक रूप है? क्या वह उनकी विशेष मनोवैज्ञानिक अवस्था का ही किया हुआ वर्णन है?’

श्री गुरुजी– ‘नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। शुद्ध हृदय से कठोर तपस्या करने पर किसी विशेष साकार रूप में भगवान की उत्कट भक्ति करने से ईश्वरतत्त्व का प्रतिसाद प्रसाद प्राप्त होता है। निराकार ईश्वर तत्त्व उसी सगुण स्वरूप में धनीभूत होकर ऐसे भक्तों के सम्मुख प्रकट होता है। तपःपूत भक्ति करते रहने पर योग्य समय और विशेष मनोवैज्ञानिक अवस्था प्राप्त होते ही अपने पूर्ण दिव्यत्व एवं विभव के साथ भक्तों को भगवान का दर्शन होता है। साक्षात्कारी भक्तों ने यह कहा हुआ है कि आप भगवान का अस्तित्व अनुभव कर सकते हैं, उनसे प्रत्यक्ष बातचीत कर सकते हैं। ऐसे परमश्रेष्ठ भक्तों को स्पर्श करनेवाले पूर्ण सात्विक गुणसपंन्न लोगों को भी वह दर्शन होता है। ऐसे अनेक अनुभव अपने देश में सर्वत्र आए हुए हैं। राम, कृष्ण, देवी, सीतामाता के दिव्यत्व का प्रत्यक्ष प्राकृतिक स्वरूप में भक्तों ने दर्शन किया है।’

श्री माधवन्– ‘श्रीराम और श्रीकृष्ण तो ऐतिहासिक महापुरुष थे।’

श्री गुरुजी– ‘हाँ, वे ऐतिहासिक श्रेष्ठ पुरुष थे, परंतु इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उनके पंचतत्त्व में विलीन होने के पश्चात् भी भक्तों के सम्मुख प्रकट होकर उनका मार्गदर्शन करते रहते हैं। कुछ ही वर्ष पूर्व शांत हुए रामकृष्ण परमहंस इसी प्रकार के श्रेष्ठ ऐतिहासिक महापुरुष थे। निस्संदेह वे अपने प्राकृतिक रूप में दर्शन देकर भक्तों का आध्यात्मिक क्षेत्र में मार्गदर्शन करते रहते हैं। इसी कारण तो उनको भगवान का अवतार माना गया है।’

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली

१ फरवरी १९६९ को केरल के प्रांत संघचालक श्री गोविंद मेनन के निवास-स्थान पर श्री गुरुजी से मिलने कुछ प्रतिष्ठित सज्जन आए थे। उनसे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के बारे में बातचीत होने पर श्री गुरुजी ने कहा– ‘ऐसा लगता है कि पढ़ाई समाप्त होते ही आजकल सबको सरकारी

नौकरी चाहिए। उदाहरणस्वरूप– मैसूर में अमरीकी सहायता से ग्रामीण लोगों को शिक्षित करने की एक योजना थी। इस योजना में प्रत्येक ग्रामीण विद्यार्थी को शिक्षित करनेवाले शिक्षक को एक रुपया और एक पाव चावल मिलता था। सर्वसामान्य शिक्षक के पास यदि ४० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे हों, तो उसे ४० रुपए और उतने ही गुना चावल की प्राप्ति होती थी। इन शिक्षकों की बिना मूल्य निवास व्यवस्था की गई थी। खानपान के बारे में निश्चिंत होकर कुछ धनराशि की बचत भी वे कर सकते थे। परंतु यह सरकारी नौकरी नहीं है। इस कारण वृत्त-पत्रों में विज्ञापन देने के पश्चात् भी प्रदेश व पूरे देश से केवल दो युवकों से इस हेतु प्रार्थना-पत्र प्राप्त हुआ। बाद में इन दोनों में से एक युवक इस कार्य को छोड़कर दूसरी नौकरी करने चला गया। उस नौकरी में वेतन अच्छा था। फिर भी उसकी आर्थिक हालत खराब हो गई। घर का किराया देने में ही वेतन का तीसरा हिस्सा व्यय हो जाता था और बचे हुए दो-तिहाई वेतन से शहर में रहने योग्य केवल वस्त्र-प्रावरण खरीद कर सकता था। वह यदि ग्राम में शिक्षक रहा होता, तो उसकी ऐसी अवस्था नहीं हुई होती, परंतु पता नहीं क्यों, ग्रामीण जीवन की तुलना में शहर में रहना लोग अधिक पसंद करते हैं। दूसरे बचे हुए ग्राम-शिक्षक के द्वारा दो वर्ष के पश्चात् त्यागपत्र देने के कारण पूर्ण योजना ही बंद कर दी गई।'

'ऐसा लगता है कि अपने लोग कुछ आलसी हो गए हैं। काम करने की उनकी इच्छा नहीं है, मगर अन्यान्य राष्ट्रों में ऐसी स्थिति नहीं है। एक घटना मुझे याद आती है। एक इंजन बंद पड़ा हुआ था। उसे दुरुस्त करने के लिए एक अमरीकी इंजीनियर ने तुरंत अपनी आस्तीनें सँवारीं और इंजन के नीचे घुस गया। उसकी मरम्मत की और उसे चालू कर दिया। अपने भारत के आलसी इंजीनियर खड़े-खड़े यह सब देख रहे थे। वे यही सोचते रहे कि नीचे घुसकर इंजन दुरुस्त करने से अपने कपड़े खराब हो जाएँगे। परंतु वह अमरीकी इंजीनियर वैसे ही खराब कपड़ों से पुनः अपने काम में लग गया। मानो अपने कपड़े गंदे हुए होंगे, इसकी उसे याद भी नहीं थी। जिस काम को करने के लिए उसकी योजना हुई थी, उसे तन्मयता से करना, यही वह जानता था। यही तो श्रम की प्रतिष्ठा है। ऊँची तांत्रिक-शिक्षा से विभूषित हो जाने पर भी इंजन का सामान्य काम करने में उस अमरीकी इंजीनियर को यत्किंचित् भी संकोच नहीं हुआ।'

'भारत स्वाधीन हो जाने के पूर्व की बात है। मोटर से प्रवास करते समय एक और विचित्र अनुभव आया। हमारे सामने चल रही मोटर में एक अंग्रेज अधिकारी जा रहा था। वह मोटरगाड़ी किसी कारण से बंद होकर रुक गई। चालक ने कोशिश की, पर उसकी कुछ समझ में न आया। तब उस अंग्रेज अधिकारी ने नीचे उतरकर मोटर का इंजन देखा। दोष उसके ध्यान में आ गया। उसने परिश्रमपूर्वक मशीन को ठीक किया और मोटर चालू की। इसके बिलकुल विपरीत अनुभव स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पश्चात् आया। एक बार प्रवास में मोटर से जबलपुर (महाकौशल) के पास से जा रहा था। उस समय मैंने देखा कि एक मोटरगाड़ी खड़ी है। हमने अपनी गाड़ी रोककर देखा तो खड़ी गाड़ी में पैर पर पैर रखे एक सज्जन निश्चिंत बैठे थे। वे यह तो चाहते थे कि कोई उनकी सहायता करे, परंतु मोटर से नीचे उतरकर यह तक बताने के लिए तैयार नहीं थे कि हुआ क्या है। उनकी उदासीनता और निष्क्रियता देखकर हम समझ गए कि उनके लिए कुछ करना अनावश्यक है।'

'अपने लोगों की मूढ़ता देखकर कभी-कभी आश्चर्य होता है। एक उत्तर भारतीय नवाब की कथा स्मरण में आती है। उन दिनों ऐसे छोटे-छोटे नवाब बहुत थे। उनको अंग्रेजों से थोड़ा-बहुत निवृत्ति-वेतन मिलता था। उस अल्प-सी पेंशन को लेने जाते समय ये नवाब लोग धोबी से अच्छे कपड़े किराए पर उधार लाते थे। इत्र लगाकर, महँगा पान खाकर और रिक्शा में बैठकर निवृत्ति-वेतन प्राप्त करने जाते थे। पुराने दिनों की याद कर चपरासी लोगों को थोड़ा-बहुत इनाम भी देते थे। घर आते तक उनके सारे पैसे इसी प्रकार खर्च हो जाते थे।'

'ऐसे ही लखनऊ के एक नवाब की कोठी पर कब्जा करने के लिए अंग्रेज सैनिकों ने उसे घेर लिया था। नवाब अपने पैर में जूते पहनाने के लिए नौकर को पुकारता रहा। आसपास एक भी नौकर नहीं था। अंग्रेज कप्तान ने उसकी धांधली देखी और नवाब को स्वयं जूते पहनाए। तब वह नवाब महोदय शान से खड़े हुए और नवाबी चाल से घर के बाहर हुए। अंग्रेज अपनी कोठी घेरने आनेवाले हैं, ऐसा पता चलने पर भी नवाब महोदय भागने और स्वयं को बचाने तक को तैयार नहीं थे। उसी तरह अपनी उदासीनता और अकर्मण्यता छोड़ने को हम तैयार नहीं हैं।'

जातीयता जादू से नष्ट नहीं होगी

२ फरवरी १९६९ की सायंकाल एर्नाकुलम में कुछ प्रतिष्ठित वयोवृद्ध श्री गुरूजी से मिलने आए थे। एक ने पूछा– 'मैं पिछड़ी हुई जाति का हूँ। संघ में केवल सवर्ण हिंदू ही नजर आते हैं। पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों का यथोचित प्रतिनिधित्व नहीं दिखाई देता है। इस प्रकार विषमता का व्यवहार क्यों रखा गया है?'

श्री गुरुजी ने उसकी बात का उत्तर देते हुए कहा– 'किसी जाति की या पिछड़ी-सवर्ण जैसी पृथकता मैंने तो संघ में कभी भी अनुभव नहीं की है। पिछड़ी जाति के या अनुसूचित जाति के लोग अपने को पिछड़े या अनुसूचित क्यों समझ बैठे हैं, समझ में आना कठिन है। अपनी जाति या गुट का ही विचार उनके दिमाग पर सवार रहना ठीक नहीं है। दिल और दिमाग पर हावी हुआ यह विचार इसलिए अब तक चलता आ रहा है, क्योंकि कुछ लोग इससे फायदा उठाना चाहते हैं और इस प्रवृत्ति को राजनीति खेलनेवाले नेता प्रोत्साहित करते रहते हैं। आपसी पृथकता की दरार राजनीतिक स्वार्थी दलों के कारण और गहरी बनाई जाती है। क्योंकि उन्हें जातीय विद्वेष फैलाकर ही वोट प्राप्त होते हैं और तभी वे चुनाव जीतते हैं।'

'एक बार मुझे मुंबई के ख्यातिप्राप्त फौजदारी अधिवक्ता से मिलने का अवसर मिला। वह साम्यवादी विचारप्रणाली के श्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। उन्होंने मुझसे शिकायत के तौर पर कहा कि केरल में पिछले निर्वाचन में पेड़ पर से ताड़ी निकालनेवाले सब इळवा लोगों ने कांग्रेस के पक्ष में मतदान किया और साम्यवादी दल को हटाया। कांग्रेसी प्रत्याशी के पक्ष में मतदान करने के कारण यह अधिवक्ता इन इळवाओं को 'ताड़ी निकालनेवाले' संबोधित कर रहे थे। यदि उन्होंने साम्यवादी दल के पक्ष में वोट दिया होता, तो यह महाशय उनको 'इळवा' ही कहते। राजनीति के खिलाड़ियों ने इस जाति-द्वेष को हेतुतः प्रोत्साहित किया है।'

'संघ ऐसे विकृत विचारों से दूर है। जाति, भाषा या अन्य तथाकथित भेदों का विचार छोड़कर हम अपने हिंदू-समाज को संगठित करना चाहते हैं। प्रत्येक स्थान पर संघ का काम बंधुवत आपसी स्नेह वृद्धिंगत करने पर ही आधारित है। किसी एक जाति विशेष के लिए नहीं, अपितु संपूर्ण समाज का जीवन सुसंगठित करने का हम प्रयत्न करते हैं।

तथाकथित निम्न जाति के, अनुसूचित जाति के या पिछड़ी जाति के बहुत से स्वयंसेवक संघ की शाखा में आते हैं।'

'मैं एक बार श्रद्धेय महात्मा जी के निकटवर्ती और जीवन में केवल हरिजन सेवक समाज का काम निष्ठा से करनेवाले एक नेता से मिला था। वे कह रहे थे कि केवल हरिजनों की उन्नति के लिए वे प्रयत्नशील हैं। मैंने उनसे पूछा कि समाज के केवल एक ही हिस्से की उन्नति आप क्यों चाहते हैं? संपूर्ण समाज का हित आप क्यों नहीं सोचते ? इससे आप जाति-विशेष के नए गुट निर्माण करेंगे। आप निरक्षर, वस्त्रहीन, भूख-पीड़ित लोगों की उन्नति का काम भी कर सकते हैं। वह बहुत आवश्यक है, परंतु आप तो पूरे समाज के केवल एक ही हिस्से की चिंता करते हैं।'

'इसी प्रकार हमारे राजनीतिक दलों के नेतागण चुनाव पर ध्यान केंद्रित कर अल्पसंख्य, जाति आदि अपने समाज के अन्यान्य गुटों के विषय में बातचीत करते हैं। ये दल ही जातीय भाव को बढ़ावा देते हैं। अपने स्वार्थ, सुविधा और राजनीतिक आकांक्षा पूर्ति हेतु जातिगत भावना बनी रहे- ऐसा राजनीति खेलनेवाले चाहते हैं। किंतु संघ की सोचने की रीति भिन्न है, क्योंकि निर्वाचन पर आधारित राजनीति में हमें रुचि नहीं है। देश की एकात्मता और सुरक्षा के अर्थ में यदि आप 'राजनीति' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब तो हममें से प्रत्येक राजनीति में है। एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक हमारे पराधीन रहने से यह जातीयता की भावना लोगों में दृढ़ बन गई है। इसे जड़मूल से नष्ट करना दो-चार दिनों का काम नहीं है। संपूर्ण समाजहित का ध्यान रखते हुए काम करने से यह क्रमशः नष्ट होगी। हम अपनी शैली से यही कार्य कर रहे हैं।'

सभी पश्चिमी मत समान हैं

३ फरवरी १९६९ को कांचनगढ़ (केरल) में श्री गुरुजी से अनौपचारिक बातचीत चल रही थी। मृत शरीर की उत्तर-क्रिया मुसलमान किस प्रकार करते हैं, यह बताने पर श्री गुरुजी ने कहा कि 'सभी पाश्चात्य मतों के अनुसार यह क्रिया एक जैसी ही है, क्योंकि आगे चलकर किसी समय भगवान न्यायदान करनेवाला है और उसे सुनने हमें कब्र से उठकर स्वयं जाना पड़ेगा, इसपर उनकी श्रद्धा है।'

एक स्वयंसेवक – 'क्या इन पश्चिमी मतों की पौराणिक गाथाएँ भी समान हैं?'

श्री गुरुजी– 'हाँ, ऐसा ही है। वहाँ पहले प्राचीन करार (Old Testament) था। यही पौराणिक गाथा सबने अपनाई और उसे अपने मत का आधार बनाया। कथाएँ, कथाओं के विभिन्न पात्र और घटना-प्रसंग एक से ही हैं। इब्राहिम, अब्राहम और इब्राहम एक ही हैं। उन गाथाओं में कुछ विचार-प्रणाली जोड़ने हेतु ईसाइयों ने नया करार निर्माण किया है।'

'हम जिसे आज ईसाई मत कहते हैं, वह ईसा मसीह की मृत्यु के कुछ सदियों के पश्चात् बना है। उसमें भी किसी ने ईसा मसीह के विषय में प्रमाणित प्रतिपादन नहीं किया है। ईसा के चार शिष्यों ने जो कहा है, वही ईसाई मत के लोगों की जानकारी है। इन चार शिष्यों की विचार-प्रतिपादन शैली भिन्न है। इनके अनेक विचार भी एक-दूसरे से मेल खानेवाले नहीं हैं। इन सबको सुसूत्र संगठित कर चर्चसंस्था प्रस्थापित करने का कार्य पॉल महोदय ने किया। उस क्षेत्र विशेष के जानकार ज्ञाता इसे चर्च का मत मानते हैं। यहूदी लोगों के बारे में पॉल महोदय कहते हैं कि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सही नहीं है कि उनका मूलस्थान पॅलेस्टाईन है। आतंकित कर शत्रुओं ने उनको अपने मूलस्थान से बाहर खदेड़ दिया। अतः वे लाल सागर पार कर पॅलेस्टाईन में आए। वहाँ के मूल निवासी अरब लोगों पर विजय प्राप्त कर उनको बाहर भगाकर यहूदी पॅलेस्टाईन में बस गए। इस कारण से यहूदी लोगों को वहाँ रहने का नैतिक अधिकार नहीं है। राजनीति में चलनेवाली गतिविधियाँ आज भले ही भिन्न हों, ऐतिहासिक सत्य मैंने आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है।'

एक स्वयंसेवक ने पूछा– 'क्या प्राचीन काल में भारत का उस क्षेत्र से कोई संपर्क-संबंध था?'

श्री गुरुजी ने उसके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया– 'हाँ। उस भौगोलिक क्षेत्र का नामकरण हमने ही किया है। वहाँ से हमें उत्तम घोड़े उपलब्ध होते थे। इसलिए उस स्थान को अरबस्थान या तुरगस्थान कहा गया। संस्कृत में अरव या तुरग का अर्थ घोड़ा है। इतनी कालावधि के पश्चात् एक को अरबस्थान और दूसरे को तुर्कस्थान या टर्की कहा जाने लगा है। उस क्षेत्र में अनेक शिव मंदिर थे। आज मक्का में प्राचीन शिवलिंग ही है और उसी की वे पूजा करते हैं। वहाँ के एक विशेष पुजारी

को शेक (Shiek) कहा जाता है। वह शेक शुक या शुक्र शब्द का अपभ्रंश रूप है। शुक्र असुरों के गुरु थे। इसी का प्रतीक चाँद के भीतर तारा उन्होंने अपनाया है। शिव या गणेश जी दोनों द्वारा अपने मस्तक पर धारण किए चिह्न चंद्रमा को भी उन्होंने ग्रहण किया है। दैत्य-गुरु, शुक्र की स्मृति के कारण ही शुक्रवार को वे पवित्र मानते हैं।

योग्य व्यक्ति चाहिए

पालघाट में ५ फरवरी १९६९ को विक्टोरिया महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री अच्युतन् के साथ श्री गुरुजी वार्तालाप कर रहे थे। केरल में विश्व हिंदू परिषद् कार्य के मार्गदर्शन हेतु प्रश्न पूछने पर श्री गुरुजी ने कहा कि 'विश्व हिंदू परिषद् के कार्यकर्ता ग्रामीण क्षेत्रों में जाएँ, जहाँ सभी ग्रामवासी धार्मिक भावना से एकत्र आ सकते हैं। वहाँ भजन-नामसंकीर्तन का आयोजन करें।'

श्री अच्युतन्— 'क्या स्वास्थ्य-केंद्र उपयोगी सिद्ध होंगे?'

श्री गुरुजी— 'कार्य करनेवाले योग्य व्यक्ति चाहिए। यदि समाज के सुप्रतिष्ठित लोगों के साथ प्रभावी संपर्क रहा तो स्वास्थ्य-केंद्र के लिए आवश्यक धन एकत्रित करना संभव हो जाएगा। अनेक आयुर्वेदाचार्य और डाक्टर हमारा सहयोग करेंगे। ऐसे अनेक उदाहरण मुझे ज्ञात हैं। श्री रामनारायण शास्त्री एक सुविख्यात आयुर्वेदाचार्य हैं। मशहूर वैद्यराज के नाते उनकी ख्याति है। धनवान लोगों का उपचार करते समय वे उनसे अधिक धन लेते हैं, परंतु वह धनराशि गरीब रुग्णों को निःशुल्क उपचार करने में व्यय करते हैं।'

'डा. मुंजे भी ऐसा ही करते थे। एक अन्य शल्यचिकित्सक की मुझे जानकारी है। वे एक शल्यक्रिया के लिए १०००-१५०० रुपए लेते थे। उनके ही छोटे भाई द्वारा इसका कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं एक नाली जैसा क्षुद्र उपकरण मात्र हूँ, जिससे बहुत धनवान लोगों का द्रव्य धनहीन लोगों का इलाज करने में लगाया जाता है। विलासी जीवन स्वयं यापन करने में मैं इस धन का उपयोग नहीं करता। डाक्टरों की ऐसी सद्प्रवृत्ति रहने पर वे हमारी सहायता कर सकते हैं। दवाई बेचनेवाले और डाक्टरों से यथोचित ढंग से बातचीत करने पर सभी हमारे सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे कितने ही विविध अनुभव आते हैं।'

शिशु मंदिरों में शिक्षा

पालक्काड (केरल) भगिनी-मंडल की सचिव जानकी एस. मेनन को संबोधित कर श्री गुरुजी ने कहा— 'आप शिशु मंदिर निर्माण कर बालकों को शील, चारित्र्यसंपन्न बना सकती हो।'

उन्होंने प्रश्न किया— 'शिशु मंदिर में पाठ्यक्रम कैसा रहना चाहिए?'

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया— 'स्वयं अपना अनुभव सबसे अधिक उपयुक्त रहता है। अन्यत्र ऐसे अनेक शिशु मंदिर चलाए जा रहे हैं। उनके द्वारा किए गए प्रयास आपको उचित पथप्रदर्शक बन सकते हैं।' इतना कहकर शिशु मंदिर व्यवस्था-प्रमुख का पता बता दिया।

उन्होंने अगला प्रश्न किया— 'क्या शासन से शिशु मंदिरों के लिए अनुदान प्राप्त हो सकेगा?'

श्री गुरुजी— 'हमें अनुदान की चिंता न कर; हम चाहते हैं, वैसी शिक्षा बालकों को देने का प्रयास करना चाहिए। उस पाठ्यक्रम में शासन हस्तक्षेप न करे। अपना एक अनुभव उद्‌बोधक है। अपने ही लोगों के द्वारा संचालित एक माध्यमिक पाठशाला में भगवद्‌गीता की शिक्षा प्रारंभ की गई। शासन ने एक आदेश निकालकर उस पाठशाला का अनुदान बंद कर दिया। कुछ कालावधि के पश्चात् मैं उस समय के मुख्यमंत्री श्री रविशंकर शुक्ल का स्वास्थ्य देखने गया था। युवावस्था से ही मेरा उनसे परिचय था। क्योंकि वे मेरे पिताजी के निकटवर्ती स्नेही थे। उन्होंने शिक्षण-संस्थाओं को दिए जानेवाले शासकीय अनुदान की नीति स्पष्ट करने का प्रयास किया। मैंने असंदिग्ध शब्दों में उनसे कहा— अपने बालकों को हम यथोचित शिक्षा प्रदान करेंगे, भले ही अनुदान बंद हो जाए। शासक जिस धनराशि का विनियोग अनुदान के लिए करते हैं, वह करदाताओं से ही उपलब्ध धन है। वह धन जनता का है, वह किसी की पैतृक संपत्ति नहीं है। यह सुनकर वे चुप रहे। उस पाठशाला को आज तक शासकीय अनुदान मिल रहा है।'

सुस्पष्ट असंदिग्ध शब्दों में इन सब बातों के बारे में बोलना तो आवश्यक ही है। कॉन्वेंट में शिक्षा अच्छी मिलती है— ऐसा सोचकर हमारे लोग अपने बालकों को पढ़ाई के लिए वहाँ भेजते हैं, परंतु कॉन्वेंट में वायुमंडल भिन्न रहता है। वहाँ अपने बालक अपनी सांस्कृतिक परंपरा से क्रमशः पृथक हो जाते हैं।'

श्रद्धेय श्री ईश्वरानंद जी से वार्तालाप

६ फरवरी १९६९, (त्रिश्शुर)

श्री गुरुजी– 'आज हिंदूहित के विरोध में सब शस्त्रास्त्रों से सुसज्ज होकर खड़े हैं। नेता और मंत्री महोदय हर बात में हिंदुओं की आलोचना करते हैं। अमरीकी और ईसाई जैसा सौ वर्ष पूर्व करते थे वैसा हिंदू-विरोधी प्रचार आज भी कर रहे हैं। कुछ दिन पूर्व दो अमरीकी कन्याकुमारी पधारे थे। उन्होंने मंदिर के पास दो भिखारी बालकों को पेट अंदर खींचकर, रास्ते पर लेटे रहने को कहा और एक स्थूलकाय पुजारी के पास से जाते समय उस दृश्य की फोटो निकाली। ऐसे चित्रों का अमरीका में प्रदर्शन कर वे हमारे धर्म, पुजारी और मंदिरों की भद्दी अभिव्यक्ति करते हैं।'

'इससे होनेवाली हानि हम समझें और भारत की सही प्रतिमा उजागर करने का मूलभूत प्रयास सब मिलकर करें।'

संस्कृति की श्रेष्ठता के भाव लोगों के हृदय में जगाएँ

३० जून १९६९, कोल्लम में काजू निर्यात करनेवाले श्री गंगाधर पणिक्कर के यहाँ श्री गुरुजी के निवास की व्यवस्था थी। भोजन के पूर्व श्री गुरुजी के कमरे में कुछ कार्यकर्ता बैठे थे और चर्चा हो रही थी।

विभाग प्रचारक श्री माधवन्– 'केरल विश्व हिंदू परिषद् का दायित्व अपने श्री नंबूद्रीपाद पर है। वे पूछते हैं कि केरल में विश्व हिंदू परिषद् का कार्य किस प्रकार करें।'

श्री गुरुजी– 'सामूहिक भजन एवं नामसंकीर्तन, ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर धार्मिक और राष्ट्रीय एकात्मता के आदर्श प्रसृत करनेवाले महापुरुषों की जीवनगाथाओं का कथन, मंदिरों में कीर्तनों का आयोजन आदि कार्यक्रमों से कर सकते हैं। थोड़े शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के भाव लोगों के हृदय में जगाने का, दृढ़ करने का कार्य वे करें।'

मतांतरण नहीं, परावर्तन

श्री माधवन्– 'बलात् बनाए गए अहिंदुओं के मत परिवर्तन के बारे में क्या किया जाना चाहिए?'

श्री गुरुजी– 'हाँ, वह भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसको मत परिवर्तन कहना मुझे ठीक नहीं लगता। वह तो परावर्तन है, प्रत्यागमन है, स्वगृह में लौट आना ही है। मैं उसे शुद्धीकरण नहीं मानता। वह मानो हमारे लिए प्रायश्चित जैसा ही है। अपने हिंदू संस्कारों को भूलकर उनके अनुरूप हमने अपना कर्तव्य अब तक नहीं किया है। इस कारण, मानो हमारे लिए वह प्रायश्चित ही है।

श्री माधवन्– 'क्या वेदों में, स्मृतियों में या उनके पश्चात् बने समाज-सुधार स्मृति-साहित्य में इस प्रायश्चित का कुछ संस्कार या विधि-विधान बताया गया है?'

श्री गुरुजी– 'हाँ, इस संस्कार-विधि का उल्लेख वेदों में आता है। स्मृतिकारों ने वेदों का ही वचन उद्धृत किया है। वेदों में उल्लिखित व्रात्यस्तोम संस्कार इसी हेतु बनाया गया है। आर्य समाजी शुद्धीकरण करते हैं, वह भिन्न है। अपने अहिंदू बंधुओं को स्वगृह में लौटाने की संस्कार-विधि सुनिश्चित कर लिपिबद्ध करने का अनुरोध, मैंने विश्व हिंदू परिषद् के कुछ पंडितों से किया है।'

श्री यादवराव जोशी– 'इस हेतु पेजावर मठ के श्रद्धेय स्वामी जी ने कुछ मंत्र और आवश्यक संस्कार लिखकर तैयार किए हैं।'

श्री गुरुजी– 'हाँ, वे मैंने देखे हैं। उनके द्वारा बहुत परिश्रमपूर्वक बनाए वे संस्कार कुछ मात्रा में क्लिष्ट हैं, प्रदीर्घ हैं, उनको अधिक सरल बनाना आवश्यक है। मुझे और एक बात खलती है। इस प्रकार के पुनरागमन समाचारों का प्रचार, प्रसिद्धि, समाचार-पत्रों में उनके फोटो आदि का प्रकाशन अच्छा नहीं लगता। यह शांततापूर्वक किया जाए। अहिंदू समाजों में उसकी प्रतिक्रिया उभाड़ने की आवश्यकता मुझे प्रतीत नहीं होती। जिनको अपने मातृ-समाज की सेवा करनी है, उनको वृत्त-पत्रों, फोटो अथवा प्रसिद्धि के पीछे दौड़ने की आवश्यकता नहीं है। अपने रुग्ण बालक की निरपेक्ष सेवा करनेवाली माता संवाददाताओं को अपने वक्तव्य-प्रकाशन हेतु निमंत्रित नहीं करती।

श्री यादवराव– 'अपना समाज तो सोया हुआ है। उसे पुनरागमन कार्य की कुछ भी जानकारी नहीं है। समाज सचेत हो, उसे कुछ उपयुक्त बातों का ज्ञान हो, इसलिए समाचार-पत्रों में अल्प प्रमाण में प्रसिद्धि क्यों न हो?'

श्री गुरुजी– 'मेरे हृदय में एक भावना नित्य उभरती है कि प्रसिद्धि-तत्परता में अच्छाई कुछ भी नहीं है, बल्कि हानि ही होगी। प्रसिद्धि में कृत्रिमता है। स्वामी श्रद्धानंद जी की कथा हम जानते हैं। प्रसिद्धि के कारण उनको विपरीत अनुभव आया। शुद्धीकरण का समाचार-पत्रों के द्वारा प्रचार होने से मुस्लिम प्रक्षोभ भड़क उठा। जिन्होंने फिर से हिंदू धर्म को स्वीकार किया था, उनको मुसलमान आतंकित करने के लिए प्रवृत्त हुए। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानंद जी की हत्या हुई और हिंदू धर्म को स्वीकार करनेवाले फिर से मुसलमान बन गए। यह समाचार-पत्रों में प्रचार का ही परिणाम है। यदि सब कार्य शांततापूर्वक चलता, तो संभवतः बाधाएँ खड़ी नहीं होतीं, अनावश्यक आपत्तियों से संघर्ष नहीं करना पड़ता और हमारे समाज का मनोबल दृढ़ होता। अन्य मतावलंबियों को उत्तेजित कर उनको अधिक प्रयत्नशील होने को हम क्यों प्रवृत्त करें? ईसाई और मुसलमान काम शांततापूर्वक करते हैं, उसका प्रकाशन बिलकुल नहीं करते और हजारों का मत परिवर्तन करते रहते हैं।'

श्री यादवराव– ईसाई थोड़ी बहुत प्रसिद्धि करते हैं।

श्री गुरुजी– 'वह प्रसिद्धि हेतु नहीं, मजबूरी के कारण हैं। शासन द्वारा बलात् मत-परिवर्तन के विषय में जाँच प्रारंभ हुई है, इसी कारण लाचार होकर उनको कुछ बातें प्रकाशित करना आवश्यक हो गया है।'

पुजारियों की समस्या

केरल में तंत्रोक्त विधि से मंदिरों में पूजा करनेवाले पुजारियों का एक सम्मेलन कुछ समय पूर्व हुआ था। उस विषय में बातचीत प्रारंभ हुई। श्री माधवन ने उस सम्मेलन की पृष्ठभूमि स्पष्ट की।

श्री गुरुजी– 'सम्मेलन हुआ, यह तो ठीक ही है। इन तांत्रिकों का वेतन बहुत कम रहता है। समाज-जीवन में उनको यथोचित प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती, यह और भी दुःख देनेवाली बात है। उन तांत्रिक ब्राह्मणों को

भी चाहिए कि वे ईश्वर भक्ति से पूर्ण तपःपूत जीवनयापन करें। इसी प्रकर वे समाज में सम्मान के पात्र बन सकेंगे। सत्य तो यह है कि सामाजिक अवनति का आरंभ ब्राह्मणों के अवनत जीवन-व्यवहार के कारण ही हुआ है। ब्राह्मणत्व का ह्रास ही समाज-जीवन की अवनति का मुख्य कारण रहा है। ब्राह्मणों की नहीं, अपितु ब्राह्मणत्व की रक्षा ही भगवान श्रीकृष्ण का जीवनकार्य था। श्री शंकराचार्य जी ने कहा है कि भगवान श्रीकृष्ण क्षत्रिय वृत्तिधारी थे, उन्होंने अपना कार्य स्वयं नहीं, क्षत्रियों के द्वारा ही पूर्ण करवाया था।' 'इन पुजारियों का वेतन यद्यपि अल्प है, लेकिन उनका उचित सम्मान करना चाहिए। घरेलू नौकरों से भी निकृष्ट व्यवहार उनसे किया जाता है। पुजारियों का जीवन भी पवित्र चाहिए। उनके जीवन में पावित्र्य और उसी कारण उनको योग्य सम्मान-प्राप्ति, एक-दूसरे पर अवलंबित है।'

पूजा के समय ताश खेलनेवाले दो पुजारियों की बात श्री माधवन द्वारा बताने पर श्री गुरुजी ने कहा- 'हाँ, उनका जीवन ऐसा ही निकृष्ट हो गया है। एक विवाह-समारोह में मैं उपस्थित था। उस समय मैंने सुना कि वह पुरोहित मंत्र नहीं कुछ और ही कह रहा था। उसके पास जाकर और उसे धीरे से पूछने पर उसने मुझे चुप रहने का इशारा कर कहा- महाराज जी, मेरी जीविका-अर्जन करने का मेरे लिए यही एकमात्र साधन बचा है। अतः कृपया क्षमा कीजिये।'

जगन्नाथपुरी की भी एक घटना श्री गुरुजी ने सुनाई। 'दर्शन करने आए लोगों की भीड़ थी। मंदिर में एक नियम-सा बना है कि लोगों द्वारा दान दिया हुआ रुपया-पैसा यदि मंदिर के भू-पृष्ठ को स्पर्श करता है, तो वह भगवान को समर्पित माना जाता है। यदि वह जमीन को स्पर्श नहीं करता है तब वह पुजारी का हो जाता है। एक बार राज्यपाल दर्शन करने पुरी गए थे। उनके द्वारा समर्पित धन बलिवेदी को स्पर्श न कर सके, इस धांधली में पंडों ने उनके हाथ से ही रुपया छीन लिया था। एक माह पश्चात् मैं मंदिर में गया था। मेरे हाथ से भी पंडे द्वारा दक्षिणा छीनने का प्रयास करने पर मैंने हाथ उठाकर रुपया बचा लिया और उस पुजारी को साफ शब्दों में कहा कि मुझे भगवान के श्री चरणों में दक्षिणा समर्पित करनी है। आपकी दक्षिणा मैं अलग से दूँगा। मेरे साथ जो कार्यकर्ता थे, उनके द्वारा उस पंडे को डाँटने-धमकाने के कारण मैं निर्बाध रूप से श्री-विग्रह की पूजा कर सका था।'

श्री गुरुजी की अंतर्भावना

श्री गुरुजी का अध्यात्म क्षेत्र का अथाह ज्ञान दर्शानेवाली यह घटना तब घटी, जब जनवरी १९७२ में वे नियमित प्रवास के लिए एर्नाकुलम् आए थे। संघस्थान से वापस आते हुए श्री गुरुजी एक शिवालय पहुँचे। वह मंदिर विश्व हिंदू परिषद् को दान में प्राप्त हुआ था। वहाँ परिषद् का केरलीय केंद्र निर्माण होने जा रहा था। वह एक छोटा-सा शिव-मंदिर था। श्री गुरुजी ने वहाँ थोड़ी देर प्रार्थना की और वहाँ के विश्व हिंदू परिषद् के सचिव श्री रवि नम्बूद्री को अपने पास बुलाकर पूछा– 'यहाँ प्रतिष्ठित शिव मूर्ति का प्रतिष्ठा भाव कौन-सा है?'

रवि नम्बूद्री ने बताया– 'कहते हैं कि रुद्रभाव में इस शिवमूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा की गई है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती पार्वती का जब अपमान हुआ, तब सती ने योगाग्नि प्रज्ज्वलित कर अपनी देह का त्याग कर दिया। क्रोधित होकर शिवजी तांडव नृत्य करने लगे और उन्होंने दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस कर दिया। यही भाव इस शिवमूर्ति में है।'

श्री गुरुजी– 'ठीक है। किंतु आपके पास इसका क्या प्रमाण है?'

रवि नम्बूद्री– 'जिसे अष्टमाँगल्य प्रश्न कहते हैं, उस विषय में चर्चा करने के लिए यहाँ बहुत बड़ी धर्मसभा हुई थी। उसमें तीन प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री उपस्थित थे। प्रत्येक ज्योतिषी ने स्वतंत्र रूप से एक ही आरूढ़ राशि निकाली तथा शास्त्रसंमत पद्धति से परिणामों की परिपूर्ण रूप से चर्चा की। तीनों पंडितों का दिव्यभाव, राशि तथा ग्रहस्थिति का निष्कर्ष एक ही था। इसका अर्थ शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा तांडव भाव में हुई है। जिस पंडित पुजारी ने अनेक शतक पूर्व इस मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा की थी, उस पुजारी के वंशजों से मैंने संपर्क प्रस्थापित किया। उनके पास मूल प्रमाण नहीं थे। किंतु ६० वर्ष पूर्व इस मंदिर का जीर्णोद्धार करते समय जो धार्मिक विधि अपनाई गई उसका विवरण पत्र मिला। वे सारी विधियाँ शिव के विशिष्ट भाव (तांडव) के विषय में ही थीं। अंत में एक दिन अचानक अनपेक्षित स्थान से एक नटराज की मूर्ति हमें दान में प्राप्त हुई। यह भी प्रतिष्ठा भाव का एक विलक्षण संकेत माना जा सकता है।'

श्री गुरुजी– 'तब मैं इसी भाव से मूर्ति का ध्यान कर सकता हूँ। गर्भगृह में मूर्ति के सामने प्रार्थना करने हेतु जब मैं खड़ा था, तब अचानक मेरे मन में एक प्रकाश लहर चमक गई कि आपके द्वारा वर्णन किया हुआ

यही भाव है। उसके स्पष्टीकरण के लिए ही मैंने आपको यहाँ बुलाया। मुझे ऐसा लगता है कि यह चैतन्यमय प्रभावशाली देवता है। इसी भाव से रोज हृदयपूर्वक प्रार्थना किया करो। मंदिर के जीर्णोद्धार एवं निर्माण में आनेवाले कष्ट तथा कठिनाइयाँ पूर्णतः दूर भाग जाएँगी। ईश्वर सामर्थ्यवान एवं भक्तजनों के लिए दयालु है, यह मेरी भावना है।'

रवि नम्बूद्री– 'एक शंका मैं आपसे पूछना चाहता हूँ। इस गाँव में देवत्व की इस रुद्रभाव से प्राणप्रतिष्ठा क्यों की गई है? संपूर्ण गाँव का विनाश करने के लिए?'

श्री गुरुजी– 'कदापि नहीं। आपके पिता तथा परिवार के वृद्ध लोगों ने कभी आपको डाँटा है?'

रवि नम्बूद्री– 'जी, हाँ।'

श्री गुरुजी– 'इसके बाद पिताजी का दृष्टिकोण आपके विषय में कैसा रहा?'

रवि नम्बूद्री– 'मिठाई देकर वे मुझे संतुष्ट करने का प्रयत्न करते थे।'

श्री गुरुजी– 'ईश्वर का स्वभाव भी वैसा ही है। विशेष रूप से जब मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा रुद्रभाव से की गई हो, वे शीघ्र प्रसन्न होते हैं। आपको यह ज्ञात होगा कि भयकारी देवी-देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं। यही बात शास्त्र कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति संपत्ति, उन्नति अथवा किसी भौतिक एवं आध्यात्मिक वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है, वह प्रार्थना सहज फलित हो जाती है। तथैव ईश्वर के सामने औद्धत्यपूर्ण आचरण करनेवाला निश्चित रूप से स्वयं के लिए आपत्ति को निमंत्रण देता है। कलियुग में दीर्घकाल प्रार्थना करने की सहनशीलता लोगों में नहीं होने के कारण, उन्हें शीघ्र परिणाम चाहिए। इसलिए शीघ्र प्रसन्न होनेवाले रौद्ररूप देवता प्रतिष्ठित किए जाते हैं। संभवतः जिस आचार्य ने इस मूर्ति की अनेक शतक पूर्व प्राणप्रतिष्ठा की है, उसके मन में यही बात होगी कि सर्व लोग वैभवशाली बनें तथा धर्महीन वर्ग का नाश हो। सज्जनवृंद का वैभव तथा दुर्जनों का विनाश ही उनका हेतु होगा। अनेक वर्षों तक दुर्लक्षित होते हुए भी इस मूर्ति में पर्याप्त चैतन्य है। इसकी अच्छी तरह से पूजा करो, आपकी सब कठिनाइयाँ दूर भाग जाएँगी।'

बाद में श्री गुरुजी ने उस देवालय की शास्त्रोक्त परिक्रमा की और कार्यालय में आकर देवमूर्ति को अर्पण किए मीठे चावलों का सेवन कर प्रस्थान किया।

अगले दिन रवि नम्बूद्री ने प्रसादस्वरूप कुछ फूल एवं चंदन श्री गुरुजी को दिए। विनोदपूर्वक श्री गुरुजी ने पूछा– 'यह महाप्रसाद है क्या?'

किसी ने उत्तर नहीं दिया। श्री गुरुजी ने स्वयं स्पष्टीकरण किया– 'नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। महाप्रसाद का अर्थ शायद यहाँ किसी को ज्ञात नहीं। इसका अर्थ है कालीदेवी को लगाया हुआ बकरे के मांस का भोग।' चंदन एवं फूल स्वीकारने के पश्चात् श्री गुरुजी ने फिर से पूछा– 'इस देवालय में पवित्र भस्म का प्रसाद नहीं देते क्या?'

इस प्रश्न का किसी ने उत्तर दिया– 'यहाँ देवपूजा में यह प्रथा नहीं है। केरल में शिव-मंदिर सहित सभी देवालयों में चंदन एवं फूलों का ही प्रसाद दिया जाता है। कुछ असाधारण शिव-मंदिरों में ही भस्म प्रसाद रूप में दिया जाता है।'

श्री गुरुजी ने पूछा– 'क्या श्मशान-भूमि से लाई गई भस्म का प्रसाद दिया जाता है?, 'नहीं, कदापि नहीं' और अधिक स्पष्टीकरण देते हुए कहा– 'वाराणसी, उज्जैन जैसे कुछ उत्तर भारतीय प्रसिद्ध देवालयों में श्मशान भूमि से प्रत्यक्ष रूप से लाया गया भस्म ही प्रसाद में दिया जाता है। थोड़ा भस्म मैं सदैव अपने पास रखता हूँ।'

नया दृष्टिकोण

१६ फरवरी १६७२ को श्री गुरुजी नौगाँव (असम) में जिला-संघचालक श्री भूमिदेव गोस्वामी जी के घर पर ठहरे थे। वहाँ वार्तालाप में हिंदू-समाज में आ रहे परिवर्तनों की बात चल पड़ी। उसी में मिश्र विवाहों की चर्चा छिड़ी।

मणिपुर के श्री मधुमंगल शर्मा ने श्री गुरुजी से पूछा– 'आज अनेक हिंदू, अहिंदुओं से विवाह करते हैं। उनकी संतानों का भविष्य क्या होगा?'

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया– 'ऐसे सभी अहिंदुओं को हिंदू बना लेना

चाहिए। उनकी संतानें भी हिंदू ही होंगी।'

उस पर श्री शर्मा जी ने कहा– 'हिंदू-समाज अभी तक इतना प्रगत कहाँ हुआ है?'

तब उन्होंने कहा– 'हिंदू समाज के रक्षण और नई समाज-रचना के लिए यह करना ही पड़ेगा। हिंदू-समाज धीरे-धीरे इस व्यवस्था को स्वीकार कर लेगा।'

माता की सेवा का प्रचार?

मई १९७२ में ग्वालियर-प्रवास के समय 'राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर' नामक पुस्तक, जिसमें भारत-पाक युद्ध के समय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों की सेवाओं का तथ्यपूर्ण उल्लेख था, श्री गुरुजी को भेंट दी गई। भेटकर्ता का दावा था कि 'उल्लेखित तथ्य भविष्य में इतिहास की सामग्री बन सकते हैं और इस प्रकार के साहित्य से संघकार्य का प्रचार भी हो सकता है।'

श्री गुरुजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया– 'यदि कोई पुत्र माँ की सेवा करने का समाचार प्रकाशित करे, क्या उसे श्रेयस्कर माना जा सकता है? स्वयंसेवकों ने भारतमाता की सेवा में जो कुछ किया, वह उनका स्वाभाविक कर्तव्य ही था, अतः उसका प्रचार कैसा?'

तमिल और संस्कृत

सन् १९७२ की घटना है। केरल के प्रवास पर जाते समय श्री गुरुजी एक दिन चेन्नै में ठहरे थे। उनका निवास संघचालक जी के यहाँ था। भोजन के समय 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' द्वारा तमिल-भाषा संबंधी किए जा रहे प्रचार के बारे में अनौपचारिक चर्चा होने लगी। तमिल स्वयंपूर्ण भाषा है, अतः उसे संस्कृत का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं। इसपर किसी ने कहा कि पीने के पानी के लिए संस्कृत के 'जलम्' शब्द का प्रयोग तो सभी करते हैं।

श्री गुरुजी ने कहा– 'जलम्' संस्कृत शब्द है और सर्वसाधारण व्यक्ति उसका अर्थ समझ जाता है। उसी प्रकार पके हुए चावल के लिए 'अन्नम्' शब्द भी तमिल में है। वह भी संस्कृत का ही है।

श्री अण्णामलै ने कहा– 'अन्नम् शब्द का प्रयोग केवल ब्राह्मण परिवारों में ही होता है। सामान्य तमिल-परिवारों में उसका प्रचलन नहीं है।'

उनसे श्री गुरुजी ने पूछा– ''फिर वे 'अन्नम्' के लिए किस शब्द का प्रयोग करते हैं?''

श्री धनुसु ने बताया– 'चोरु।'

इस पर श्री गुरुजी ने कहा– 'क्या आपकी यह धारणा है कि 'चोरु' शब्द शुद्ध तमिल है और उसका संस्कृत के साथ कोई संबंध नहीं है?

श्री धनुसु– 'मुझे लगता है कि वह शुद्ध तमिल शब्द है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'आपकी जानकारी ठीक नहीं है। वह शब्द मूलतः संस्कृत है। वैदिक साहित्य में उसका उल्लेख है। 'चरु', अर्थात् यज्ञ में हवन करने के लिए पकाया हुआ अन्न।'

श्री कृष्णमूर्ति ने हँसते हुए विनोद में कहा– 'तब तो द्रविड़ मुनेत्र कड़गम वाले प्रचार करेंगे कि संस्कृत से तमिल अधिक पुरानी है और तमिल के शब्द वैदिक साहित्य में उधार लिए गए हैं।

उनके इस कथन पर श्री गुरुजी और अन्य सभी खिलखिलाकर हँस पड़े।

कठिन योग, सरल साधना

१६ फरवरी १९७३ का प्रसंग है। श्री गुरुजी उत्कल-प्रवास के दौरान कटक में थे। अनौपचारिक चर्चा के समय श्री गोविंदराव भुस्कुटे (भाऊसाहब) ने उनसे पूछा– 'श्री अरविंद और श्री रमण महर्षि के साहित्य में ऐसा पढ़ने में आया है कि अपनी सारी वृत्तियाँ ईश्वराधीन कर देनी चाहिए, तब हमारे हाथों से अपने आप सत्कर्म ही होंगे। किंतु मेरा स्वयं का अनुभव ऐसा है कि मन में सदा सत् और असत् प्रवृत्तियों में संघर्ष होता रहता है और असत् प्रवृत्ति को दबाकर सत् प्रवृत्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए सदा प्रयत्न करना पड़ता है। संत तुकाराम भी इसका समर्थन करते हैं। वे कहते हैं– आम्हा संता नित्य युद्धाचा प्रसंग– (संतों को नित्य संघर्षरत रहना पड़ता है)। तब इसमें संगति कैसे लाई जाए?'

श्री गुरुजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा– 'सिर्फ प्रवृत्ति को दबाने से काम नहीं चलेगा। वह तो नष्ट होनी चाहिए। ज्ञानयोग, कर्मयोग अथवा

राजयोग की अपेक्षा भक्तियोग का आचरण सरल है, ऐसा माना जाता है। वस्तुतः भक्तियोग ही आचरण के लिए कठिन है, क्योंकि उसमें निरपवाद समर्पण-भाव आवश्यक है। यदि वह सध गया तो हमारे हाथों से श्री अरविंद अथवा महर्षि रमण के कथनानुसार सत्कर्म ही होंगे।'

प्रवाह के साथ बहते रहना

१८ अप्रैल १९७३ को श्री दादासाहेब आप्टे श्री गुरुजी के पास बैठे थे। श्री गुरुजी का स्वास्थ्य उन दिनों बहुत गिर गया था। उन्होंने श्री गुरुजी से पूछा– 'गुरुजी, जीवन-सूत्र के रूप में आपने कुछ निश्चित किया है क्या?'

श्री गुरुजी बोले– 'सूत्र? मैंने प्रवाह के साथ बहते रहने का निश्चय किया है।'

दादासाहेब– 'याने, प्रवाह में पड़े रहना?'

श्री गुरुजी ने स्पष्ट किया– 'नहीं, नहीं। प्रवाह के साथ बहते रहना। प्रवाह के बाहर जाना नहीं। प्रवाह में डूबकर नष्ट होना भी नहीं, प्रवाह के विरुद्ध भला कैसे जाना? किनारे पर खड़े होकर प्रवाह की ओर देखना भी नहीं। प्रवाह के बाहर फेंका जाना, यह भी नहीं। भगवान ने बताया है न, वही है मेरा जीवन-सूत्र –

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् (गीता३/२५)।

(विश्व का मार्गदर्शन करनेवालों को लोक-विलक्षण नहीं होना चाहिए। लोकसंग्रह का व्रत लेनेवालों को सर्वसाधारण व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न नहीं दिखलाई देना चाहिए)।

वैज्ञानिक धारणा

संघ का शीतकालीन शिविर चंडेश्वर (आजमगढ़) में चल रहा था। शिविर की ही एक पटकुटी में श्री चंद्रबली ब्रह्मचारी जी गुरुजी से मिलने आए। चाय बहुत अच्छे, साफ-सुथरे कप और केटली में थी। ब्रह्मचारी ने कप में चाय पीने में असमर्थता व्यक्त की। गुरुजी ने उनके लिए मिट्टी का पुरवा (कुल्हड़) मँगाया और जब उनके साथ ब्रह्मचारी जी चाय पीने लगे,

तब उन्होंने समझाया कि 'महाराज, कप भी तत्त्वतः एक प्रकार की मिट्टी का बना है, पर इस पर धातु का जो लेप लगा दिया गया है, उससे इसके दोष का मार्जन हो गया है और स्वच्छता में यह बाधक नहीं होता। अतः इसके प्रयोग में हानि नहीं है।' ब्रह्मचारी जी ने इतना ही कहा– 'मेरा एक नियम बन गया है, उसी का पालन अब करना है।'

जागरूक चेतनता

ब्रह्मचारी जी के आग्रह पर शिविर से जाते समय श्री गुरुजी दुर्गा जी के मंदिर में देवी-दर्शन हेतु गए। ब्रह्मचारी जी ने माला पहना कर उनका सम्मान किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों ने समवेत स्वर में कवच, अर्गला ओर कीलक स्तोत्रों का पाठ किया। अर्गला स्तोत्र में जब उन्होंने 'पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्' श्लोक का 'पत्नी' शब्द मुँह से निकाला, श्री गुरुजी ने कड़कती आवाज में कहा– 'रुकिए'। ब्राह्मणों का पाठ बंद हो गया। तब उन्होंने हँसकर कहा यह श्लोक मेरे लिए नहीं है। इसे छोड़कर आगे बढ़िए।

उनकी इस जागरूक चेतनता पर सभी जन मुग्ध हो गए।

विभीषण-प्रशंसा और कर्ण-निंदा क्यों?

श्री गुरुजी से एक कार्यकर्ता ने प्रश्न किया– 'क्या यह सत्य नहीं है कि भारत में सर्वदूर लोग रामायण पढ़ते समय विभीषण की प्रशंसा करते हैं और महाभारत पढ़ते समय कर्ण की निंदा करते हैं?'

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया– 'हाँ, यह सत्य है। एक की प्रशंसा और दूसरे की निंदा अपने देश की संस्कृति की विशेषता अभिव्यक्त करती है। धर्म के प्रति श्रद्धा-आस्था से व्यक्तिगत रिश्ते-नाते और निष्ठा गौण समझना, अपनी विशेषता है। दोनों में प्रेरक विचार उनकी व्यक्तिगत निष्ठा ही है। एक की निष्ठा रावण के प्रति है और दूसरे की दुर्योधन के प्रति। विभीषण ने अपनी व्यक्तिगत निष्ठा की मर्यादा पहचानकर उसे धर्मानुकूल निष्ठा बनाने का प्रयास किया। इसमें जब वह असफल रहा और उसे अपने भाई को जब कर्तव्य और सत्कर्म के पथ पर ले जाना संभव न हुआ, तब राष्ट्रीय संस्कृति और धर्म के प्रति अपना स्वयं का कर्तव्य निश्चित कर वह

श्रीराम की शरण में गया। कर्ण की भी राजा दुर्योधन के प्रति एकांतिक निष्ठा थी। कर्ण उसको अपना सर्वस्व और आश्रयदाता मानता था, परंतु इससे ऊपर उठकर धर्म और संस्कृति के प्रति अपने कर्तव्य को कर्ण ने स्वीकार नहीं किया। व्यक्तिगत निष्ठा से ऊपर उठकर वह धर्मनिष्ठा और तदनुसार अपने जीवन का व्यवहार निर्धारित करने में असफल रहा। विभीषण धर्म-पथ पर अग्रसर हुआ, परंतु कर्ण ने धर्म का मार्ग छोड़ा। मनुष्य के जीवन में व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्य को स्पष्ट करनेवाला यह कर्ण और विभीषण का दृष्टांत है।

हिंदू राष्ट्र और सेक्युलरिज्म

एक बार एक अंग्रेज सज्जन श्री गुरुजी से भेंट करने के लिए आए। बातचीत के दौरान उन्होंने पूछा— भारत में तो सेक्युलरिज्म है, किंतु आप हिंदुओं का प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में सेक्युलरिज्म का क्या होगा?

श्री गुरुजी ने उन्हीं से प्रश्न किया— 'क्या आपका ब्रिटेन सेक्युलर स्टेट है?'

अंग्रेज सज्जन— हाँ।

श्री गुरुजी— 'क्या आपकी यह परंपरा नहीं है कि वहाँ का सम्राट केवल प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियन ही हो सकता है? कोई अन्य क्रिश्चियन नहीं?'

अंग्रेज सज्जन ने कहा— 'जी, हाँ।'

श्री गुरुजी— तब आप ही बतलाएँ कि केवल एक प्रोटेस्टेंटपंथी सम्राट का राज्य होने के बाद भी आपके ब्रिटेन में सेक्युलरिज्म कैसे चलता है? इस कारण उसका कुछ बिगड़ा क्या? कुछ भी नहीं बिगड़ा। तब फिर हमारे भारत में हिंदुओं का प्रभुत्व रहने पर सेक्युलरिज्म पर आँच कैसे आएगी?

मार्क्स का भौतिकवाद

श्री गुरुजी त्रिवेंद्रम में थे। संघचालकों तथा अन्य सज्जनों के साथ अनौपचारिक बातचीत हो रही थी। उस समय एक सज्जन ने कहा— 'मैं संघ से संबंध नहीं रखता, क्योंकि मैं सेक्युलर हूँ।' श्री गुरुजी ने उनसे

कहा– 'भाई, केवल हिंदू ही ऐसा कह सकते हैं। सेक्युलर होने का दावा केवल हिंदू ही कर सकता है। दूसरे लोग निधार्मिक हो सकते हैं, परंतु पंथ-निरपेक्ष नहीं बन सकते। हिंदू-समाज बहुत उदार हृदय का समाज है। सभी उपासना-मार्ग एक ही ईश्वर के पास पहुँचाते हैं, ऐसी उसकी धारणा है।'

वे सज्जन फिर बोले– 'मैं तो द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर विश्वास करता हूँ।'

इस पर श्री गुरुजी ने कहा– 'उस सिद्धांत की तो बहुत पहले ही धज्जियाँ उड़ चुकी हैं। यहाँ तक कि स्वयं मार्क्स महोदय भी सच्चे भौतिकवादी नहीं थे।'

उक्त सज्जन ने कहा– 'मैंने तो उसके संबंध में कुछ पढ़ा नहीं है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'मनुष्य को पूर्ण पढ़ना चाहिए, विस्तृत अभ्यास करना चाहिए और फिर श्रद्धा रखनी चाहिए। मार्क्स के अनुयायियों ने उसे ठीक ढंग से नहीं समझा। 'The Philosophical and Economic Manuscript 1844' से यह स्पष्ट होता है कि वे रुक्ष भौतिकवादी नहीं थे। उनके भौतिकवादी प्रतिपादन के पीछे भी नैतिकता थी, यद्यपि आगे चलकर उन्होंने उस पहलू पर बल देना आवश्यक नहीं माना।'

'युद्धकाल में स्वयं रूस ने क्या किया? रूस तो कम्युनिज्म, अर्थात् द्वंद्वात्मक जड़वाद का पीहर है, किंतु वहाँ गिरजाघरों का पुनरुद्‌घाटन किया गया है। आज भी वहाँ गिरजाघर खुले हैं।

व्यापारी बंधुओं को नई दृष्टि

नगर के व्यापारी एवं व्यवसायी बंधुओं को संघकार्य का परिचय हो और उन्हें संघकार्य में सक्रिय किया जाए, इस दृष्टि से उन्हें समय-समय पर संघ-कार्यालय में लाने का प्रयास किया जाता था। ऐसे ही एक कार्यक्रम में एक व्यापारी श्री कोठारी पधारे थे। वे देवी दुर्गा के उपासक थे। दुर्गा-सप्तशती का नित्य पाठ भी करते थे।

उनका यह परिचय पाकर श्री गुरुजी ने उनसे कहा– 'दुर्गा-सप्तशती में अंकित देवी अथर्वशीर्ष में 'अहं राष्ट्री संगमनी' ऐसा उल्लेख आया है। क्या आपने उसे पढ़ा है? स्पष्टीकरण करते हुए श्री गुरुजी ने बताया– 'राष्ट्र की सेवा ही माँ भगवती की सेवा है। इससे भिन्न संघ का कार्य है

क्या?' श्री गुरुजी के इस मौलिक कथन से श्री कोठारी तथा अन्य उपस्थित व्यापारी बंधुओं को एक नई दृष्टि एवं दिशा प्राप्त हुई। फलतः वे संघ के अधिक निकट आए और सक्रिय भी हुए।

स्वभाषा का आग्रह

मदुरै (तमिलनाडु) में हुई प्रतिष्ठित जनों की बैठक में एक वकील महोदय ने कहा– 'हिंदी का उपयोग करने से तमिल भाषा की हानि होगी। उसका विकास नहीं होगा और तमिल का महत्त्व भी कम होगा।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'ऐसा होने का कोई कारण नहीं है, परंतु हिंदी के उपयोग का आग्रह न होने पर तो आप पर अंग्रेजी सवार हो जाएगी।'

वकील महोदय इससे सहमत नहीं हुए। श्री गुरुजी ने उनसे सहज भाव से पूछा– 'क्या आपके कोर्ट-कचहरी में तमिल भाषा में कामकाज चलाना संभव है? वकील महाशय के 'हाँ' कहने पर श्री गुरुजी ने कहा– 'कितने वकील तमिल भाषा में कामकाज करते हैं?' वकील साहब ने उत्तर दिया– 'एक भी नहीं।'

यह उत्तर सुनकर श्री गुरुजी ने कहा– 'तमिल के तो आप स्वयं ही शत्रु हैं। हिंदी भाषा तमिल की शत्रु नहीं है।'

वर्षगाँठ अपनी परंपरा के अनुरूप हो

एक प्रतिष्ठित सज्जन के घर बालक की वर्षगाँठ कार्यक्रम में श्री गुरुजी आमंत्रित थे। वे उस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। जिसकी वर्षगाँठ मनाई जा रही थी, उस छोटे बालक को उसके माता-पिता ने पूर्ण पाश्चात्य वेशभूषा से सजाया था। साथ ही 'केक' काटने और मोमबत्तियाँ बुझाने का कार्यक्रम भी था।

श्री गुरुजी ने माता-पिता से पूछा– 'अपनी परंपरा के अनुरूप बालक को बालकृष्ण या रामलला जैसा सजाया नहीं जा सकता था

क्या? परकीय रीति-रिवाजों के दास बनने की हमें आवश्यकता क्यों है? हमें उसे अंग्रेज थोड़े ही बनाना है। उसे अपनी शैली से सुंदर रेशम की धोती पहनाओ, गले में पुष्पों की व रत्नों की माला हो, सिर पर बालों में मयूर पंख, ललाट को चंदन से सजाकर उसकी अपूर्व छवि तो देखो! अंग्रेजी रिवाज में केक काटते हैं तथा मोमबत्ती बुझाते हैं, इसलिए आपने उसी तरह कार्यक्रम आयोजित किया है। अपनी परंपरा में दीप बुझाना अशुभ माना गया है। इस सर्वाधिक आनंद के क्षणों में अशुभ बात क्यों सोची जाए? हम तो दीप से आरती उतारते हैं, भाल में कुंकुम लगाते हैं। इस प्रकार के शुभ कार्यक्रमों के स्थान पर पाश्चात्यों की नकल कर, उनके रीति-रस्मों का अनुसरण कर हम किन संस्कारों का परिणाम बालक और उसके मित्रों पर करना चाहते हैं? बाल्यावस्था में मेरी माँ मुझे वर्षगाँठ पर बालकृष्ण जैसा सजाती थी।

साधु चिलम का सेवन क्यों करते हैं?

भगवे वस्त्र धारण करनेवाले आजकल के साधुओं के बारे में बातचीत चल रही थी। वे ढोंगी रहते हैं, लोगों की वंचना करते है, इस प्रकार के कुत्सित उद्‌गार सुनकर श्री गुरुजी ने कहा– 'सभी साधु ऐसे नहीं होते। कुछ अच्छे साधुओं को मैं पहचानता हूँ।'

एक स्वयंसेवक ने कहा– 'साधु तो चिलम, तंबाकू और गाँजे का सेवन करते हैं। यह देखकर उनके अच्छे होने पर विश्वास करना कठिन होता है।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'कुछ अच्छे साधनारत साधु चिलम का सेवन क्यों करते हैं, यह मुझे मालूम है। वे केवल चिलम का सेवन करते नहीं बैठते। स्नानादि कर शरीर को भस्म लगाने के बाद साधना प्रारंभ करने के पूर्व वे चिलम का जोरदार दम लेते हैं। उसके कारण मन व शरीर का संबंध कुछ समय के लिए समाप्त हो जाता है। वैसा अनुभव होते ही वे चिलम बाजू में रखकर, शरीर अलग है और मैं उससे अलग हूँ, यह सूत्र पकड़कर अपनी साधना प्रारंभ करते हैं। 'मैं' और 'मेरा शरीर', इनका संबंध तोड़कर ही तो साधना करनी होती है। उनके लिए चिलम एक सरल साधन है।'

ॐ का अर्थ

एक बार ॐ के अर्थ के बारे में श्री गुरुजी बोले– 'अंतिम सत्य परब्रह्म का नाम ॐ है। तस्य वाचकः प्रणवः।'

किसी ने पूछा– 'इसका अर्थ क्या है।'

श्री गुरुजी ने उत्तर दिया– बाहर से अपने कानों पर आघात करनेवाली सभी प्रकार की आवाजों से मुक्त होकर कानों में गूँजनेवाली आवाज ध्यान से यदि सुनी तो वह ॐ के समान होती है।

काला रंग शोक का प्रतीक नहीं

पत्रकारों के सम्मेलन में एक पत्रकार ने पूछा– 'संघ में काली टोपी का प्रचलन कैसे हुआ?'

श्री गुरुजी ने बताया– 'प्रारंभ में डाक्टर साहब ने इसको स्वीकार किया, इसलिए काली टोपी का प्रयोग चल पड़ा।'

पत्रकार– 'क्या काली टोपी के प्रयोग के पीछे कोई विशेष हेतु है?'

श्री गुरुजी– 'एकदम नहीं। उन दिनों ऐसी ही टोपी का प्रयोग प्रचलित था, अतः संघ के गणवेश में इसको सम्मिलित कर लिया गया।'

पत्रकार– 'क्या टोपी का काला रंग शोक का प्रतीक नहीं है?'

श्री गुरुजी– 'क्यों न ऐसा माना जाए कि आपके मुख से पश्चिमी संस्कृति और ईसाइयत बोल रही है? पश्चिम में काला रंग शोक का प्रतीक है, पर हमारे यहाँ तो यह शुभ का परिचायक है। हमारे भगवान श्रीकृष्ण काले रंग के हैं, भगवती काली का रंग काला है। अतीव सुंदर समझी जानेवाली द्रौपदी श्यामवर्णा थी। हमारे यहाँ काला रंग शोक का प्रतीक कैसे हो सकता है?'

स्वाभाविक पारिवारिक भावना

विश्व-यात्रा में प्रधानमंत्री पं.नेहरू अपनी पुत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी को अपने साथ ले गए थे, जिसके संबंध में एक स्थानीय पत्र ने कुछ टिप्पणी की थी। गुरुजी का कथन इस टिप्पणी के संबंध में ही था। उन्होंने

कहा— 'मेरी समझ में नहीं आता कि लोगों को बुरा क्यों लगता है? आखिरकार इकलौती पुत्री को छोड़कर जीवन के नीरस अंतिम चरणों में पंडित नेहरू के पास ऐसी कौन-सी चीज बची है, जिसे वे अपना कह सकें, जिसके संपर्क में आकर शांति और आनंद का अनुभव कर सकें? मैं एक पारिवारिक व्यक्ति न होते हुए भी उनकी भावना के प्रति सहानुभूति रखता हूँ, किंतु यह कितने आश्चर्य का विषय है कि पारिवारिक लोग इस भावना का आदर नहीं कर पाते।'

प्रशंसा संयमित शब्दों में उचित

बैठक में स्वयंसेवकों का परिचय हो रहा था। एक ज्येष्ठ कार्यकर्ता परिचय करते समय स्वयंसेवकों के सद्गुणों की अनावश्यक प्रशंसा कर रहे थे। वह सुनकर श्री गुरुजी ने स्वयंसेवकों के सामने तो कुछ विशेष नहीं कहा, किंतु बैठक के बाद उस ज्येष्ठ कार्यकर्ता से कहा— 'स्तुति अथवा प्रशंसा बहुत सोच-समझकर करनी चाहिए। स्वयंसेवक को काम करने हेतु प्रेरित करने के लिए उसके अच्छे गुणों का सुयोग्य शब्दों में उल्लेख करना तो आवश्यक है, किंतु अधिक प्रशंसा करना खतरनाक भी होता है। उसके कारण बहुधा अहंकार बढ़ता है। आत्मविश्वास बढ़कर, कार्य में अधिक उत्साहपूर्वक लगने के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही प्रशंसा संयमित शब्दों में करना उचित है।'

मना सज्जना भक्तिपंथेची जावे

समर्थ रामदास स्वामी लिखित 'मनाचे श्लोक' की इस पंक्ति के बारे में बात चल रही थी। एक स्वयंसेवक ने ऐसा विषय रखा कि अभी तक किसी संत महात्मा ने मन को 'सज्जन' नहीं कहा। मन के दुराग्रही स्वभाव को प्रमादी, बलवंत, दृढ़, चंचल, पशु इत्यादि विशेषणों द्वारा ही दर्शाया है। इसलिए स्वामी समर्थ ने भी 'सज्जन' का विशेषण 'मन' को न लगाकर संभवतः भक्तिपंथ को लगाया होगा। अतः वाममार्ग से न जाते हुए सज्जनों के भक्तिपंथ का स्वीकार करें, ऐसा समर्थ का मनोबोध होगा।'

श्री गुरुजी ने कहा— 'वैसा नहीं है। श्री समर्थ ने मन को सज्जन कहकर उसका गौरव किया और भक्तिमार्ग से जाने के लिए प्रवृत्त किया।

दुर्जनों को भी अपशब्द से संबोधित न करते हुए, गौरवान्वित कर सन्मार्ग में लगाने का प्रयत्न संतों ने किया है। वही समर्थ भी कर रहे हैं। अन्य श्लोकों में भी मन का उल्लेख सज्जन ऐसा ही आता है। 'मना सज्जना राघवी भक्ति कीजे'– इसमें भी मन को ही सज्जन कहा है। श्री समर्थ का राघव को सज्जन विशेषण से संबोधित करना विचित्र लगेगा।

अपने उत्सर्गों को नहीं भुनाएँगे

बंदीकाल में अतीव हानि सहनी पड़ी। कारागृह में रहे स्वयंसेवकों को अधिक प्रतिष्ठा का पद अपने संघकार्य में देना उचित होगा, इस आशय के विचार एक स्वयंसेवक ने प्रकट किए। तब श्री गुरुजी ने कहा– 'वैसा कांग्रेस में हुआ है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए जो त्याग किया, उसके बदले में प्रतिष्ठा का पद, कुर्सी इत्यादि की माँग की जाती है।' कांग्रेस के कुछ नेतागण ही कहते हैं– 'स्वातंत्र्य-संघर्ष में देश के लिए हमने बहुत बड़ा त्याग किया है, अब उस उत्सर्ग को भुनाने में कोई गलती नहीं है।' श्री गुरुजी ने कहा– 'यह भावना, यह विचार गलत है। देश के लिए हमने कुछ कष्ट सहन किए, भारत स्वतंत्र हो, इसके लिए आपत्तियाँ, कष्ट उठाना तो हमारा कर्तव्य है। हमने कुछ किया उसके बदले में कुछ मिले, यह तो सौदेबाजी होगी। यह स्वार्थ की प्रवृत्ति है। स्वयंसेवक को ऐसा नहीं सोचना चाहिए।'

हिंदू जीवन में राजनीति सर्वोपरि नहीं

श्री किंकर नाम के एक हिंदुत्ववादी कार्यकर्ता श्री गुरुजी से सविस्तार बातें करने के उद्‌देश्य से नागपुर आए और नागोबा की गली में श्री गुरुजी के निवास पर पहुँचे। उन्होंने श्री गुरुजी से कहा, 'राजनीति जीवन का परिपाक है। ऐसा होते हुए भी आप संघ को राजनीति से पूर्णतः अलिप्त क्यों रख रहे हैं?'

श्री गुरुजी ने कहा– 'संघकार्य करते हुए मैं केवल हिंदुओं से बोलता हूँ। जो विचारों से हिंदू नहीं, उनसे चर्चा करना आज मुझे आवश्यक नहीं लगता।'

यह उत्तर सुनकर उन्हें धक्का लगा। वे कहने लगे– 'क्या आपको ऐसा लगता है कि मैं हिंदू नहीं हूँ। मेरे विचार हिंदू नहीं हैं?'

श्री गुरुजी ने कहा– 'राजनीति यह जीवन का सब कुछ है, ऐसा कहनेवाला हिंदू कैसे हो सकता है? हिंदू विचार के अनुसार राजनीति समाज-जीवन की व्यवस्था से संबंधित एक अंग मात्र है। हिंदू-जीवन में राजनीति कभी भी सर्वोपरि नहीं थी। आप तो राजनीति को ही जीवन का परिपाक मानते हैं।'

यह सुनकर उस हिंदुत्ववादी की बोलती ही बंद हो गई और अन्य औपचारिक बात कर वे चलते बने।

डा. राधाकृष्णन जी से वार्तालाप

वाराणसी के हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति पद का दायित्व ग्रहण करने के पश्चात् डा. राधाकृष्णन जी से श्री गुरुजी का प्रथम संपर्क हुआ था। वहाँ की संघ-शाखा के उत्सव में सन् १९४६ में डा. राधाकृष्णन जी अध्यक्ष के नाते पधारे थे। उस उत्सव में भाषण श्री गुरुजी का था। तभी से उनका डा. राधाकृष्णन जी से अनौपचारिक रूप से मिलना चलता रहा।

आगे चलकर डा. राधाकृष्णन पहले उपराष्ट्रपति और तत्पश्चात् राष्ट्रपति बने। उनसे श्री गुरुजी का विचार-विमर्श चलता था, परंतु राजनीति के बारे में बातचीत नहीं होती थी। मानो दोनों ने राजनीति-विषयक न बोलने का परहेज किया हुआ हो।

एक बार श्री गुरुजी, डा. राधाकृष्णन जी से मिलने गए तब वार्तालाप में मालूम हुआ कि वे अपनी आँख की शल्य चिकित्सा एवं शल्यक्रिया कराने हेतु अमरीका जानेवाले हैं। श्री गुरुजी ने उनसे कहा– 'यदि हमारे राष्ट्रपति महोदय शल्यक्रिया कराने विदेश जाना पसंद करते हैं, तब भारतीय शल्यविदों के बारे में जनसामान्य की धारणा विपरीत बनेगी।'

डा. राधाकृष्णन जी ने कहा– 'आपका कहना बिल्कुल सत्य है, परंतु क्या किया जाए? यहाँ के ख्यातिप्राप्त अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के उपचार एवं शल्यक्रिया के परिणामस्वरूप मेरी एक आँख की रोशनी चली गई। अब दूसरी आँख के बारे में धोखा स्वीकारने की इच्छा नहीं होती।' इस पर दोनों मुक्त रूप से हँस पड़े।

देश-हित के साथ कोई शर्त नहीं

एक बार भारतीय मजदूर संघ के कार्यकर्ता उनसे मिलने आए, उन्होंने पूछा– 'क्यों जी! तुम लोगों की जो साझे की सौदेबाजी (Collective bargaining) है, उसमें और 'डाकेजनी' में कितना अंतर है? इसका उन कार्यकर्ताओं ने अपने तरीके से उत्तर दिया।

श्री गुरुजी ने फिर दूसरा प्रश्न किया– 'चाहे जो मजबूरी हो, हमारी माँगे पूरी हों' तथा 'आधा काम व पूरा दाम' के बारे में तुम लोगों का क्या मत है?

उत्तर मिला– 'हमारा घोषवाक्य तो– देश के हित में करेंगे काम और काम के लेंगे पूरे दाम – है।'

श्री गुरुजी ने पूछा– 'काम के पूरे दाम न मिलने पर देश के हित में काम नहीं करोगे क्या? देश के हित के साथ कोई शर्त नहीं रखनी चाहिए।'

चर्चा के अंत में सफाई-कर्मचारियों, रिक्शाचालकों, बुनकरों आदि असंगठित क्षेत्र के मजदूरों में काम की स्थिति के बारे में पूछा और उस असंगठित क्षेत्र में काम बढ़ाने का निर्देश दिया। मार्गदर्शन करते हुए कहा– 'देखो, तुम लोग उपेक्षित तथा सताए हुए लोगों के बीच काम करते हो, उनका जीवन किस प्रकार मंगलमय हो सकता है इस पर विचार करो। इसके लिए जो भी उचित मार्ग हो, अपनाओ। लड़ने-भिड़ने की आवश्यकता हो, तो उसे भी करो। यह सब करते समय बहुत से प्रलोभन आएँगे, दबाव आएगा, किंतु तुम लोगों से आशा यही है कि किसी के सामने किसी भी प्रकार से, किंचित् भी झुकोगे नहीं।'

आत्मीय का अन्न, परान्न कैसे?

श्री गुरुजी एक स्थान पर किसी प्रतिष्ठित सज्जन से मिलने गए। उनके साथ स्थानीय कार्यकर्ता भी थे। बातचीत समाप्त होने के बाद एक प्रमुख कार्यकर्ता ने उस सज्जन से कहा– 'श्री गुरुजी कल मेरे यहाँ भोजन करने के लिए पधारेंगे, आप भी मेरे यहाँ आइये और उनके साथ भोजन ग्रहण करें, यह आपसे विनम्र प्रार्थना है।'

तब वे सज्जन बोले– 'आपके इस निमंत्रण को मैं एक शुभ

अवसर मानता हूँ, परंतु यह मेरे भाग्य में नहीं है। मैं भोजन नहीं कर पाऊँगा। परान्न ग्रहण न करने का मेरा नियम है।

इसपर श्री गुरुजी ने तत्काल कहा– 'परान्न ग्रहण न करने का मेरा भी नियम है। मैं इस नियम का तत्परता से पालन करता हूँ।' सब लोग अचंभित होकर उनकी ओर देखने लगे। उन सज्जन ने भी साश्चर्य स्वर में कहा– 'यह कैसे हो सकता है? आप तो कल इनके यहाँ भोजन करने जा रहे हैं।'

श्री गुरुजी ने कहा– 'इनके यहाँ का अन्न, परान्न कैसे हो सकता है? क्या ये पराए हैं? ये तो अपने हैं, स्वकीय हैं, पूर्णतया आत्मीय हैं।'

कौन शिक्षित, कौन अशिक्षित ?

एक बार लखनऊ के एक कार्यकर्ता ने परिचय देते समय अपना नाम 'माताबदल' बताया। श्री गुरुजी ने उससे पूछा– 'माताबदल का अर्थ क्या है, जानते हो?'

अपना बचाव करने के लिए उस कार्यकर्ता ने कहा– 'मेरे माता-पिता अशिक्षित हैं, इस कारण यह दकियानूसी अर्थहीन नाम रख दिया है।'

यह सुनते ही श्री गुरुजी ने कुछ कड़ेपन के साथ कहा– 'वे माता-पिता अशिक्षित भले ही हों, पर उन्होंने नाम ठीक ही रखा है। हाँ, तुम अवश्य शिक्षित होकर भी नासमझ हो, जो ऐसा बोलते हो। अपने अज्ञान को ढकने के लिए अपने बड़ों में, अपने पूर्वजों में दोष देखना, दोष थोपना कहाँ तक उचित है? अरे भाई। माताबदल का अर्थ है श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण की माता दो बार बदल गई थी। पहले देवकी से यशोदा और फिर यशोदा से देवकी, इसलिए उनका एक नाम माताबदल भी है।

सेवाधर्म में कर्तव्य-भावना प्रमुख

उन दिनों बिहार जबरदस्त बाढ़ की चपेट में था। एक प्रमुख कार्यकर्ता ने श्री गुरुजी से कहा– 'सेवा में स्वयंसेवक तो पूरी तरह जुटे हैं, पर साधनों का अभाव कार्य में बाधक बन रहा है। अकेले बिहार से इतने

बड़े प्रमाण पर तत्काल साधन जुटा पाना कठिन है।'

एक अति उत्साही कार्यकर्ता बीच में ही बोल पड़ा- 'इस कारण पर्याप्त देर हो जाएगी। अनेक दलों ने बड़े प्रमाण पर सहायता कार्य प्रारंभ कर दिए हैं। यदि हमारी सहायता में विलंब हुआ तो हम लोग उनसे पिछड़ जाएँगे।'

उसकी बात सुनकर श्री गुरुजी ने कहा- 'क्या उन दुःखी बंधुओं को सहायता इसलिए देना चाहते हो कि तुम लोग अन्य पार्टियों से पिछड़ न जाओ? यदि तुम्हारी भावना ऐसी संकुचित दलीय प्रेरणा पर आधारित है, तब संघ का ऐसे काम से कोई वास्ता नहीं हो सकता। भाई, हम लोगों को सहज भाव से अपने पीड़ित बंधुओं की सेवा करनी है, यह अपना कर्तव्य है। हमें इस के एवज में न वाहवाही लूटनी है, न वोट माँगने हैं। इस प्रकार के सेवाधर्म में कर्तव्य-भावना ही प्रमुख होनी चाहिए।'

देवता को अंतश्चक्षु से देखें

कन्याकुमारी के मंदिर में भगवती के कन्यारूप का दर्शन करके प्रसन्न मुद्रा में श्री गुरुजी और साथी बाहर आए एक मित्र ने कहा- 'यह सुंदर मूर्ति शिल्पकला की दृष्टि से भी कितनी उत्तम कृति है। गुरुजी आपने अन्यत्र कहीं इसके समान सुंदर मूर्ति देखी है?'

श्री गुरुजी ने उससे कहा- 'देखो, जब मुझे कोई ऐसा प्रश्न करता है, तब मेरे सामने एक भीषण कठिनाई उपस्थित हो जाती है, क्योंकि जब मैं मूर्ति के सामने जाकर खड़ा होता हूँ, तब मेरी आँखें बंद हो जाती हैं। हमें ईश्वर को अपने अंतश्चक्षुओं से देखना चाहिए। अतएव मेरे लिए यह संभव नहीं है कि मैं मूर्ति के सौंदर्य अथवा शिल्पकला का अनुमान कर सकूँ।'

विश्वकर्मा दिवस

भारतीय जीवन प्रणाली के आधार पर देश के श्रमिकों को संगठित करनेवाले दत्तोपंत ठेंगडी ने नासिक में श्री गुरुजी से पूछा- 'गुरुजी, अपनी परंपरा के अनुसार मजदूरों के लिए ऐसा कोई श्रद्धास्पद

दिवस है क्या, जो सभी के लिए स्वीकार्य हो और सबको प्रेरणा देकर एकसूत्र में पिरो सके?'

श्री गुरुजी ने बताया– 'ऐसा दिन है। वह है विश्वकर्मा दिवस। पुणे नगर के 'केसरी' ग्रंथालय में इस विषय पर कई किताबें हैं।'

इतिहास से सही बोध ग्रहण करें

जीवन-चरित्र और इतिहास के बारे में बात चल रही थी। श्री गुरुजी ने कहा– 'इतिहास का सही उद्‌बोधन महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन करने से ही होता है। पाठ्यक्रम में इतिहास पढ़ने से हमें इतिहास का सही आकलन नहीं होता। पाठ्यक्रम में विजयनगर के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। चोल, पांड्य और पल्लव वंश का भी सरसरी उल्लेख मात्र आता है। परंतु हम जानते हैं कि उनके नेतृत्व में हमारा सांस्कृतिक साम्राज्य समुद्र लाँघकर सुदूर विदेशों में स्थापित हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व उत्कल में एक गुहा से प्राप्त ताम्रपट पर सागर पार विदेशों में सांस्कृतिक साम्राज्य प्रस्थापित करनेवाले राजा के बारे में उल्लेख मिला है। गौरवपूर्ण साम्राज्य का इस प्रकार उपभोग कर उस राजा ने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया था।'

राजनैतिक छुआछूत

एक संघ-कार्यकर्ता के बारे में श्री गुरुजी बता रहे थे कि 'प्रारंभ में वे कांग्रेसी कार्यकर्ता थे। उस क्षेत्र में कांग्रेस की नींव डालकर कार्य उन्होंने ही खड़ा किया था। चूँकि अब वे संघकार्य कर रहे हैं, इसलिए कांग्रेसी उन्हें 'अस्पृश्य' मानने लगे हैं। संघ के प्रारंभिक वर्षों में यह कठिनाई नहीं थी। हिंदूसभा का सदस्य रहते हुए भी लोग कांग्रेस का कार्य कर सकते थे। कांग्रेस अधिवेशन के मंडप में ही हिंदू महासभा का चर्चा-सत्र भी चलता था।'

तुम करो नहीं 'हम करें'

एक स्वयंसेवक ने एक गीत की रचना की थी। उसके बोल थे– 'तुम करो राष्ट्र आराधन।'

गीत के बोल सुनकर श्री गुरुजी ने कहा– ''यहीं यह सदोष है। हमको कहना चाहिए 'हम करें राष्ट्र आराधन'।''

हिंदू-मुस्लिम समस्या की ओर देखने का दृष्टिकोण

विजयवाड़ा में गाँधीवादी श्री रंगा रेड्डी ने श्री गुरुजी को पूछा– 'आपके संगठन में एक भी मुसलमान नहीं है। इसलिए आप और आपका संगठन राष्ट्रविरोधी है।' उनका संकेत था कि हिंदू-मुस्लिम एकता महात्मा गाँधी को अति प्रिय थी। उसके लिए आप क्या कर रहे हैं?

श्री गुरुजी का उत्तर था– ''आपने दो प्रश्न पूछे हैं। प्रथम प्रश्न के उत्तर में मैं आपसे यह अपेक्षा करता हूँ कि प्रयत्नपूर्वक आप किसी मुसलमान सज्जन से संघ में प्रवेश पाने के लिए कहलवाने का प्रयास करें। जो संघ की प्रतिज्ञा ग्रहण करने को तैयार है; हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति और हिंदू समाज के प्रति अपना जीवन समर्पण कर अपना राष्ट्रधर्म-पालन करने के लिए तत्पर है, ऐसा कोई मुसलमान सज्जन संघ-प्रवेश के विषय में कहे, ऐसा आप प्रयत्न करें।'

'अन्य मतों का प्रचार-प्रसार होने से पूर्व, भारत में एक ही धर्म था, उसके प्रति लोगों की श्रद्धा थी। उस समय संस्कृति भी एक ही रहने के कारण राष्ट्र भी एक है, यही श्रद्धा सबमें विद्यमान थी। सब मतों का आदर यही अपने राष्ट्र-धर्म की मूलभूत धारणा रहने के कारण देश में प्रत्येक को किसी भी मत का अनुयायी बनने की सुविधा थी। प्रत्येक से सबके प्रति सहानुभूति रखने की अपेक्षा थी। अपना राष्ट्रधर्म असहिष्णुता का विरोधी है। इस्लाम और ईसाई प्रचारकों के बारे में हमारा अनुभव है कि वे यहाँ का राष्ट्रधर्म नष्ट कर अन्य धर्म की प्रस्थापना करना चाहते हैं। स्वधर्म के स्थान पर परधर्म थोपने की उनकी इच्छा है।'

संघ का स्वयंसेवक होने के कारण मैं इस्लाम विरोधी नहीं हूँ, न ही रह सकता हूँ। किसी अन्य मत का स्वीकार करने पर किसी को अपनी राष्ट्रीयता नकारने का क्या कारण हो सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। केवल भारत में रहनेवाले अधिकांश मुसलमानों की ही यह विशेषता है। अन्य राष्ट्रों में मुसलमानों का व्यवहार इस प्रकार का नहीं है। उदाहरणस्वरूप, पर्शिया के लोगों ने इस्लाम का अनुयायित्व स्वीकार किया,

पर सोहराब और रुस्तम जैसे अपने श्रेष्ठ पूर्वजों को नहीं भूले। इंडोनेशिया के लोग इस्लाम मत स्वीकार करने के बाद भी अपने पूर्वजों को नहीं भूले। वहाँ के राष्ट्राध्यक्ष सुकर्णो जब भारत में आए थे, तब यहाँ के पत्रकारों ने उनके नाम के संदर्भ में उनसे पूछा, तब उन्होंने उसका स्पष्टीकरण देते हुए बताया था कि 'रामायण और महाभारत उनके देश में श्रद्धास्पद श्रेष्ठ ग्रंथ माने जाते हैं। उनके पिताजी श्रद्धापूर्वक महाभारत का अध्ययन करते हैं। कर्ण के व्यक्तित्व के प्रति उनकी आस्था है; परंतु व्यक्तिगत चारित्र्य की मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाला कर्ण का स्वभाव उनको अच्छा नहीं लगता। मैं सुकर्ण बनूँ ऐसी मेरे पिताजी की इच्छा थी। इसलिए मेरा नाम सुकर्णो रखा गया।' मत से वह मुसलमान हैं। उन्होंने अपनी पूजा-पद्धति बदली होगी, परंतु अपने श्रेष्ठ पूर्वजों की परंपरा से उन्होंने विच्छेद नहीं किया। इस्लाम के विषय में संघ की धारणा यह है कि एक मत के नाते वह इस्लाम का समुचित आदर करता है, परंतु अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के स्थान पर इस्लामी या अन्य किसी संस्कृति व परंपरा को प्रस्थापित करने में वह कभी भी अनुकूल नहीं रहेगा।'

प्रांत संघचालक श्री लिंगय्या चौधरी द्वारा महात्मा गाँधी का नामोल्लेख करने पर श्री गुरुजी ने कहा– 'महात्मा जी के बारे में मेरे हृदय में श्रद्धा है, परंतु यदि हिंदू-मुस्लिम यह समस्या है, तो उसके प्रति महात्मा जी का दृष्टिकोण सही है, ऐसा मुझे नहीं लगता है। उदाहरणस्वरूप, असहयोग आंदोलन के प्रारंभ में स्वाधीनता हेतु प्रयत्नशील रहते समय वे हिंदू-मुस्लिम एकता चाहते थे। उस समय तुर्कस्थान शासन के प्रधान मुस्तफा कमाल पाशा ने खलीफा पद समाप्त कर दिया था। इससे भारत के मुसलमानों को ठेस पहुँची। मुसलमानों के इस दुःख में हिंदू समाज समरस हो तो संभवतः मुसलमान स्वराज्य की लड़ाई में कांग्रेस का साथ देंगे, इस विचार से मुसलमानों को कांग्रेस में शामिल होने का आवाहन गाँधी जी ने किया था।'

'अनेक मुल्ला-मौलवी कांग्रेस में शामिल हुए। उस समय मुहम्मदअली जिन्ना कट्टर राष्ट्रवादी थे। खिलाफत के बारे में उनका महात्मा गाँधी जी से मतभेद था। मुसलमानों के साथ चला हुआ यह तथाकथित प्रेमालाप अधिक समय तक चल नहीं पाया। सन् १९२३ में मौलाना मुहम्मद अली भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और कांग्रेस का अधिवेशन काकीनाडा (आंध्र) में हुआ। उस अधिवेशन के प्रारंभ में मौलाना मुहम्मद अली ने

ऐलान किया कि 'यदि वंदेमातरम गीत गाया गया तो वे झंडा फहराने का काम नहीं करेंगे। वे झंडा फहराने के कार्यक्रम में सम्मिलित नहीं हुए थे। मैंने सुना है कि उसी समय महात्मा जी के बारे में उन्होंने कहा था कि वे निकृष्टतम मुसलमान को भी महात्मा जी से श्रेष्ठ समझते हैं।'

श्री गुरुजी ने मुसलमानों का व्यवहार स्पष्ट करते हुए कहा कि 'मुसलमान समझते हैं कि यहाँ की राष्ट्रीय संस्कृति का जिसमें उत्कृष्ट वर्णन है, ऐसे राष्ट्रीय गीत इस्लामी संस्कृति से मेल नहीं खाते।

मौलाना मुहम्मद अली राऊंड टेबल कान्फ्रेन्स में उपस्थित थे। बातचीत के दौरान उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि यदि भारत को स्वाधीनता प्राप्त नहीं हुई तो वे इंग्लैंड नहीं छोड़ेंगे। दुभार्ग्यवश उनकी जीवन-यात्रा वहीं समाप्त हुई। मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा प्रकट करते हुए कहा था कि– उनका शरीर अंत्यसंस्कार के लिए मक्का में ले जाया जाए।'

श्री गुरुजी ने कहा कि 'भारत के प्रत्येक मुसलमान की भी ऐसी ही स्वभाविक भावना है। इसके विपरीत वियाना में दिवंगत हुए श्री विट्ठलभाई पटेल ने मृत्यु-पूर्व यह इच्छा प्रकट की थी कि उनकी अस्थियाँ भारत ले जाकर त्रिवेणी संगम में विसर्जित की जाएँ। दोनों की स्वाभाविक मनोवृत्ति में यह अंतर क्यों दिखाई देता है? क्योंकि श्री विट्ठलभाई पटेल को अपनी राष्ट्रीय संस्कृति का विस्मरण नहीं हुआ था। अपने दुर्भाग्य से ही कहो कि भारत की स्वाधीनता हेतु जिन्होंने परिश्रम किए, देह-समर्पण किया और जिनकी सच्चाई और बहुविध क्षेत्र का कर्तृत्व संशयातीत था, ऐसे मौलाना के हृदय में राष्ट्र-विषयक श्रद्धा की अपेक्षा अपने मजहब के प्रति श्रद्धा अधिक प्रभावी सिद्ध हुई।

राजनीतिक क्षेत्र और भारत की एकात्मता दृढ़ करने में प्रयत्नशील प्रत्येक व्यक्ति को उपर्युक्त घटना से सबक सीखना चाहिए। इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि भारत के मुसलमान की दृष्टि में इस्लाम ही सर्वोपरि है। मुसलमानों के संघ-प्रवेश के संबंध में वैचारिक संघर्ष करने का कोई कारण नहीं है। इस बारे में स्वयं मुसलमान ही सोचें। एक हिंदू के नाते मैं किसी को बलात् या प्रलोभन से कुछ भी करने के लिए नहीं कहूँगा।'

समाचार-पत्रों का दायित्व

त्रिश्शुर में एक सायं वृत्त-पत्रों के पत्रकार मिलने आए थे। एक ने गोवध बंदी के विषय में श्री गुरुजी से प्रश्न किया कि 'क्या ७ नवंबर को आपने दिल्ली में भाषण दिया था?'

श्री गुरुजी– 'ऐसे ही गैर-जिम्मेदारीपूर्ण समाचार आजकल वृत्त-पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। आपका कर्तव्य असत्य पर आधारित नहीं, अपितु सही दिशा में लोगों का उद्‌बोधन करना है। आप अपने दृष्टिकोण से अवश्य लिखें, भले ही वह हमारे अनुकूल न हो। परंतु आप लोग तो सरासर झूठी बातें छापते हैं। क्या यह लोगों को धोखा देना नहीं है? पी. टी.आई. के एक संवाददाता ने लिखा था कि मध्यप्रदेश के एक क्षेत्र से लोकसभा चुनाव में मैं खड़ा हूँ। परंतु आप, लोगों को धोखा नहीं दे सकते। जिनका मुझसे और मेरे काम से थोड़ा बहुत भी परिचय है, वे ऐसे झूठे वृत्त पर कभी भी विश्वास नहीं करेंगे। उस प्रदेश के पी.टी.आई. वृत्त-संस्था के प्रमुख को यह पूछने पर कि यह सब क्या चल रहा है? उन्होंने उत्तर दिया कि उनके संवाददाता अपना अनुमानित वृत्त प्रकाशन हेतु भेजते हैं। मैंने कहा कि इस प्रकार सरासर झूठा वृत्त प्रसारित नहीं होना चाहिए।'

'विदेशी पत्रों के संवाददाता भी विपर्यस्त वृत्त प्रसारण करते हैं। मैंने एक से पूछा कि क्या अमरीकी लोगों को यहाँ की सत्य स्थिति अवगत कराने का आपको यही मार्ग जँचता है? इन समाचारों को आधार बनाकर यदि अमरीका इन देशों के प्रति अपनी विदेश-नीति निर्धारित करता हो, तब वह नीति क्या पूर्णतया गलत सिद्ध नहीं होगी? क्या इससे अमरीकी सरकार की विदेश-नीति असफल सिद्ध नहीं होगी? समाचार-पत्र लोक-शिक्षा का एक प्रभावी साधन हैं और उनका उपयोग प्रामाणिकता एवं न्यायबुद्धि से ही करना चाहिए।'

मुस्लिम बहुल जिले का निर्माण

संघ से सहानुभूति रखनेवाले कुछ प्रतिष्ठित सज्जन श्री गुरुजी से मिलने आए थे। सबसे परिचय हुआ। केरल के समाचार-पत्रों में अग्रणी चेन्नै के दैनिक 'हिंदू' से संबंधित श्री सी.जी.केशवन्‌ ने पूछा– 'मलप्पुरम जिले के निर्माण के विषय में आपकी क्या प्रतिक्रिया है?'

श्री गुरुजी ने कहा– 'शासन सुविधा की दृष्टि से एक अतिरिक्त जिला बनाने की बात हो, तो उसका विरोध अनावश्यक है, परंतु उसके बनाने में यदि और कोई अंतस्थ दुष्ट हेतु हो तो इसका अवश्य ही विरोध होना चाहिए।'

माध्यम और शिक्षा-स्तर

शिक्षा-स्तर की अवनति और हिंदी भाषा का उस क्षेत्र में हो रहा विरोध, बातचीत का विषय था। श्री गुरुजी ने कहा– 'केवल अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने से शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना संभव नहीं है। आज भारत में अंग्रेजी भाषा के स्तर में भी काफी गिरावट आई है। अपनी बैठकों में मैंने अनुभव किया है कि ग्रेज्युएट बने या उस कक्षा में अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को सीधा-सा वाक्य भी शुद्ध अंग्रेजी में कहना संभव नहीं होता।'

'विश्वविद्यालयीन पढ़ाई में अंग्रेजी माध्यम रहता है, परंतु वहाँ भी अंग्रेजी भाषा का स्तर अवनत हुआ है। पूर्वकाल में वक्तृत्व-स्पर्धा आयोजित होती थी। वैसा प्रयास कम हुआ है। परिणामतः भाषा का स्तर उठाना संभव नहीं हो पा रहा है। मुझे कभी-कभी लगता है कि स्तर की गिरावट में शासन भी उत्तरदायी है। अपने लोगों की ज्ञान-प्राप्ति के प्रयास में निर्माण हुई अवनति का एक कारण यह भी हो सकता है। हमें अनुभव में आता है कि आजकल कुशाग्र व बुद्धिमान विद्यार्थियों को शासन से प्रोत्साहन मिलना कम हुआ है। इस कारण ऐसे प्रज्ञा संपन्न विद्यार्थी उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेशों को प्रयाण करते हैं, क्योंकि उनके गुणों की वहाँ सराहना होती है। यह सच नहीं है कि भारत में वेतन कम रहने से ऐसे प्रतिभाशाली विद्यार्थी भारत लौटने की इच्छा नहीं करते। कम वेतन पर काम करने के लिए भी वे तैयार हैं, परंतु स्वतंत्र रूप से अनुसंधान करने में भारत में उनको कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। इसका एक मनोरंजक उदाहरण मुझे ज्ञात है। प्राणिशास्त्र के अंतर्गत मत्स्य के बारे में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर गूडरिज दुनिया-भर में तज्ञ माने जाते थे। उनके संशोधन प्रबंध देश-विदेशों में प्रकाशित होते रहते थे। लंकाशायर प्रकाशन-माला में भी उन प्रबंधों को उद्धृत किया जाता था। ऐसा प्रज्ञावंत भारत में है, यह पता चलने पर

उनको इंग्लैंड वापस बुलाया गया। वहाँ उनको साधारण सी प्रयोग-प्रदर्शक की नौकरी मिल सकी, जिसमें उन्हें भारत में मिलनेवाले वेतन से बहुत कम पैसे मिलते थे। वहाँ के प्रोफेसरों का ज्ञान भी उनकी तुलना में अल्प ही था। जबकि भारत में वेतन अधिक था और उस विभाग के वे प्रमुख थे। काफी अधिकार प्राप्त होने पर भी संशोधन की सुविधा यहाँ उपलब्ध नहीं थी। पर इंग्लैंड में एक सामान्य प्रयोग-प्रदर्शक रहने पर भी संशोधन के लिए अत्यधिक सुविधाएँ उपलब्ध थीं, जिसके लिए प्राध्यापक गुडरिज तरसते थे। उन्होंने इसी कारण भारत की नौकरी छोड़कर इंग्लैंड में सामान्य-सी नौकरी स्वीकार की।'

'आज भी इस स्थिति में विशेष अंतर नहीं आया है। मुझे तो लगता है कि परिस्थिति और बिगड़ गई है। इसलिए भारत के बुद्धिमान युवा विद्यार्थी अपनी गुणवत्ता की अधिक कद्र करनेवाले विदेशों में जाते हैं।'

वर्ण-व्यवस्था : व्यवसाय-आधारित

वर्ण-आश्रम व्यवस्था के बारे में बात चली, तब श्री गुरुजी ने बताया– 'स्वाभाविक प्रवृत्ति और व्यवसाय पर आधारित यह व्यवस्था प्राचीनकाल में थी। प्रत्येक की व्यवसायिक प्रवृत्ति बदलना तो असंभव-सा रहता है। ज्ञानप्राप्ति की कठोर तपस्या का कार्य और समाज-जीवन में सम्मान का स्थान ब्राह्मणों को दिया, परंतु शासन-व्यवस्था में उनको अधिकारशून्य और निर्धन रहने को कहा गया। व्यवसायी लोगों को धन-संचय की अनुमति थी, पर शासन व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं था। पराक्रमी क्षत्रिय प्रवृत्ति के लोगों को शासन में सत्तास्थान था, परंतु वे धनराशि के स्वामी नहीं रहते थे। शूद्र प्रवृत्ति के लोगों के पास धन और शासनाधिकार, दोनों नहीं थे। यह तो उन प्राचीन दिनों की बात है, परंतु आज संसार में ऐसी ही व्यवस्था दिखाई देती है। पाश्चात्य जगत् में लोग तंत्रज्ञ और विज्ञाननिष्ठ हैं, ऐसा सर्वदूर कहा जाता है। विज्ञाननिष्ठा की दुनिया में सर्वत्र सराहना होती है। विज्ञान क्षेत्र में वे अग्रसर भी हैं। वहाँ आज कोई भी व्यक्ति अपनी साहसी प्रवृत्ति के कारण सेना में शामिल होकर अपने धर्म, संस्कृति और देश की रक्षा कर सकता है। आज भी पश्चिमी जगत् में पारंपरिक धंधे को करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह प्रवृत्ति स्वाभाविक रहने से सर्वत्र पाई जाती है।'

मतांतरण

वनवासी लोगों का कल्याण और अस्पृश्यों के समुचित विकास के बारे में शासनाधिकारी बहुत कुछ कहते रहते हैं। ऐसा कर वे वनवासी एवं अस्पृश्य बंधुओं को समाज-जीवन की मुख्य धारा से पृथक करना चाहते हैं। जनजाति कल्याण केंद्रों और उनके लिए बने अस्पतालों में अपने शासनाधिकारी केवल ईसाई मिशनरियों को नौकरी देते हैं। इस प्रकार अपने ही धन से मिशनरी लोग भारत के हितविरोधी और अराष्ट्रीय काम करते हैं। इनके अराष्ट्रीय कामों की ओर दुर्लक्ष्य कर अपने शासनाधिकारी, मिशनरियों की तथाकथित मानवसेवा-प्रवृत्ति की स्तुति कर रहे हैं। एक बार असम में बनाए गए एक अस्पताल का उद्घाटन करने प्रमुख अतिथि के नाते राष्ट्रपति डा.राजेंद्र प्रसाद उपस्थित थे। ग्रेशस महोदय, जो उस समय तक कार्डिनल नहीं बने थे, उस समारोह में थे। अपने भाषण में राजेंद्रबाबू ने कहा- 'यहाँ काम कर रहे मिशनरी अपनी सेवा के बदले में उन निम्न जनजातीय वनवासी बंधुओं के ईसाई मतांतरण की अपेक्षा न रखें, तभी यह मानवसेवा प्रशंसनीय सिद्ध होगी।'

राजेंद्रबाबू की उपस्थिति में ही ग्रेशस महोदय ने कहा था कि 'यदि ईसाई मतांतरण की चिंता न करें, तब इन मिशनरियों का कठोर परिश्रम और इतना अधिक धनव्यय व्यर्थ ही क्यों किया जाए? इन जनजातीय लोगों की ईसाई बनने की इच्छा के कारण ही यह प्रयास हो रहा है। वे अवश्य ही ईसाई बनाए जाएँगे। इतना सब कुछ होकर भी केंद्रीय शासन को मत-परिवर्तन रोकना संभव नहीं हो सका। अंग्रेज-अमरीकी दबाव के कारण इस समस्या का हल कठिन प्रतीत हो रहा है। उदाहरणस्वरूप- अनेक मंत्री महोदय फेरर नामक ईसाई पादरी की देशद्रोही कार्यवाही जानकर भी अमरीकी आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए उनकी मतांतरण-नीति की ओर से आँखें मूँद लेते हैं। दूसरे ईसाई मिशनरी मायकेल स्कॉट की भी यही बात है। अपने देश के नेतागण यह सब जानते हुए भी असहाय बने बैठे हैं।'

हिंदू संस्कृति वैभव की दुश्मन नहीं

कोटा (राजस्थान)– श्री रमेश चंद्र शारदा जी के मकान पर चायपान हेतु आमंत्रित १०-१२ सज्जन उपस्थित थे। सेठ श्री हासानंद अर्जुन, सोपवाले ने प्रश्न किया– 'संघ में तो जीवनभर लंगोटी और चिमटा ही है, क्या भारतीय संस्कृति का यही अर्थ है?'

श्री गुरुजी– 'सेठ साहब, आपने भारतीय संस्कृति में भगवान विष्णु का नाम सुना होगा। उनका कैसा वर्णन है– क्षीरसागर में फूल की सेज है, लक्ष्मी जी उनके पाँव दबा रही है, स्वर्ण मुकुट और छत्र चँवर धारण किए हुए हैं। आपको वहाँ कहीं लंगोटी या चिमटा दिखा? पर भृगु की लात का प्रसंग वहाँ है। यह स्मरण करना चाहिए कि भारतीय संस्कृति वैभव की दुश्मन नहीं है। वह वैभव से विरक्ति चाहती है। समाज को जब हम संकट की स्थिति में देखें, उस समय केवल वैभव में आसक्त रहना हमारी संस्कृति नहीं है। संकट की घड़ी में उस वैभव को ठोकर मारकर समाजसेवा में लग जाना ही उसका लक्षण है, यही वैराग्य की स्थिति हमारी संस्कृति है।'

आप रिफ्यूजी नहीं

भारत-विभाजन के दौरान श्री गुरुजी अमृतसर में थे। श्री वसंतराव ओक और श्री माधवराव मुल्ये के साथ प्रख्यात नेता मेहरचंद महाजन और जस्टिस रामलाल भेंट करने आए थे।

श्री महाजन– 'हम तो रिफ्यूजी हैं।'

श्री गुरुजी (तुरंत)– 'नहीं नहीं, आप रिफ्यूजी नहीं हैं। यह राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति का है। आप सब इसके समान अधिकारी हैं। कोई अपने ही देश में रिफ्यूजी कैसे हो सकता है। आसेतु-हिमाचल सारा राष्ट्र एक है।'

कुछ क्षण रुककर फिर बोले– 'हिंदू बंधु अपने पावन धर्म की रक्षा के लिए दर-दर की ठोकरें खाकर भी इधर आ रहे हैं। उनके बलिदानों को कभी भुलाया नहीं जा सकता। वे इस भीषण परीक्षा में सफल हुए हैं।' (श्री गुरुजी का उत्तर सुनकर जस्टिस रामलाल की आँखें भर आईं)।

शब्द संकेत : खंड ९